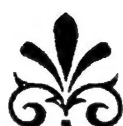
हमारे पर्व



प्रकाशक :

बाबूलाल जैन पींचा

I D, उत्सव अपार्टमेन्ट्स

सुन्दरार स्ट्रीट, सेलम-636016 (तमिलनाडू)

फोन : 0427-2447663, मो. 9362107077

पुस्तक · हमारे पर्व

प्रकाशक : बाबूलाल जैन (पींचा)
I D, उत्सव अपार्टमेन्ट्स
सुन्दगार स्ट्रीट, सेलम-636016 (तमिलनाडू)
फोन · 0427-2447663, मो. 9362107077

प्रतियां : 1000, जनवरी [redacted]

मुद्रक : अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स, बीकानेर
फोन : 0151-2547073, 09214555303

प्राक्कथन

उद्यान की ओर कदम बढा, एक रस पिपासु का। भाति-भाति के छायादार वृक्ष, लताएँ, गुल्म, पर्ण कुटीर फुहार छोडते फव्वारे, भीनी-भीनी सुरभि लुटाता समीर मन आंनद से भर गया। सौन्दर्य सुषमा को निहारकर प्रमुदित होता पहुँच गया पुष्प वाटिका की ओर। मधुर-मधुर ध्वनि को सुन सहसा ठिठक गया। देखा, श्यामवर्णी मधुकर मंडरा रहा है। कभी किसी पुष्प पर, कभी किसी पुष्प पर। फूलो को न कुचला, न मसला, कुछ देर बैठा जरूर। मानो चुपके से कोई बात कहनी है, कहकर उड़ गया। पराग पीकर तृप्त हुआ भ्रमर उस माधुर्य को बिखरने लगा, अपने मधुर गुजन से। रस पिपासु के अन्तर्मानस मे चिन्तन उभरा। सुरभित सुमनों का परिमल तप्तिदायक है, भ्रमर अपने आपको तृप्त कर लेता है।

जिनवाणी के प्रसूनो मे इसी प्रकार आत्म तृप्ति दायक मकरन्द भरा पड़ा है। जिनवाणी उसे लुटा रही है, क्यो न मैं कुछ रस चख लू। स्वान्त सुखाय उसने रसपान किया और पीकर अपनी आनदानुभूति को लेखनी द्वारा गुजारित करने लगा। इच्छुक मानस उस आवाज के प्रति आकर्षित हुआ, विचार आया क्यों न इस ध्वनि को जन-जन तक पहुँचा दू। रस पिपासु का स्वर उभरा-''यह सब तो जिनवाणी के प्रसूनो का पराग है, प्राकृतिक तत्त्वो से उन्होने अपने आपको परिमल से परिपूरित किया और परहितार्थ लुटाया है, पराग-प्रेमी भ्रमरो को मुग्ध करता है।

जिन-जिन पुस्तको से जिनवाणी का पराग ग्रहण किया है, उन सबकी मै ऋणी हूँ वे रस पिपासु है--प्रशातमना, तरुण तपस्वी, परमागम रहस्यज्ञाता, श्रीवाल प्रतिबोधक परमाराध्य 1008 श्री आचार्य श्री रामलालजी म.सा की आज्ञानुवर्तिनी शासन प्रभाविका परमविदुषी महाश्रमणी रत्ना श्रद्धेय 1005 श्री इन्द्रकंवर जी म सा ।

क्लात से क्लात मानस भी इसे पीकर आत्मोपलब्धि की गुजन मुखरित करेगा, इसी आशा एवं विश्वास के साथ प्रस्तुत है--

आत्म तृप्तिदायक जिनवाणी मकरन्द के रूप मे

हमारे पर्व

-बाबूलाल पींचा, सेलम

श्रद्धानिष्ठ दिलेर व्यक्तित्व समाज-सेवी

सुश्रावक रत्न श्रीमान् बाबूलाल जी सा. पींचा
(एक परिचय)

हुक्मसंघ के लब्धप्रतिष्ठित नागौर-निवास श्रद्धानिष्ठ स्वनाम धन्य स्वर्गीय श्रीमान् पूनमचन्दजी सा. पींचा एवं दृढ धर्मानुरागी स्वर्गीया श्रीमती सुगनीदेवी के अगजात दिलेर व्यक्तित्व, मानवीय सद्‌गुणों से विभूषित, शासन-समर्पित सुश्रावकरत्न श्रीमान् बाबूलाल जी सा पींचा धार्मिक-प्रवृत्तियो में अग्रणी ग्रेज्यूऐट (**Graduate**) है।

आपकी धर्मपत्नी सौभाग्यवती सुश्राविकारत्ना सौ. किरणदेवी मिलनसारिता एवं व्यवहार कुशलता के सद्‌गुणो से सम्पन्न, धार्मिक रुचि वाली है।

आपके पॉच ज्येष्ठ भ्राता है–1 स्व श्रीमान नेमीचंद जी सा एव भाभीजी स्व. श्रीमती भॅवरी देवी, 2. स्व. श्रीमान जवरीमल जी सा एव भाभीजी श्रीमती मैना देवी, 3. श्रीमान दुलीचंद जी सा. एव भाभीजी श्रीमती अनोपदेवी, 4. श्रीमान भोपालचद जी सा. एव भाभीजी श्रीमती सुन्दर देवी, 5 श्रीमान अमरचन्द जी सा. एवं भाभीजी श्रीमती चन्द्रकला जी।

आपकी दो ज्येष्ठ बहिने है– सौ बिदामबाई-श्रीमान् भवरलालजी सा. दफ्तरी, सौ दाखाबाई-श्रीमान् जीतमलजी सा नाहर।

इन 7 भाई-बहिनो मे आप सबसे छोटे एव उत्साही है।

आपके दो सुपुत्र है– श्री सुशीलकुमार जी-धर्मपत्नी सौ. जयश्री देवी एव श्री सुनीलकुमार जी-धर्मपत्नी सौ रचनादेवी। पौत्र-विनयकुमार, पौत्री-सुहानी। एक सुपुत्री है-सौ. सुलक्षणा जी-श्रीमान् रिखबचंद जी चौधरी।

इस प्रकार यह शिक्षित, ऐश्वर्य सम्पन्न भरा-पूरा परिवार नागौर की पुण्यधरा से पल्ववित पुष्पित हो वर्तमान मे मद्रास एव सेलम नगरो मे निवसित है।

इसी पींचा परिवार की कुलभूषण आपकी ससारपक्षीय भतीजी नानेश-शासन मे दीक्षित तपस्विनी, मधुर वर्चस्विनी विदुषी रत्ना श्री सिद्धप्रभा जी म सा जो अपनी प्रव्रज्या पथ के 25 बसत पूर्ण कर 26वे बसंत मे वर्तमान हुक्मगच्छाधिपति ब्रह्मतेजस्वी तरूण तपस्वी शास्त्रज्ञ प्रशातमना आचार्यप्रवर श्री रामलालजी म सा. की आज्ञानुवर्तिनी शासन प्रभाविका परमविदुषी महाश्रमणीरत्ना श्री इन्द्रकवरजी म सा के सान्निध्य मे आगमरत्नाकर की परीक्षा सर्वोच्च अको से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर गुरु-इगितो पर पूर्ण-रूपेण समर्पित, जिनशासन की प्रभावना कर रही है। यह सम्पूर्ण पींचा परिवार हुक्मसघ के नवम्-पट्टधर व्यसन मुक्ति अभियान प्रणेता, परमागमरहस्य विज्ञाता, श्रीवालप्रतिबोधक आचार्य श्री रामेश के प्रति पूर्ण समर्पित होकर गुरुनिष्ठा के साथ संघ एवं समाज की सेवा मे सदा अग्रणी है।

स्वनामधन्य स्वर्गीय पिता श्री पूनमचंद जी सा एव स्वर्गीया मातुश्री श्रीमती सुगनीदेवी पींचा की पुण्य-स्मृति मे भव्यजनो के कर कमलों मे संकलित-प्रवचन **''हमारे पर्व''** पुस्तक प्रस्तुत करते हुए अतीव हर्षित है।

शासन निष्ठ यह सम्पूर्ण पींचा परिवार संघ, समाज एवं शासन सेवा मे निरन्तर आगे बढता रहे। इन्हीं मंगल भावनाओ के साथ।

– अमिताभ नागोरी

बीकानेर

अनुक्रमणिका





जीवन की तस्वीर बदलिए : चातुर्मास

चातुर्मास आत्म-उल्लास का अवसर है। यह उल्लास सिर्फ श्रद्धालुजनो के मनो का ही नहीं है, चातुर्मास तो समस्त जीव जगत, पशु-पक्षी, वनस्पति आदि सबको हर्षोल्लास से भर देता है तो फिर मनुष्य और मनुष्यो मे भी आत्मोन्नति की लगन जिनको लग गई है, उन आत्म-साधको के प्रसन्नता की तो बात ही क्या है ? यह किसानो का अन्नदाता, जन-जीवन का त्राता और स्रष्टा चातुर्मास न हो तो जीवन रीता ही बना रहेगा।

मनुष्य श्रम करता है, किन्तु उसका फल पाने के लिए काल की उपयुक्तता एवं अनुकूलता जरूरी है। जैसे स्वास्थ्य सुधारने के लिए सर्दी का मौसम अनुकूल माना जाता है, वैसे ही धर्माराधना के लिए और तपःसाधना के लिए वर्षावास चातुर्मास का समय सबसे अधिक अनुकूल माना जाता है। सम्पूर्ण सृष्टि के लिए वर्षाकाल सबसे महत्त्वपूर्ण है। इन महिनो मे आकाश से जलधारा बरसकर धरती की प्यास बुझाती है, धरती की तपन मिटाती है और भूमि की माटी को नरम, कोमल, मुलायम बनाकर बीजो को अंकुरित करने के लिए अनुकूल बनाती है। इसलिए 27 नक्षत्रो मे वर्षाकाल के 10 नक्षत्र और 12 महिनो मे चातुर्मास के 4 मास ऋतु चक्र की धुरी है। सृष्टि के लिए जीवनदायी है। प्राणीजगत के लिए प्राणसंवर्धक और जीवन रक्षक माने जाते है।

सर्वप्रथम वर्षावास और चातुर्मास इन दो शब्दो पर हम विचार करे। वर्षावास अर्थात् वर्षाऋृतु, श्रावण और भाद्रपद का महिना, इस वर्षाऋृतु में एक स्थान पर रहना। जैनागम मे इसे ''वासावास'' कहा गया है। वर्षाऋृतु के केवल दो महिना ही है। शरद ऋतु-आसोज और कार्तिक मास, ये चारो मास मिलकर 'चातुर्मास' काल कहलाता है।

वैदिक व बौद्ध परम्परा में भी इस चार मास के काल को चातुर्मास कहा गया है। इस चातुर्मास हेतु परिव्राजक, ऋषि, श्रमण, निर्ग्रन्थ एक स्थान पर निवास करते है। वैदिक संत-महात्मा आज भी वर्षाकाल में चातुर्मास करते हैं, भले ही वे चार महिने के बजाय दो महिने ही एक स्थान पर ठहरते है। श्रावण भाद्रपद तक एक स्थान पर रूकते हैं। जनता को धर्माराधना, भागवत श्रवण, रामायण पाठ, व्रत-उपवास आदि की प्रेरणा देते हैं।

बौद्ध भिक्षुओ मे भी किसी समय चातुर्मास के चार महिने एक स्थान पर ठहरने की परम्परा थी। परन्तु अब वे भी दो मास मे ही चातुर्मास समाप्त कर देते है।

जैन परम्परा मे आज भी चातुर्मास की यह पवित्र परम्परा अक्षुण्ण चल रही है। आषाढी पूनम से कार्तिक पूर्णिमा पर्यन्त जैन निर्ग्रन्थ श्रमण एक स्थान पर ही ठहरते है। जैनशासन मे चातुर्मास का बहुत अधिक महत्त्व है। वहॉ चातुर्मास का अर्थ आत्म-घर मे प्रवेश करने के शुभ क्षण। चातुर्मास यानि जीवन-परिवर्तन का शुभ मौका, प्रत्येक दृष्टि से आनंद प्रफुल्लता और उत्साह का सिंचन करने वाली शुभ घडियॉ, धर्म का बीजारोपण करने की ऋत्तु। तीर्थकर भगवन्तो ने जैन मुनियो के लिए विहार की आचार संहिता का आयोजन किया है। मुनियो को नवकल्पी एवं महासतियों को पांच कल्पी विहार करने की मर्यादा बताई है। अपनी-अपनी मर्यादानुरूप जहॉ आठ महीने साधु-साध्वी सरिता की तरह ग्रामानुग्राम पहुँचते हुए धर्मामृत प्रवाहित करते है वहॉ चार माह एक स्थान पर सरोवर की तरह स्थिर रहकर धर्मबोध का अमृत प्रदान करते है। आठ महिने सरिता की तरह गतिमान रहने वाले जैन श्रमण चार माह के लिए सरोवर की तरह तीर्थ हो जाते है। स्व-पर कल्याण की साधना उनकी बारह ही मास तक निरन्तर चलती रहती है। चातुर्मास कल्प के इन चार माह में संतो को एक स्थान पर रहने की भगवान ने आज्ञा दी है, कारण चातुर्मास मे वर्षा के कारण वनस्पति तथा छोटे-मोटे अनेक प्रकार जीवों की उत्पत्ति होती है। संत-सतियॉ यदि ऐसे समय में विचरण करे तो वनस्पतिकायिक एव छोटे-बडे अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा होना स्वाभाविक है। जैनधर्म अहिंसा प्रधान धर्म है। अत: चातुर्मास मे

एक स्थान पर रहने की प्रभु की आज्ञा के पीछे "**जीओ और जीने दो**" की परम पवित्र अहिंसा की सद्‌भावना संलग्न है।

वैदिक ग्रन्थो मे वशिष्ट ऋषि का एक कथन है कि चातुर्मास के इन महिनो मे विष्णु भगवान् समुद्र मे जाकर शयन करते है, इसलिए यह चार मास का काल धर्माराधना योग-साधना, ध्यान, धर्मश्रवण, भागवत-पाठ व जप-तप मे बिताना चाहिये। यात्रा नहीं करनी चाहिए। इन चार महिनो मे विवाह-शादी, गृह-निर्माण आदि कार्य नहीं करने चाहिए। एक समय भोजन करना, रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए। यहॉ तक भी कहा जाता है कि चार माह तक सभी देवता शयन करने रहते है। चार मास तक देवता के सोने का मतलब है, ये चार मास धर्माराधना और योगसाधना मे ही बिताना चाहिए।

वैदिक ग्रंथो के इस कथन पर विचार करे तो यह स्पष्ट होगा कि देवता सोने का अर्थ है–हमारी प्रवृत्तियॉ, हमारी क्रियाऍ सीमित हो जाए। हमारा पराक्रम पुरुषार्थ जो बर्हिमुखी था, वह चार माह के लिए अन्तर्मुखी बन जाए। सोना-निवृत्ति का सूचक है और जागना प्रवृत्ति का सूचक है। इन चार माह मे हमारा जीवन प्रवृत्तियो से हट निवृत्ति प्रधान बने। बाहर से हम सोये रहे और भीतर से जागते रहे। चेतना बाहरी संसार से हटकर अन्तर्मुखी धर्ममयी बन जाय।

चातुर्मास मे इन बाह्यमुखी वृत्तियो को सुलाने का सकेत ही इस कथन से मिलता है कि चार मास देवता सोते है। इसलिए तुम कोई बुरा कार्य करोगे तो वे तुम्हारी रक्षा हेतु नहीं आयेगे। अत. आप असद्‌वृत्तियो से बचिये, जागते रहिए। शास्त्र मे कहा है–"**वसासु पडिसंलीणा**" वर्षा ऋतु मे प्रतिसंलीन बनकर रहो अर्थात् अपनी इन्द्रियो को बाह्य प्रवृत्तियो से सकुचित करके अंतर्मुखी रहो।

भगवान महावीर चार महिने एक निर्जन स्थान पर जाकर तप धारण कर ध्यान मे लीन हो जाते थे अर्थात् बाहरी दृष्टि से सो जाते थे, भीतर मे पूर्णरूपेण जागृत रहते थे। तो इस प्रकार चातुर्मास मे यह देवशयन का रूपक हमे बर्हिमुखी वृत्तियो से हटकर अन्तर्मुखी बनने का सदेश देता है। अन्तर जागरण का आह्वान करता है। चार महिने जागते रहो और जीवन को धर्ममय बनाओ।

इस प्रकार चातुर्मास मे हिंसा का वर्जन, इन्द्रियो का संयम और धर्माराधना करने का विधान सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में व्याप्त है। ज्ञानीजन कहते है इस चातुर्मास कल्प के पीछे आरोग्य, शरीर सुरक्षा एवं जीवन रक्षा की भावना भी निहित है।

चातुर्मास में एक जगह स्थिर रहने का यह विधान वास्तव मे प्राकृतिक या पर्यावरण की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि निरन्तर वर्षा होने से पानी दूषित हो जाता है। बरसाती हवा से शरीर में वायु आदि का दर्द, जोडो मे जकडन, मच्छरो के प्रकोप से बुखार आदि होते है। तथा खाने पीने की वस्तुओ में भी छोटे-छोटे सूक्ष्म जीव फफूदी, कीडे आदि शीघ्र उत्पन्न होने लगते है। वातावरण की नमी के कारण शीघ्र ही खाद्य पदार्थो मे विकृति पैदा हो जाती है। तथा नदी, बांध आदि में किस समय बाढ आ जाए, पुल टूट जाए आदि खतरे भी अधिक बने रहते है। शरीर मे पसीने से गीला चिपचिपा रहने से फोडे फुसी, दाद, खाज जैसी तकलीफें भी ज्यादा रहती है। अत. इन चार महिनो मे विचरण न करके एक स्थान पर रहने का विधान अहिंसा प्रधान होने के साथ-साथ आरोग्य, जीवन-सुरक्षा की दृष्टि से भी लाभप्रद है।

चातुर्मास मे जोरदार बारिश आती है, तब किसानों के लिए यह चार माह बहुत मूल्यवान होते है, उससे भी अधिक मूल्यवान ये चार माह आत्मा को संस्कारी एवं आत्म साधना के लिए होते हैं। भगवान महावीर ने फरमाया है कि वैसे तो मानव जीवन का प्रत्येक पल मूल्यवान है। प्रत्येक पल धर्मसाधना मे व्यतीत हो तो उत्तमोत्तम है। नहीं तो कम से कम चातुर्मास काल जहॉ वनस्पति के फलने-फूलने का समय है, वहॉ धर्मध्यान एवं तप के लिए भी बहुत अनुकूल मौसम है। इस मौसम मे वर्षा के कारण भूमि की उष्णता कम हो जाती है। वर्षा की रिमझिम से पाचन शक्ति भी कमजोर पड़ जाती है। इस मौसम में न भूख अधिक लगती है, न प्यास सताती है। अत: यह ऋतु तपस्या के लिए बहुत अनुकूल रहती है। यही वजह है सम्पूर्ण जैन-समाज में श्रावण एवं भाद्रपद महिने में जितनी तपस्या होती है, उतनी समूचे वर्ष भर मे नहीं होती है। साधु-साध्वियों मे भाई-बहिनो में तप की उमंग

उठती है, उत्साह हिलोरे लेता है और अपनी-अपनी शक्ति अनुसार उपवास बेला, तेला, अठाई मासखमण आदि तप की आराधना मे जुट जाते है। ऐसा लगता है कि श्रावण भादवा के दो मास तपमय बन जाते है। कोई दीर्घ तपस्या नहीं कर सकता है तो एकान्तर तप ही करते है या एकासना आयम्बिल आदि करते है और यह भी नहीं होता है तो कम से कम रात्रि भोजन का त्याग तो अवश्य करते है। चार महिने रात्रि भोजन का त्याग का मतलब है आपने कम से कम दो महिने का तो निरन्तर तप कर ही लिया। कितना सहज है यह तप। रात्रि भोजन का त्याग लिया तो आठ प्रहर में चार प्रहर का तप हो गया। महिने में पन्द्रह दिन का और चार मास मे दो महिने का तप हो गया। इतना सहज तप होने पर भी यदि आप रात्रि भोजन त्याग का नियम नहीं लेते है तो इसका मतलब अभी आपको अपने जैनत्व के आदर्श के प्रति कोई सन्मान नहीं है, चूंकि जैन मात्र के लिए रात्रि भोजन निषेध है। जिसमे चातुर्मासकाल मे तो रात को भोजन करना महान् पाप का कारण है। जीव हिसा, रोग वृद्धि, धर्म हानि सभी दोष होते है रात्रि भोजन से। इसलिए प्रत्येक सदस्य को आह्वान है चातुर्मास के चार माह तक रात्रि भोजन का अवश्य त्याग कर इस सहज तप एव धर्म की आराधना करे।

प्राचीन जैन साहित्य का अनुशीलन करने से पता चलता है कि आचार्यो ने धर्म साधना के लिए महीनो की तिथियो को तीन विभागो मे बाटा है–**छह चारित्र तिथियां**–दो अष्टमी, दो चौदस, अमावस और पूनम। यह छह तिथियॉ चारित्र तिथियॉ है। इन पर्व तिथियो मे उपवास, पौषध, सवर, दया आदि तप से चारित्र धर्म की वृद्धि करनी चाहिए।

छह ज्ञान तिथियां–दो दूज, दो पांचम और दो एकादशी यह छह तिथियां ज्ञान तिथियां कहलाती है। इनमे ज्ञान शास्त्र स्वाध्याय, आगम श्रवण, ज्ञानीजनो का सम्मान, ज्ञान-प्रसार आदि काम करने चाहिए।

शेष सभी तिथियां **'दर्शन तिथियां'** कहलाती है। इन तिथियो मे सम्यक्तव शुद्धि, स्वधर्मी-वत्सलता, देव गुरु वन्दन आदि सम्यक्त्व शुद्धि और शासन-प्रभावना के कार्य करने चाहिए।

यह तिथियो का स्थूल वर्गीकरण है। इससे एक प्रकार से महिने भर तक रत्नत्रय की आराधना का कार्यक्रम बनाया जा सकता है। अमुक तिथि को मुख्य रूप से यह कार्य करना है। जैसे हमको अमुक तिथि को तप करना है, अमुक तिथि को ज्ञान-आराधना करनी है, अमुक तिथि को शासन-प्रभावना का कार्य करना है इत्यादि।

आत्म–विकास की चरम सीमा तक पहुँचने की ताकत मात्र मनुष्य में है। मनुष्य चाहे तो पल भर मे जो साधना कर सकता है, वह साधना देवता पल्योपम या सागरोपम के समय मे भी नहीं कर सकते है।

आप एक सामायिक करे तो उसका समय कितना ? 48 मिनिट। इन 48 मिनिट मे शुद्ध समभाव की आराधना हो जाय तो 92, 59, 25, 9, 25 पल्योपम से अधिक देवभव का आयुष्य बँघ सकता है। अब आप ही सोचिए कि मनुष्य का प्रत्येक मिनिट कितना कीमति है। यदि मनुष्य जीवन मे आप अपने स्वभाव मे जीना सीख जाए, दुर्गुणो को दफन कर जीवन की तस्वीर बदल दे। इस देह की तस्वीर तो इस जीवात्मा ने अनेक बार बदली है। जब तक हमारी आत्मा कर्म रहित नहीं होगी, तब तक देह की तस्वीरे बदलती जाएगी। परन्तु मानव देह के अतिरिक्त कहीं भी जीवन की तस्वीर आप बदल नहीं सकेगे।

अगुलीमाल, अर्जुनमाली, रोहिणेय, परदेशी राजा, संयति राजा, श्रेणिक राजा सभी ने अपने इस अमूल्य मानव देह को पाकर एक ही सत्संग मे अपने जीवन की तस्वीर को आमूल-चूल रूप से परिवर्तित कर ली। उन्होने अपने दोषों को, दुर्गुणो को दूर किया और सद्गुण जीवन में उतारकर ऐसी तस्वीर बदली कि वह तस्वीर दूसरो की तस्वीर भी बदलने में सक्षम है। कहाँ चडकौशिक की पाप से ग्रसित खुखार तस्वीर और कहाँ प्रभु महावीर के संग से परिवर्तित पवित्र निर्मल तस्वीर। **"इस मनुष्य जीवन में अगर कषायों का शमन, विषयों का वमन कर लिया जाय तो जीवन की तस्वीर ऐसी बदल जायेगी कि फिर पुनः पुनः देह की तस्वीरों को बदलने की जरूरत नहीं पड़ेगी।"** इसीलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि समझिए और पाप से हटिये। एक समय ऐसा था कि चोरी करनेवाला चोरी का धंधा भी

नीतिमय होकर करता था, इसलिए उसे चोर कहना या साहुकार कहना मुश्किल था। चोरी करने पर यदि उसे सच्चाई समझाने वाला मिल जाये तो अपने पापमय जीवन की तस्वीर बदल देता।

एक चोर चोरी करने मे बहुत होशियार एव बहादुर था। वह बहादुर चोर के नाम से प्रसिद्ध था। उसने अनेक भयकर चोरियॉ की, पर कभी भी वह चोर के रूप नहीं पकड़ा गया। उस समय अवन्ती मे महाराज विक्रम का राज्य था। विक्रम के शासन मे आधी रात मे घर के द्वार खुले रखकर लोग सो जाते, फिर भी किसी की ताकत नहीं थी कि उसके राज्य मे कोई चोरी कर सके। इस बहादुर ने सकल्प किया कि ''मै विक्रम राजा के राज्य मे चोरी करू तो सच्चा चोर।'' वह अपने घर से निकला विक्रम राजा के राज्य की ओर। अवन्ती उसके गाव से आठ मील दूर था। बिना किसी साथी को साथ लिए अकेला ही सिर पर कपडा बाधकर विक्रम राजा को अपनी बहादुरी का प्रमाण देने निकल पडा। भयंकर गर्मी, दोपहर का समय, चलते-चलते वह थककर चूर हो गया। मार्ग मे एक विशाल बरगद का वृक्ष आया, उस वृक्ष के नीचे प्राय आने जाने वाले विद्यार्थी विश्राम लेते थे और थकान दूर करते थे। पास मे पानी का प्याऊ था, वहॉ पानी पीकर तृषा शात करते थे। यह चोर भी उस बरगद के वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठा। उसे जोरो की भूख लगी थी। मद-मद पवन चल रहा था। चोर अपना डिब्बा खोलकर खाने के लिए बैठा। उसके मन मे विचार आया कि–''क्या मै अकेला खाऊगा ? अगर कोई और आ जाता तो उसे खिलाकर खाऊॅ।' चोर होने पर भी उसकी भावना कितनी सुन्दर है। वह ऐसा सोच ही रहा था कि सामने से एक मुसाफिर आता नजर आया। चोर ने बनिये से कहा–'बैठो भाई ! वह भी विश्राम हेतु बैठ गया। उसे मालूम नहीं था कि–'यह चोर है।' बनिये ने भी अपने भोजन का डिब्बा खोला। दोनों ने परस्पर एक-दूसरे का भोजन लिया और खाया, प्याऊ का पानी पीया। बातो ही बातो मे चोर ने बनिये से पूछा–भाई ! आप कहॉ से आ रहे हो ? वह बनिया पास के गाव मे तकाजा (कर्जा वसूल करने) करने गया था और पुन अवन्ती जा रहा था, पर था बडा चालाक। सोचा–जगल है, मै स्वयं अकेला हूॅ, पास मे पैसे है, फिर

अनजान व्यक्ति का क्या भरोसा ? उसने बड़ी चतुराई से उत्तर दिया–''मै अमुक गॉव में एक रिश्तेदार से मिलने गया था, उस वक्त सोचा कि क्यो ने वसूली भी करता जाऊं, पर वसूली नहीं हुई।'' फिर बनिये ने चोर से पूछा कि–''आप कौन हैं ? आपका नाम क्या है ?''

चोर बडा सत्यनिष्ठ था। उसने कहा–''मैं बहादुर चोर के नाम से प्रसिद्ध हूॅ।'' चोर का नाम सुनते ही बनियॉ भय के मारे कापने लगा। उसके शरीर से पसीना बहने लगा। वह जल्दी से वहॉ से जाने की तैयारी करने लगा। चोर समझ गया कि यह मुझसे भयभीत हो रहा है। वह बोला–भाई ! डरो मत। मै चोर हूँ, यह बात सत्य है, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा है कि महिने मे एक ही बार चोरी करता हूॅ। इससे अधिक चोरी नहीं करता, अत: मैं तुम्हें नहीं लूटुंगा। मुझे पता है कि आप वसूली करके आये हो। आपके पास पैसे हैं, पर मुझे नहीं चाहिए। आप इतनी जल्दबाजी क्यो कर रहे है ? मै भी अवन्ती जा रहा हूॅ, थोडा रूको, दोनो साथ में चलते है। जगल मे एक से दो भले। परन्तु वह बनियां अभी भी डर रहा था। बोला–नहीं भाई ! मुझे देर हो रही है। इसलिए मैं जल्दी जाऊंगा।

चोर ने कहा–आपको जाना हो तो जाइए, परन्तु एक सौदा करें। किसका सौदा ? चोर ने कहा–आपके पास यह लकडी है, यह मुझे अच्छी लगी, आप कहे उतने रुपये देने के लिए तैयार हूॅ, यह लकडी मुझे दे दीजिए। बनियां बोला–''भाई, कोई मुझे पॉच लाख रुपये दे तो भी मै लकडी किसी को नहीं दे सकता।'' यह लकडी मेरे बाप-दादा की निशानी है।'' बनिये ने मना किया तो चोर ने उछलकर उसके हाथ मे से लकडी छीन ली और उसके देखते-देखते लकडी के दो टुकडे कर दिये। लकडी भीतर से पोली थी। उसके टुटते ही उसमें से चार कीमती रत्न धरती पर आ गिरे। उन रत्नों को उठाकर चोर ने बनिये को दिये और कहा–मैंने आपको पहले कहा था कि मैं चोर हूॅ, पर आपको लुटने का मेरा इरादा नहीं था, परन्तु आपको मुझे पर विश्वास नहीं आया, इसलिए मैने ऐसा किया। तुम्हारे रत्न तुम्हे मुबारक। अव तुम्हें जाना हो तो खुशी से जाओ, परन्तु अवन्ती नरेश विक्रम को मेरी ओर से यह संदेश अवश्य देना कि ''शुक्रवार रात को साढे वारह वजे रूपा चोर चोरी करने आने

वाला है, जो व्यवस्था करनी हो, वह कर ले। चौकीदार पहरेदार रखना हो तो रख ले। सैनिको की टोली मेरे स्वागत के लिए भेजनी हो तो भेज दे। किले पर गोलियो से भरी बन्दुके लेकर सैनिकों को खडे रखना हो तो रखले, लेकिन मै आकर अवन्ती को लुटे बिना वापस जाने वाला नहीं हूं।''

बनिया तो शीघ्र ही उससे छुटकारा पाना चाहता था, अत बोला- ''ठीक है।'' और आगे बढ गया। जब तक चोर दिखता रहा तब तक तो धीरे चला और जैसे ही चोर दिखना बद हुआ कि ऐसी तेज दौड लगाई कि सीधा घर पहुँच कर ही सांस ली। कुछ आश्वस्त होने के बाद चोर द्वारा भेजा गया संदेश विक्रम राजा को दिया।

विक्रम राजा को आश्चर्य हुआ कि ''यह कैसा बहादुर है जो पहले सदेश कहलवाता है और फिर चोरी करने जाता है ? इसे क्या कहे **चोर या साहूकार ?** हो सकता है वह चोरी करने नहीं आ रहा होगा परन्तु मेरी बुद्धि की परीक्षा करने आ रहा होगा।'

विक्रम राजा भी कम बुद्धिमान नहीं थे। उन्होने दूसरे दिन राज्य मे एलान करवाया कि आप सभी अपने घर के द्वार खुले रखकर सो जाइएगा। कोई भी अपनी अलमारी के ताला नहीं लगायेगा। सभी अपने माल-सामान की सूची बना लेना। यदि किसी के घर चोरी हो जाएगी, तो उसके चुराये गये सामान की पूर्ति राज-भडार से हो जायेगी। आज किसी को पहरा देने की आवश्यकता नहीं है। विक्रम राजा स्वय आज रात को पहरा देगे।'

शुक्रवार का दिन, यह एलान श्रवण कर सारी प्रजा अपने घर के द्वार खुले रखकर निश्चिंत होकर सो गयी। पहरेदार भी सभी सो रहे है। राजा विक्रम चोर का स्वाग रचकर, दुपट्टा बाधकर, कमर पर तलवार लटकाकर शुक्रवार की रात को अपने राज्य मे पहरा देने के लिए घूमने लगे। विक्रम राजा किले के इर्द-गिर्द घूम रहे है, सोच रहे है कि चोर आयेगा तो कहाँ से आयेगा ? घुमते-घुमते किले की एक ओर की दीवार टुटी हुई देखी। चोर यहीं से आ सकता है, ऐसा विचारकर चोर की राह देखते हुए राजा विक्रम वहीं पर खडे हो गये। राजा का विचार सही साबित हुआ। ठीक साढे बारह बजे वहाँ रूपा चोर आया और किले पर चढा। किनार टूटी हुई थी इसलिए

उसमें से धूल गिरने लगी। राजा समझ गये कि–''यही रूपा चोर है।'' चोर चदनगोह रखकर धीरे-धीरे उतरने लगा। आधे तक उतरा होगा कि उसने देखा कि नीचे कोई मनुष्य खडा है। अतः वापस चढने लगा। उस समय विक्रम राजा ने अपनी बुद्धि से चोर लोग चोर को बुलाते है उस ढग से आवाज दी। चोर को लगा कि–''यह मेरे जैसा कोई ओर चोर चोरी करने आया लगता है। अच्छा हुआ, एक से भले दो हो गये। चोर नीचे उतरा।

विक्रमराजा का पहनावा, बोलचाल सब चोर जैसी थी, अत. चोर पहचान नहीं सका। विक्रम राजा चोर के साथ चोर की तरह मिल गये। दोनों ने साथ मे प्रवेश किया। नगर के लोग राजा के हुक्म से घर के द्वार खुले रखकर सोये थे। चलते हुए मार्ग मे सबसे पहले प्रधान का महल आया। विक्रम ने कहा–आज हम प्रधान के घर मे चोरी करेंगे। प्रधान के घर के द्वार खुले थे, चौकीदार आराम से सोये हुए थे। विक्रम ने कहा–''मै बाहर पहरा दूंगा। तुम अन्दर जाकर जितना माल हडप सको, हड़प लेना, मै यहॉ खड़ा हूँ, तुम्हारा कोई बाल भी बाका नहीं कर सकता।'' चोर अन्दर गया पर थोडी सी देर में पुन बाहर आ गया। विक्रम ने कहा–तुम वापस इतने जल्दी कैसे आ गये ? चोर ने कहा–भाई ! मैं प्रधान के भवन में गया, वहॉ प्रधान की पत्नी सो रही थी। मेरे पाव की आहट से उसकी नींद खुल गई और कहने लगी–कौन हो भाई ? उसने मुझे भाई कहा तो उस नाते वह मेरी बहिन हो गई। फिर भाई अपनी बहिन के घर में चोरी करेगा क्या ? उलटा मै तो उसके तकिये के नीचे एक स्वर्ण मुद्रा रखकर आया हूँ। अब आगे चलिए। राजा विचार करने लगा कि–''अरे यह चोर है या साहूकार ? नादान है या खानदान ? आज के जमाने में तो सगे भाई भी बहन को लूटने मे नहीं हिचकिचाते। तो यह सिर्फ ''भाई'' शब्द के संबोधन मात्र से चोरी न कर खाली हाथ लौट आया।'' आगे बढे। चलते-चलते नगर सेठ की हवेली पर पहुॅचे। वहॉ भी न कोई चौकीदार न कोई पहरेदार। खिडकी द्वार खुले पडे हैं। विक्रम ने कहा मै बाहर खडा हूँ, तुम अन्दर जाओ और लूट सको, उतना लूट लो। देखना खाली हाथ मत आना। चोर अन्दर गया। घना अन्धकार था, जितनी चोरी करना चाहे उतनी चोरी की जा सकती थी। चोर कमरे में

गया, वहाँ पिटारे पर एक कटोरी रखी हुई थी, उसमे सफेद-सफेद टुकडे थे। चोर ने सोचा—यह तो मिश्री है। मिश्री तो शकुनरूप है। मिश्री समझकर एक टुकडा उठाया और मुँह मे डाला तो पता चला कि मिश्री के बजाय नमक था। चोर वापस बाहर आ गया। विक्रम ने पूछा—''क्यो भाई ! तुम वापस क्यो आ गये ?'' चोर ने कहा—''भाई ! मै जिस कमरे मे गया, वहाँ एक कटोरी पडी थी। उसमे से मैने मिश्री समझकर जिसे खाया, वह नमक निकल गया। जिसका नमक मेरे पेट मे पडा है, उसके घर मे मै चोरी कैसे कर सकता हूँ ? राजा यह सुनकर और अधिक आश्चर्यचकित हो उठा कि—''अरे यह कोई मानव है या देव है ? आज के प्राणियो की तो यह हालत है कि जिसकी खाते है उसी का खराबा करते है।''

विक्रम राजा ने कहा—''भाई ! प्रधान और सेठ के घर से तुम वापस आ गये, रात भी बहुत हो गई है। अब अपन सीधा राजा विक्रम के महल मे चोरी करेगे। चलो उनके महल मे मै भी साथ चलता हूँ।'' दोनो साथ मे महल में गये। सात मजिल का भव्य महल, पर एक भी चौकीदार नहीं। एक-एक करके सातवीं मजिल पर पहुँचे। वहाँ का दृश्य तो ऐसा था, मानो स्वर्ग ही हो। स्वर्णमय पाये वाले पलग पर विक्रम राजा की रानी आराम से सो रही थी। विक्रम ने कहा—यहाँ क्या चोरी करेगे। चोर की बुद्धि की परीक्षा के लिए कहा—''देखो, रानी जी सो रहे है, चोरी का अच्छा मौका है। पलग के चारो पाये सोने के है, उन्हे निकाल कर ले जाय, परन्तु रानी जाग न जाय और नीचे नहीं गिरे। इस प्रकार उसके पाये निकाल दो तो मै तुम्हे सच्चा चोर मानूगा।'' रूपा ने कहा—''इसमे कौनसी बडी बात है ? यह तो मेरे बांये हाथ का खेल है।''

चोर ने आस-पास नजर दौडाई तो एक गद्दियो का ढेर लगा हुआ था। चोर उसमे से एक-एक गद्दा लेकर पलंग के नीचे रखने लगा। उसने पलंग के नीचे गद्दे इस ढंग से रखे कि ठीक पलग की रस्सी को छू गये। राजा पास खडा होकर देख रहा था कि चोर क्या करता है। कुछ क्षण बाद चोर ने छूरी से आस-पास की रस्सी संभालकर काट डाली, रस्सी के कटते ही रानी तुरन्त गद्दे पर आ गई। रानी को किंचित मात्र भी परेशानी नहीं हुई। वह

उसमे से धूल गिरने लगी। राजा समझ गये कि–''यही रूपा चोर है।'' चोर चंदनगोह रखकर धीरे-धीरे उतरने लगा। आधे तक उतरा होगा कि उसने देखा कि नीचे कोई मनुष्य खडा है। अत. वापस चढने लगा। उस समय विक्रम राजा ने अपनी बुद्धि से चोर लोग चोर को बुलाते है उस ढग से आवाज दी। चोर को लगा कि–''यह मेरे जैसा कोई ओर चोर चोरी करने आया लगता है। अच्छा हुआ, एक से भले दो हो गये। चोर नीचे उतरा।

विक्रमराजा का पहनावा, बोलचाल सब चोर जैसी थी, अत: चोर पहचान नहीं सका। विक्रम राजा चोर के साथ चोर की तरह मिल गये। दोनो ने साथ मे प्रवेश किया। नगर के लोग राजा के हुक्म से घर के द्वार खुले रखकर सोये थे। चलते हुए मार्ग मे सबसे पहले प्रधान का महल आया। विक्रम ने कहा–आज हम प्रधान के घर में चोरी करेंगे। प्रधान के घर के द्वार खुले थे, चौकीदार आराम से सोये हुए थे। विक्रम ने कहा–''मै बाहर पहरा दूगा। तुम अन्दर जाकर जितना माल हडप सको, हडप लेना, मै यहाँ खड़ा हूँ, तुम्हारा कोई बाल भी बाका नहीं कर सकता।'' चोर अन्दर गया पर थोडी सी देर मे पुन बाहर आ गया। विक्रम ने कहा–तुम वापस इतने जल्दी कैसे आ गये ? चोर ने कहा–भाई ! मैं प्रधान के भवन में गया, वहाँ प्रधान की पत्नी सो रही थी। मेरे पांव की आहट से उसकी नींद खुल गई और कहने लगी–कौन हो भाई ? उसने मुझे भाई कहा तो उस नाते वह मेरी बहिन हो गई। फिर भाई अपनी बहिन के घर में चोरी करेगा क्या ? उलटा मै तो उसके तकिये के नीचे एक स्वर्ण मुद्रा रखकर आया हूँ। अब आगे चलिए। राजा विचार करने लगा कि–''अरे यह चोर है या साहूकार ? नादान है या खानदान ? आज के जमाने मे तो सगे भाई भी बहन को लूटने मे नहीं हिचकिचाते। तो यह सिर्फ ''भाई'' शब्द के संबोधन मात्र से चोरी न कर खाली हाथ लौट आया।'' आगे बढे। चलते-चलते नगर सेठ की हवेली पर पहुँचे। वहाँ भी न कोई चौकीदार न कोई पहरेदार। खिडकी द्वार खुले पडे है। विक्रम ने कहा मै बाहर खडा हूँ, तुम अन्दर जाओ और लूट सको, उतना लूट लो। देखना खाली हाथ मत आना। चोर अन्दर गया। घना अन्धकार था, जितनी चोरी करना चाहे उतनी चोरी की जा सकती थी। चोर कमरे में

गया, वहाँ पिटारे पर एक कटोरी रखी हुई थी, उसमें सफेद-सफेद टुकडे थे। चोर ने सोचा–यह तो मिश्री है। मिश्री तो शकुनरूप है। मिश्री समझकर एक टुकडा उठाया और मुँह मे डाला तो पता चला कि मिश्री के बजाय नमक था। चोर वापस बाहर आ गया। विक्रम ने पूछा–''क्यो भाई ! तुम वापस क्यो आ गये ?'' चोर ने कहा–''भाई ! मै जिस कमरे मे गया, वहाँ एक कटोरी पडी थी। उसमे से मैने मिश्री समझकर जिसे खाया, वह नमक निकल गया। जिसका नमक मेरे पेट मे पडा है, उसके घर मे मै चोरी कैसे कर सकता हूँ ? राजा यह सुनकर और अधिक आश्चर्यचकित हो उठा कि–''अरे यह कोई मानव है या देव है ? आज के प्राणियो की तो यह हालत है कि जिसकी खाते है उसी का खराबा करते है।''

विक्रम राजा ने कहा–''भाई ! प्रधान और सेठ के घर से तुम वापस आ गये, रात भी बहुत हो गई है। अब अपन सीधा राजा विक्रम के महल मे चोरी करेगे। चलो उनके महल मे मै भी साथ चलता हूँ।'' दोनो साथ मे महल मे गये। सात मजिल का भव्य महल, पर एक भी चौकीदार नहीं। एक-एक करके सातवीं मजिल पर पहुँचे। वहाँ का दृश्य तो ऐसा था, मानो स्वर्ग ही हो। स्वर्णमय पाये वाले पलग पर विक्रम राजा की रानी आराम से सो रही थी। विक्रम ने कहा–यहाँ क्या चोरी करेगे। चोर की बुद्धि की परीक्षा के लिए कहा–''देखो, रानी जी सो रहे है, चोरी का अच्छा मौका है। पलंग के चारो पाये सोने के है, उन्हे निकाल कर ले जाय, परन्तु रानी जाग न जाय और नीचे नहीं गिरे। इस प्रकार उसके पाये निकाल दो तो मै तुम्हे सच्चा चोर मानूंगा।'' रूपा ने कहा–''इसमें कौनसी बडी बात है ? यह तो मेरे बाये हाथ का खेल है।''

चोर ने आस-पास नजर दौड़ाई तो एक गद्दियो का ढेर लगा हुआ था। चोर उसमे से एक-एक गद्दा लेकर पलंग के नीचे रखने लगा। उसने पलंग के नीचे गद्दे इस ढंग से रखे कि ठीक पलग की रस्सी को छू गये। राजा पास खडा होकर देख रहा था कि चोर क्या करता है। कुछ क्षण बाद चोर ने छूरी से आस-पास की रस्सी सभालकर काट डाली, रस्सी के कटते ही रानी तुरन्त गद्दे पर आ गई। रानी को किंचित मात्र भी परेशानी नहीं हुई। वह

निद्राधीन ही रही। फिर चोर ने सावधानीपूर्वक पलंग के चारों पाये निकाल लिये और राजा को बोला–अब चलो, बस पर्याप्त है ये चार पाये। अब हम यहाँ से निकलते है। मेरी प्रतिज्ञा है–''महीने मे एक से अधिक बार चोरी नहीं करना।''

राजा और चोर दोनो महल के नीचे आ गये और राज्य के बाहर एक पेड के नीचे आकर बैठ गये। वहाँ पर उस चोर ने चोरी मे प्राप्त स्वर्ण के चारो पायो के दो हिस्से किये। दो पाये मेरी और दो पाये आपके। राजा ने कहा– ''भाई ! मै तो एक तरफ खडा था। सारी मेहनत तो तुमने की है, इसलिए तीन तुम्हारे और एक मेरा। चोर कहता है–नहीं, दो आपके और दो मेरे। क्योकि चोरी करते समय यदि रानी जाग जाती और हम पकडे जाते तो दोनो को शिक्षा समान मिलती न ? उसमे अधिक और कम नहीं होता। तो फिर चोरी करने पर जो माल प्राप्त हुआ है, उसमे भी दोनो बराबर ही हिस्सेदार है न। इस प्रकार दोनो का वार्तालाप चल रहा था कि पेड पर से एक पक्षी बोला–''राजा और चोर हिस्से करते है, मालिक और चोर हिस्से करते है।'' चोर पक्षी की भाषा समझता था, तुरन्त खडा हुआ और राजा के चरणों मे गिर पडा। राजा की गोद मे सिर रखकर बहुत रोया। अश्रुओं से राजा के पैर धो दिये। यह देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। यह चोर अचानक ऐसा क्यो करता है ? राजा ने पूछा–'भाई ! तुझे क्या हो गया है ? तुम इतने रोते क्यो हो ?'

चोर ने कहा–'मुझे अब पता चला कि आप स्वयं अवन्ती नरेश विक्रम महाराज हो। आपने चोरी करने पर भी मुझे नहीं पकडा। राजा ने पूछा–'तुझे कैसे पता चला कि मै स्वयं विक्रम राजा हूँ।'

''महाराज ! मै पक्षी की भाषा जानता हूँ। सुनिये–इस पेड पर बैठा पक्षी कह रहा है–मालिक और चोर हिस्से कर रहे है। ये चार पाये आपके महल के है, अत आप इसके मालिक हैं और मै चोर हूँ। इसलिए समझ गया कि आप विक्रम राजा हो।'' राजा ने चोर को गले से लगा लिया और बोले– 'मुझे नहीं लगता कि आप चोर कुल मे उत्पन्न हुए हो, आप किसी सम्पन्न खानदानी कुल मे जन्मे हो, ऐसा लगता है। आपको यह चोरी का यह पाप-धधा क्यो करना पडा ? सत्य-सत्य बताओ।

''महाराज ! आपका कथन पूर्ण सत्य है। मैने एक सम्पन्न खानदानी कुल मे जन्म लिया है। सेठ का पुत्र हूँ। मेरे माता-पिता का बचपन मे ही निधन हो गया था। अमलदार (मुनीम) ने सारी पूजी लेकर मुझे भिखारी बना दिया और घर से निकाल दिया। बुरे मित्रो की संगत मे मै भी चोरी करना सीख गया। आज मै नामी चोर बन गया। यह पाप मुझे बहुत व्यथित करता है, इसलिए मैने अपनी रोजगारी हेतु महीने मे एक बार चोरी करने की छूट रखकर दूसरी प्रतिज्ञा की है। चोरी करने पर भी मै कभी असत्य नहीं बोलता हूँ।''

''भाई ! क्या तुम उस अमलदार को जानते हो ?'' चोर ने उसकी जानकारी दी। राजा ने उससे पूछताछ की। फिर बडी सजा की धमकी दी तो उसने सारी सचाई बता दी। तब चोर की सारी सपत्ति पुन उसे दिला दी। चोर पुन सेठ बन गया। आजीवन चोरी करने का त्याग कर लिया।

राजा को उसके प्रति बहुत आदर भाव जागृत हुआ कि चोर होने पर भी कितना इज्जतदार एव प्रामाणिक है। विवशतावश बुरी संगति से यह धधा अपनाना पडा, परन्तु इसकी नीति कितनी शुद्ध है। यह हृदय से चोर नहीं साहूकार है।

राजा ने कहा–''आज से तुम मेरे राज्य के प्रधान हो। तुम्हारे जैसा सत्यवादी और प्रामाणिक प्रधान को प्राप्त कर मुझे अतीव प्रसन्नता है।''

देखिए–चोर होने पर भी उसके पास कितनी साहूकारी थी। महाराज की कृपा प्राप्त कर चोरी का धन्धा छोड दिया और प्रधान पद को प्राप्त कर लिया। उसने अपने जीवन की तस्वीर बदल डाली।

यह चातुर्मासिक पर्व हमे यही सदेश दे रहा है–चार माह तक वीतराग वाणी अमृतपान करते हुए आप अपने जीवन की तस्वीर ऐसी बदल डाले कि फिर देह की तस्वीर बार-बार बदलनी नहीं पडे। ***

2

रक्षाबंधन

रक्षाबधन भाई-बहिन के प्रेम संवर्धन का त्यौहार है। आज के दिन भाई को बहिन का और बहिन को भाई का अभाव अखरता है, पर यदि ''वसुधैवकुटुम्बकम्'' की भावना रखे तो सब भाई और बहिन माता और पिता हैं।

रक्षाबधन सिर्फ धागे का बंधन नहीं है, किन्तु धागे के माध्यम से पारस्परिक स्नेह का बंधन है, आत्मा का बधन है। रक्षा + बंधन अर्थात् विपदाओं से रक्षा हेतु दो आत्माओं का बंधन।

दुनिया मे जितने भी पर्व मनाये जाते है, उनके दो रूप होते है– आध्यात्मिक और सामाजिक।

आध्यात्मिक रूप आत्मा से सबंधित होता है और आत्मिक उन्नति की प्रेरणा देता है।

सामाजिक रूप उसका बाह्य रूप होता है, उसका प्रारभ किसी घटना से संबंधित होता है और धीरे-धीरे वह परम्परा अनुमोदित हो जाता है। परम्परा अनुसार चलते-चलते उसमे नई-नई बाते जुडती जाती है। उसका आयाम विस्तृत हो जाता है, वह फैलता जाता है और फिर त्यौहार का रूप ले लेता है। यह त्यौहार देश की संस्कृति से अनुप्राणित होता है।

आजकल रक्षाबंधन का सामाजिक रूप यह है कि बहिन अपने भाई को राखी बांधती है और भाई राखी बंधवाकर यथाशक्य गहना, कपड़ा और रुपया आदि देकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेते है और बहिने भी कुछ पाने की इच्छा से राखी बांधती है। वे कहती भी है–''भैय्या जल्दी आना, चूंड़ा चूंदडी लेते आना।'' इसी प्रकार ब्राह्मण भी वैश्यो और क्षत्रियो को रक्षा सूत्र बांधते है और पुरस्कार स्वरूप दक्षिणा पाते हैं, किन्तु इस पर्व का यही

रूप नहीं है।

हम हजारो वर्षो मे इस पर्व को मनाते आ रहे हैं। फिर भी समाज, देश व राष्ट्र मे अनेको भाई-बहिन दीन, दु.खी और अरक्षित क्यो है ? कारण स्पष्ट है, हमने पर्व के बाह्य रूप को पकडा है, किन्तु इसकी मूलभूत भावना को, गरिमा को सर्वथा भूल गये है। आज केवल परम्पराओ की लकीर पीटी जा रही है किन्तु वास्तविकता को समझने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। रक्षाबंधन कोई सगे भाई-बहिन के मनाने का पर्व नहीं था, किन्तु कोई भी नारी जब अपने आपको अरक्षित समझती, वह रक्षा करने योग्य पुरुष के पास राखी भेजकर अपनी रक्षा का भार उसके कधो पर डाल देती और वह भी अपना कर्तव्य समझकर उस दायित्व को प्राणप्रण से निभाता था।

मध्यकालीन इतिहास मे अनेक उदाहरण पाए जाते हैं जिससे विदित होता है कि सिर्फ हिन्दुओं मे ही नहीं, वरन् अन्य जाति के शासको ने भी रक्षाबंधन का सम्मान किया। मेवाड के महाराणा संग्रामसिंह बाबर के विरूद्ध युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हो गए थे। उनका पुत्र उदयसिह उस समय दूधमुंहा शिशु था, चित्तौड़ का शासन विधवा महारानी कर्णवती सामंतों की सहायता से चला रही थी। इस अवसर का लाभ उठाकर गुजरात के मुसलमान शासक बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। इस विपत्ति मे रक्षा का कोई उपाय न देखकर महारानी कर्णवती ने मुगल सम्राट हुमायूं के पास राखी भेजी, साथ मे संदेश भिजवाया-''भाई ! मै राखी के इन धागो मे अपना स्नेह दे रही हू, तुम मेरे भाई हो, मै तुम्हारी बहिन हूं। मेरी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है।'' जिस समय राखी हुमायूं को मिली, उस समय वह बंगाल मे युद्धरत था। विजय श्री उसके सन्मुख खडी थी, किन्तु वह उस राखी की उपेक्षा नहीं कर सका। युद्ध वहीं छोड, विशाल सेना को साथ लेकर चित्तौड की ओर चल पड़ा तथा अपने ही जाति भाई से भिड गया। उस निर्जीव राखी के बधन मे इतनी शक्ति थी कि उससे प्रेरित हो, ऐसे विकट समय मे भी अपनी बहिन कर्णवती के सम्मान की रक्षा की। इस प्रकार यह त्यौहार मन मे विराट् भावनाओं को जगाता है, चाहे कोई हिन्दू हो या मुसलमान। ऊंचे संकल्प, जाति को नहीं देखते है। यह रक्षा, इन्सान मे इन्सानियत जागृत करती है। इस देश मे ऐसे अनेक भाई हुए हैं, जिन्होंने अपने जीवन की परवाह नहीं की, अपने सर्वस्व को स्वाहा कर अपनी अपरिचित बहिन के सम्मान पर आंच नहीं आने दी। राखी के इन धागों ने

2

रक्षाबंधन

रक्षाबंधन भाई-बहिन के प्रेम संवर्धन का त्यौहार है। आज के दिन भाई को बहिन का और बहिन को भाई का अभाव अखरता है, पर यदि ''वसुधैवकुटुम्बकम्'' की भावना रखें तो सब भाई और बहिन माता और पिता हैं।

रक्षाबधन सिर्फ धागे का बंधन नहीं है, किन्तु धागे के माध्यम से पारस्परिक स्नेह का बंधन है, आत्मा का बंधन है। रक्षा + बंधन अर्थात् विपदाओ से रक्षा हेतु दो आत्माओ का बधन।

दुनिया में जितने भी पर्व मनाये जाते है, उनके दो रूप होते है- आध्यात्मिक और सामाजिक।

आध्यात्मिक रूप आत्मा से संबंधित होता है और आत्मिक उन्नति की प्रेरणा देता है।

सामाजिक रूप उसका बाह्य रूप होता है, उसका प्रारभ किसी घटना से सबंधित होता है और धीरे-धीरे वह परम्परा अनुमोदित हो जाता है। परम्परा अनुसार चलते-चलते उसमे नई-नई बातें जुड़ती जाती है। उसका आयाम विस्तृत हो जाता है, वह फैलता जाता है और फिर त्यौहार का रूप ले लेता है। यह त्यौहार देश की संस्कृति से अनुप्राणित होता है।

आजकल रक्षाबंधन का सामाजिक रूप यह है कि बहिन अपने भाई को राखी बाधती है और भाई राखी बंधवाकर यथाशक्य गहना, कपड़ा और रुपया आदि देकर अपने कर्तव्यो की इतिश्री समझ लेते है और बहिने भी कुछ पाने की इच्छा से राखी बांधती है। वे कहती भी है-''भैय्या जल्दी आना, चूंडा चूंदड़ी लेते आना।'' इसी प्रकार ब्राह्मण भी वैश्यों और क्षत्रियो को रक्षा सूत्र बांधते हैं और पुरस्कार स्वरूप दक्षिणा पाते है, किन्तु इस पर्व का यही

रूप नहीं है।

हम हजारो वर्षो मे इस पर्व को मनाते आ रहे है। फिर भी समाज, देश व राष्ट्र मे अनेको भाई-बहिन दीन, दु खी और अरक्षित क्यो है ? कारण स्पष्ट है, हमने पर्व के बाह्य रूप को पकडा है, किन्तु इसकी मूलभूत भावना को, गरिमा को सर्वथा भूल गये है। आज केवल परम्पराओ की लकीर पीटी जा रही है किन्तु वास्तविकता को समझने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। रक्षाबधन कोई सगे भाई-बहिन के मनाने का पर्व नहीं था, किन्तु कोई भी नारी जब अपने आपको अरक्षित समझती, वह रक्षा करने योग्य पुरुष के पास राखी भेजकर अपनी रक्षा का भार उसके कधो पर डाल देती और वह भी अपना कर्तव्य समझकर उस दायित्व को प्राणप्रण से निभाता था।

मध्यकालीन इतिहास मे अनेक उदाहरण पाए जाते है जिससे विदित होता है कि सिर्फ हिन्दुओ में ही नहीं, वरन् अन्य जाति के शासको ने भी रक्षाबधन का सम्मान किया। मेवाड के महाराणा संग्रामसिंह बाबर के विरूद्ध युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हो गए थे। उनका पुत्र उदयसिह उस समय दूधमुंहा शिशु था, चित्तौड का शासन विधवा महारानी कर्णवती सामतो की सहायता से चला रही थी। इस अवसर का लाभ उठाकर गुजरात के मुसलमान शासक बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। इस विपत्ति मे रक्षा का कोई उपाय न देखकर महारानी कर्णवती ने मुगल सम्राट हुमायू के पास राखी भेजी, साथ मे सदेश भिजवाया–''भाई ! मै राखी के इन धागो मे अपना स्नेह दे रही हू, तुम मेरे भाई हो, मै तुम्हारी बहिन हूं। मेरी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है।'' जिस समय राखी हुमायूं को मिली, उस समय वह बंगाल मे युद्धरत था। विजय श्री उसके सन्मुख खडी थी, किन्तु वह उस राखी की उपेक्षा नहीं कर सका। युद्ध वहीं छोड, विशाल सेना को साथ लेकर चित्तौड की ओर चल पडा तथा अपने ही जाति भाई से भिड गया। उस निर्जीव राखी के बंधन मे इतनी शक्ति थी कि उससे प्रेरित हो, ऐसे विकट समय मे भी अपनी बहिन कर्णवती के सम्मान की रक्षा की। इस प्रकार यह त्यौहार मन मे विराट् भावनाओ को जगाता है, चाहे कोई हिन्दू हो या मुसलमान। ऊंचे संकल्प, जाति को नहीं देखते है। यह रक्षा, इन्सान मे इन्सानियत जागृत करती है। इस देश मे ऐसे अनेक भाई हुए हैं, जिन्होने अपने जीवन की परवाह नहीं की, अपने सर्वस्व को स्वाहा कर अपनी अपरिचित बहिन के सम्मान पर आंच नहीं आने दी। राखी के इन धागो ने

जाति भेद को दूर कर विजातीय बंधु के हृदय मे स्नेह की सरिता बहा दी। यह रक्षाबधन का सामाजिक रूप है। यह रक्षाबंधन पर्व का शरीर है। किन्तु इसकी आत्मा है इसका आध्यात्मिक रूप।

जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर शव मात्र रह जाता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक रूप के अभाव में पर्व निष्प्राण होता है। भारतीय सस्कृति आध्यात्मिकता प्रधान संस्कृति है। यहां के प्रत्येक पर्व की पृष्ठभूमि मे आध्यात्मिकता रही है। रक्षाबधन पर्व में भी एक आध्यात्मिक संदेश है, और वह है–स्व तथा पर की रक्षा की भावना। यह रक्षा की भावना केवल शरीर रक्षा तक ही सीमित नहीं है किन्तु इसका विस्तार आत्मा की रक्षा तक है। इसी प्रकार केवल बहिन की रक्षा तक ही यह सीमित नहीं है, वरन् प्राणीमात्र की रक्षा इसका उद्देश्य है।

आगम में आठ प्रकार की दया बताई है, उनमे दो प्रमुख है–स्वदया और परदया। परदया अर्थात् सभी जीवो की रक्षा करना और स्वदया अर्थात् अपनी आत्मा की रक्षा करना। आप सोच रहे होगे, कि आत्मा की रक्षा का तात्पर्य क्या है ? स्वयं को कष्ट कौन व्यक्ति देता है ? यह सच है कि व्यक्ति अपने आपको कष्ट देना नहीं चाहता है, लेकिन भ्रमवश अपने को कष्ट मे डाल देता है। वह कार्य तो सुख के लिए करता है पर पाता दु.ख है। इसीलिए सूत्रकृतांग सूत्र में कहा गया है–

''एगन्तदुक्खे जरिए व लोए, सकम्मुणाविप्परियासुवेई''

यह संसार ज्वर से पीडित की तरह एकांत दु खी है और सुख के लिए कर्म करके दु.ख पाता है।

वह ज्वर कौनसा है, जिससे संसार पीडित है और सुख प्राप्ति के लिए कार्य करके दु ख पाता है ? वह ज्वर है–शरीर और आत्मा को एक मानना अथवा ''आत्मविस्मृति''। इस आत्मविस्मृति की वजह से शरीर को सुख पहुंचाने के लिए ही जीव ऐसे कर्म करता है, जिनका परिणाम दु खप्रद होता है और ऐसे कर्म किये जाते है, विषय कषाय से संप्रेरित होकर। इन विषय-कषायों से आत्मा को दूर रखना। ये आत्मा के शत्रु हैं, इनसे आत्मा की रक्षा करना स्वदया है।

आज हम इस पर्व के आध्यात्मिक महत्व को भूल गये है। इतिहास के विघटनकारी प्रवृत्तियो के प्रवाह मे बहने से इस पर्व का हार्द तो हमारे हाथ से निकल गया और केवल कलेवर ही रह गया है।

रक्षाबधन का वास्तविक अर्थ–विषय विकारो की ओर जाती हुई आत्मा को रोककर स्वय को एव अन्य सभी प्राणियो को शुभकर्मो की ओर प्रेरित करना। आज दुनिया मे जितने अन्याय, अत्याचार, उत्पीडन हिसाए आदि हो रही है, वह सब इस पर्व के आध्यात्मिकता को भूल जाने के कारण हो रही है। यदि हम इस पर्व की आध्यात्मिकता को आत्मसात करे, ''आत्मवत् सर्वभूतेषु'' के सिद्धान्त को चरितार्थ करे, तो बहुत सी पापकारी प्रवृत्तिया विनष्ट हो जाय।

यदि हम इस पर्व का मूल ढूढे या जानने का प्रयास करे कि इस पर्व का प्रारभ कब से हुआ तो हमे इस पर्व की आध्यात्मिकता का परिज्ञान हो जायेगा। इसका प्रारभ श्रमणो को उनकी साधना मे सहायता करने से हुआ। जैन दर्शन के अनुसार इसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं–

हस्तिनापुर नगर के इक्ष्वाकु वशी नरेश पद्मोत्तर थे। उनके दो पुत्र थे–बडे विष्णुकुमार और छोटे पद्मनाभ। विष्णुकुमार ने पिता के साथ भगवान् मुनि सुव्रत के स्वहस्त दीक्षित आचार्य सुव्रत के चरणो मे दीक्षा अगीकार की। पद्मनाभ ने राज्य सभाला और वे अपने बाहुबल से दिगविजय करके चक्रवर्ती सम्राट बने। चक्रवर्ती पद्मनाभ का मुह लगा मत्री था नमुचि। उसने एक बार चक्रवर्ती की विशिष्ट सेवा करके वचन प्राप्त कर लिया था। नमुचि जैन श्रमणो से बहुत ईर्ष्या रखता था। उसने अवसर देखकर महाराज पद्मनाभ से 7 दिन के लिए राज्य माग लिया। उस अवधि मे उसने जैन साधुओ पर इल्जाम लगाकर उन्हे दडित करने का विचार किया। यह बात अकम्पनाचार्य को श्रावणी पूर्णिमा के दिन आकाश मे नक्षत्रो के प्रकम्पन से ज्ञात हो गई कि कुछ अनिष्ट होने वाला है। महापुरुषो का वियोग होने की संभावना होती है तो प्रकृति पूर्व मे सकेत दे देती है। सकट के समय स्थविर स्व-पर रक्षा मे तत्पर होते है। अकम्पनाचार्य ने सतो के पूछने पर धर्म सघ पर आये संकट से बचने का उपाय बताते हुए कहा कि ''मेरु पर्वत की चूलिका पर विष्णुकुमार मुनि साधना कर रहे है, वे ही इस विपदा से हम जैन श्रमणों की रक्षा कर सकते है। एक शिष्य ने निवेदन किया–आपकी कृपा से

मै उनके पास संदेश पहुचा सकता हूं। गुरु की आज्ञा होने पर मुनि विष्णु कुमार को इस स्थिति से ज्ञात कराया गया। वे विष्णुमुनि आकाश मार्ग से उस विद्याचरण मुनि को साथ लेकर हस्तिनापुर पहुंचे।

नमुचि के दरबार मे उपस्थित हुए और उसे समझाया। जब वह नहीं माना तो कहा—अच्छा, मुझे रहने के लिए कुछ जगह दे दो। तब नमुचि ने कहा—''आप महाराज के बडे भाई है, अत. आपको स्थान दे सकता हूं किन्तु अन्य किसी मुनि को ठहरने नहीं दूंगा।'' यह बात सुनते ही विष्णु मुनि ने वैक्रिय लब्धि के प्रयोग से 1 लाख योजन का अपना वैक्रिय शरीर बनाया। एक पैर अपना उन्होने सभा मे ही रहने दिया और दूसरा पैर जंबूद्वीप के दूसरे किनारे रख दिया। महातेजस्वी मुनि की उस वैक्रियशक्ति से सूर्यचन्द्र आदि देवो के रथ, पथ से चलायमान हो गये, पृथ्वी डगमगाने लगी। स्वर्गलोक मे भी खलबली मच गई। एक प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया।

देवो ने, चक्रवर्ती पद्मनाभ ने एवं सभी ने महामुनि से क्षमा मांगी। नमुचि का अभिमान चूर-चूर हो गया, विष्णु मुनि के पैर पकड लिये और अपने प्राणो की भिक्षा मागी। कहा—''मै आपकी शरण हूं, मेरी रक्षा करो, अब कभी मै ऐसा कार्य नहीं करूंगा। मुनिश्वर ने उसे अभयदान दिया और श्रमण संघ की रक्षा की। उसी दिन से रक्षाबंधन का पर्व प्रारंभ हुआ, ऐसी जैनदर्शन की जनश्रुति है। इस प्रकार रक्षाबधन वास्तव मे आध्यात्मिक पर्व है पर आज हमारा यह पर्व प्रदर्शन बन गया है अथवा व्यवसायिक रूप बन गया है। जैसी राखी वैसी ही बहिन को भेट। मुह देखकर तिलक निकालने की कहावत आज चरितार्थ होती देखी जाती है। उद्देश्य से विलोम प्रक्रिया देखी जा रही है। यदि बहिन कर्मोदय से गरीब है, तो राखी का विलोम व्यवहार खीरा डालने के रूप मे तो नहीं किया जा रहा है ? हम चिन्तन करें, यह रक्षा किसी के हृदय पर क्षार का काम तो नहीं कर रही है। रक्षा के बहाने हम ईर्ष्या को तो नहीं पनपा रहे है ? रक्षा के लिए चाहिए—त्याग और समर्पणा। हम केवल पर्व की औपचारिकता मे ही नहीं रह जाये। हम त्याग और समर्पणा से जुडेगे तो स्व-पर रक्षा के उद्देश्य के प्रति हमारी कर्मठ कर्मजा शक्ति का सूत्रपात होगा।

वर्तमान में रक्षाबंधन का यह त्यौहार बहिनो को अतिप्रिय है। आज के दिन कुछ बहिनों का हृदय हर्ष से नाच उठता हैं, तो कुछ घर मे बैठकर आंसू

बहाती हैं। जिनके भाई है, वे बहिने हंसती हुई भाई के हाथो पर राखी बाधने जाती है। भाई बहिन को भोजन करवाकर उसे यथाशक्ति साडी, रुपये आदि देता है। परन्तु जिनके भाई नहीं है, ऐसी बहिने आखो से अश्रु बहाती हैं, सोचती हैं, मेरे भी भाई होता तो मै भी राखी बांधती। लेकिन बहुत सी बहिने ऐसी भी हैं, जो भाई के होने पर भी बिना भाई जैसी हैं। उनके दिल मे आज के दिन बडा आघात लगता है और उनकी बडी करुण दशा होती हैं।

यह ससार बडा ही करुण है। कहीं तो हसी के फव्वारे उड रहे है और कहीं करुण क्रन्दन। कहीं मेवा मिठाइयो से मेजबानी हो रही है, कहीं सुखी रोटी भी नसीब नहीं। इस दुनिया में जिसके पास संपत्ति हैं, उसका सत्कार सम्मान है और जिसके पास सपत्ति नहीं है, उसका स्नेहीजन भी उसका शत्रु बन जाता है। बड़ा विचित्र हाल है इस ससार का। इस संसार मे रहकर समभाव रखना आसान है जिन्होने कर्म फिलोसोफी को समझा है वे ही सुख दु ख मे समभाव रख सकते है अन्यथा दु·ख के क्षणो मे इन्सान घबरा जाते है। लेकिन सदा सब दिन एक जैसे नहीं रहते है। ''यह भी चला जायेगा'' कुछ भी तो स्थिर रहने वाला नहीं है, जब सुख नहीं टिका तो दु·ख कब तक टिकेगा ? संसार परिवर्तनशील है, इस परिवर्तनशील ससार की एक करुण घटना सुनियेगा, इसी रक्षाबधन के दिन घटित करुण कहानी–

एक खानदानी सुखी समृद्ध परिवार, सेठ, सेठानी, उनके एक पुत्र और दो पुत्रिया। बडी पुत्री दक्षा की शादी हो चुकी थी। लडके का नाम रमेश था और उसकी बहिन रमिला मात्र डेढ वर्ष की थी। सब आनंद मगल था। परन्तु यह ससार बडा विचित्र है, कब इन्सान के पुण्य का सूर्य अस्त हो जाय, कहा नहीं जा सकता। अचानक सेठ के पाप का उदय हुआ, व्यापार धंधे मे घाटा ही घाटा लगा। एक समय ऐसा आया सारी पूजी साफ हो गई। गहने, बर्तन सब बिक गये। मेहनत मजदूरी करके पेट भरने लगे। व्यक्ति पहले गरीब हो और बाद मे अमीर बन जाय तो कोई तकलीफ नहीं, पर अमीरी से गरीबी आने पर बहुत दु ख होता है तथा खानदानी परिवार को तो अपनी इज्जत आबरू बनाये रखने की सतत् चिता बनी रहती है। यह दुनिया की रीत है, पास पैसा होता है तो दूर के रिश्ते भी नजदीक हो जाते हैं और जब पास पैसा नहीं होता है। तो सगे संबंधी भी पराये हो जाते है। यही परिस्थिति सेठ की हुई। सेठ बुरी तरह टूट गये, चिंता ही चिंता मे अचानक एक दिन

हृदयगति बंद हो गई। सेठानी पर तो मानो बिजली गिर पडी। सिर का छत्र ही चला गया। चाहे कितनी ही गरीबी हो, पर यदि पुरुष है तो आधार रहता है। अब दोनो बालको की जिम्मेदारी उस मां पर आ गई। अत· हिम्मत रखने के सिवाय कोई उपाय नही था। गरीबी ने उसे सहिष्णु एवं कर्मठ बना दिया। कहीं पापड बेलती, कहीं कपडे की सिलाई करती। इस प्रकार खून पसीना एक करके अपने बच्चो की शिक्षा का प्रबंध किया। स्वयं भूखी रहती, बच्चो को अच्छा खिलाती। बच्चे भी सुदंर थे। बच्चों को कभी किसी प्रकार की कमी महसूस होने नहीं दी। रमेश पढने मे बहुत होशियार था। कुछ ही समय मे पढ लिखकर ग्रेजुएट बन गया। अच्छी नौकरी लग गई। मा ने सोचा–अब मेरे दु ख के दिन गये, सुख के दिन आ गये, लेकिन विधि के विधान ने कुछ और ही योजना गढ रखी थी।

रमेश ने मा की इच्छा के विरूद्ध धनाढय सेठ प्रेमचंद की पुत्री प्रेमीला जो रूपवती भी थी और पैसे वाली थी। उससे प्रेमविवाह कर लिया और अपने घर ले आया। मा–बाप अपने बच्चो की कितनी ही चिंता करे, कितने ही कष्ट सहे, पर ये बच्चे बडे होकर पढ लिखकर होशियार हो जाते है। तब स्वयमेव अपनी पसद से लडकी का चयन कर विवाह कर लेते हैं और मां–बाप को कह देते है–आप हमारी चिंता मत कीजिए, हमने विवाह कर लिया है, आप तो सिर्फ हमे आशीर्वाद दीजिए। यहॉ भी यही हुआ, मां ने कापते हाथो से बेटे–बहू की आरती उतारी, उनका स्वागत किया और आशीर्वाद दिया। भविष्य की भनक मिलने लगी। सोचा कष्ट सहकर भी अब तक रखी इज्जत आबरू यह लडकी नहीं रख पायेगी। कहीं मेरी वृद्धावस्था नहीं बिगड जाय, अगर मेरा कुछ हो गया तो लाडली रमीला का क्या होगा ? इस प्रकार अनेक विचार उसके मानस में उमडने लगे। लेकिन वह फूल सी मासूम रमीला अपनी अप्सरा सी भाभी को देखकर फूली नहीं समा रही है। पतंगे की तरह भाभी के आस–पास मंडरा रही है। मां से कहती है–देखो मा ! भैया कितनी सुदर भाभी लाये है। सजी धजी जैसे कोई राजकुमारी ही ब्याह कर लाए हैं। उसकी खुशी का कोई पारावार नहीं है।

प्रेमिला को ससुराल आये आठ दिन हो गए। जब वह रसोई में हाथ बंटाने आई तो रमिला मा से कहती है–मां ! इतनी सुंदर भाभी से तू रोटी क्यो बनवाती है ? तब मा कहती है–बेटी ! अब तेरी मां के हाथ पैर थक गये है।

घर पूरा भाभी को ही सभालना है। इधर रमेश को भी अपनी पत्नी का काम करना अच्छा नहीं लगता। वह तो बस यही चाहता कि–''मेरी पत्नी सुदर कपडे पहिन सज-धज कर उससे हसे बोले, उसके साथ घूमे।'' वह अपनी मा से स्पष्ट शब्दो मे कहता है मा ! बहू से काम नहीं होगा, घर का काम-काज इसे सभाल दोगी तो यह दो दिन मे ही मुरझा जायेगी। अत घर का काम तो अब तक तुमने जैसे किया है, वैसे ही किया करो। बेटे के मुह से ये शब्द सुन मा तो एकदम सन्न सी रह गई। अरे, मेरा बेटा ही बहू को काम करने से मना करता है, तो बहू को क्या कहू ? वास्तव में जब तक बहू नही आती है, माताए सुखी रहती है, बहू के आते ही वे बेचारी बध जाती है। मा कहती है–बेटा ! अब काम करते करते मै भी तो थक चूकी हू। कम से कम रसोई का काम तो बहू से करने दे। पुन बेटा कहता है–अब तक तो सब काम करती थी, अब बहू आते ही थक गई ? मा ! बहू तो 1 गिलास पानी भी नही भरेगी। तुझे ही सब कुछ करना होगा। माता अश्रु बहाती हुई मौन रह जाती है। एक दिन मा के सीने मे जोर से दर्द उठ गया। सास लेना भी कठिन हो रहा था, बिस्तर से उठने की बिल्कुल हिम्मत नही थी, सुबह की 7 बजे गई थी। बहूरानी उठकर आई तो देखा, रसोईघर बद है। चाय-नाश्ते का रोज की तरह कोई इंतजाम नही था। बहू आयी, सास के पास और जोर से बोली–क्या बात है ? आज सबको उपवास करना है क्या ? सासू ने सोते सोते ही कहा–बेटी ! आज मेरी छाती मे बहुत दर्द है, उठा नहीं जा रहा है, अत आज तू ही मुझे चाय पिला दे। तब तक बेटा भी पहुच गया और बोला–आज रविवार है, हमे बाहर जाना है, बहुत से कार्यक्रम है। इसलिए प्रेमिला को चाय या भोजन बनाने का समय नहीं है। प्रेमिला चल, जल्दी तैयार हो जा और जाते-जाते कहते गये कि तुम मां-बेटी अपना देख लेना। हमारी राह मत देखना।

यह कहकर बेटा-बहू तो चले गये। दीवार की ओर मुह करके मा अपने बेटे का बचपन, लालन-पालन याद करती आसू बहाती रही। पिता की मृत्यु के समय मा रो रही थी, तब रमेश मां को ढाढस बधाता है–''मां ! रोती क्यो हो ? मै हूं ना ! और आज वही मां-बहिन को भूखी छोडकर घूमने चला गया। रोते-रोते दर्द ओर बढने लगा। तभी बाहर से खेलकर रमीला घर आई और कहने लगी–मा ! मुझे भूख लगी, खाना खिलाओ।

मां ने दु ख के दिन देखे थे, समय ने उसे कष्ट सहिष्णु बना दिया, बेटे ने खर्चा देना बद कर दिया। पुन वह घर-घर जाकर काम करती है। अपना एव पुत्री का पेट पाल रही है। इधर रमेश के घर उसकी सासू ने अपना डेरा जमा दिया। सासू ही अब उसकी मा बन गई। कुछ समय बाद प्रेमिला के पुत्र हुआ। पुत्र जन्म की खुशी पर रमेश ने पेडे बंटवाये। माता के यहां भी भिजवाये। मा की बिल्कुल इच्छा न होने पर भी यह सोचकर कि उस बच्चे का क्या दोष है ? उसने पेडे रख लिये। रमेश का पुत्र बहुत कमजोर था। बडी उम्र की औरते उस बच्चे को देखने के लिए आई तो प्रेमिला की मा ने पूछा–बच्चा कैसे मजबूत बनेगा ? उस समय रमेश भी वहीं था। आने वाली औरतो का रमेश की मां से अच्छा स्नेह सबध था, रमेश की मा का दु ख उन औरतो से देखा नहीं जाता था। वे कहने लगी–बच्चा बहुत कमजोर है, बच्चे का बाप भी तो बचपन मे बहुत कमजोर था। इसकी मा ने तो इसे रूई मे सभाल-संभाल कर बडा किया। उसे अच्छा करने के लिए यानी उसका स्वास्थ्य सुधारने के लिए जगह-जगह लेकर फिरती रही। इसकी मां ने तो इतना लाड रखा कि बाप गुजर गया, पास मे कुछ नहीं था, फिर भी इसे जरा भी परेशानी महसूस नहीं होने दी। खुद भूखी रह जाती लेकिन अपने दोनो बच्चों को फूल जैसे रखा। रमेश भी यह सारी बाते सुन रहा था, उसके हृदय मे चोट लगी। उसे अपना अतीत याद हो आया–''अहो ! मैं कैसा अधम पामर हू।'' कितना दु ख सहन कर माता ने मुझे बड़ा किया और इस स्थिति मे पहुचाया और आज मेरी मॉ वृद्धावस्था मे लोगो के घर काम करके अपना और बहिन का पेट पाल रही है। धिक्कार है मुझे।'' यह विचार अब रह-रहकर उसके दिमाग में घूम रहा है। घर से दुकान गया, वहां पर भी मन नहीं लगा। पुन घर आया और अपने कमरे मे जाकर सो गया, पर नींद नहीं आ रही है। करवटे बदल रहा है। बचपन के प्रसंग, मां की ममता उसके नेत्रो के सामने तैर रही है।

इधर दूसरा ही दिन रक्षाबंधन का था। रमिला अपनी सहेलियो के साथ जाकर राखी खरीद कर लाती है और मां से कहती है–मै भैया के राखी बाधने जाऊगी। मा के मना करने पर भी वह कुकुम, चावल आदि लेकर सुबह-सुबह ही भाई को राखी बांधने चली गई। दरवाजा खटखटाया पर भाभी ने नहीं खोला तो अपना कुंकुम, चावल आदि वहीं दरवाजे पर छोड

कर वह मा के पास आई और कहने लगी—भाभी दरवाजा नहीं खोलती है। मा ने कहा—मैने तो तुझे पहले ही मना किया था, तू क्यो गई थी ? इधर कुछ देर बार प्रेमिला ने दरवाजा खोला तो देहली के पास कुकुम चावल आदि देखकर अपनी मा को बुलाकर दिखाया। मा ने कहा—यह तेरी सासू का काम है। तेरी सासू तेरे बच्चे को अच्छा नहीं होने देना चाहती है। इसीलिए तो यह टोना टोटका किया है और वह आ गई, प्रेमिला की सासू से लडने। तब रमीला से उसकी मा कहती है—तुझे बडा शौक है ना, भाई के राखी बाधने का। देख तू वहा कुंकुम चावल छोडकर आई है उसका क्या परिणाम सामने आया है ? अब ओर जाना उसके यहा कभी ? तेरा भाई है कहाॅ ? माता का क्रोध इतना अधिक उग्र हो गया कि वह रमीला को क्रोधाभिभूत हो मारने लगी। मार खाती हुई रमीला जोर-जोर से रोने लगी, यही रक्षाबधन का दिन, घर मे कुहराम मच गया। इधर रोने की जोर-जोर की आवाज से रमेश जो अपने कमरे मे अभी तक सोया था, उठता है और सोचने लगा—आज सुबह-सुबह कौन रो रहा है ? खिडकी से झांका तो देखा कि मा बहिन को मारती हुई कह रही है—तेरा भाई है ही नहीं, तो तू राखी किसे बाधेगी ? बोल, अब कभी जायेगी भाई के यहाॅ ? बहिन रोती हुई कह रही है—मा, मुझे मत मारो, अब मै कभी नहीं जाऊंगी। दूसरी तरफ खडी सासू जमाई की तरफ मुह करके कहती है—देखो, तुम्हारी मा ने तुम्हारे बेटे का अहित करने के लिए टोना टोटका किया है और अब अपना पाप छिपाने के लिए अपनी बेटी को मारने का ढोंग कर रही है।

रमेश विचार मे पड गया, एक ओर बहिन राखी बाधने के लिए रो रही है और दूसरी ओर सासू कहती है कि तेरी मा ने टोना टोटका किया है। नहीं, नहीं . मेरी मां कभी ऐसे काम नहीं कर सकती है। मेरी मा पवित्रता की मूरत है। उसका हृदय भर गया। मां पर लगाया सासू का आक्षेप सहन नहीं कर पाया। तेजी से सीढी उतर कर माता के पास आया, रोती हुई बहिन को गोदी मे उठा लिया और पूछा—तुझे क्या हुआ ? तू क्यो रो रही है ? रोती हुई बहिन बोल रही है— भैया ! अब मै तुम्हारे घर कभी नहीं आऊगी। भाई ने पूछा—पर तूने किया क्या ? बहिन ने रोते-रोते सारी सही बात कही दी। जिसे सुन भाई की आखो से सावन भादवो बरसने लगा। आंसू पौछता हुआ बहिन से कह रहा है, बहिन ! मै चाहे जितना बुरा हूं फिर भी तेरा भाई हूं।

बहिन ! मुझे माफ कर दे, और ले यह मेरा हाथ, इस पर तू राखी बांध, मुझे प्राणो की आहूति देना पडे तो भी दूगा और तेरी रक्षा करूंगा। रमीला ने गोद से नीचे उतरकर अपने भैया को राखी बाधी। फिर रमेश मा के चरणो में गिर पडा। फफक-फफक कर रो रहा है रूंधे कंठ से कह रहा है–मॉ ! मुझे माफ कर दो। मै दुष्टी हूं, पापी हूं, मैने तुम्हे दु ख देने मे कोई कसर नहीं रखी। तुम्हारे असीम उपकार हैं मेरे पर। मॉ ! अब मै मॉ के दिल को, मॉ की ममता को, मॉ के उपकारों को जान पाया हूं। मुझे क्षमा कर दो। मॉ आखिर मॉ ही थी, वात्सल्य का सागर थी। माता के हृदय से सतान के प्रति सदा वात्सल्य की धार ही बहती रही है। माता चरणो में गिरे अपने रमेश को दोनो हाथो से उठाती है और अपने सीने से लगा लेती है।

प्रेमिला और उसकी माता, यह दृश्य देखती रह गई। रमेश, माता और बहिन को लेकर घर आया और प्रेमिला से बोला कि आज से तुझे अपनी मॉ जैसी मेरी मॉ को मानना है और अपनी बहिन जैसी मेरी बहिन को मानना हो, तो इस घर मे रहो नहीं तो अपनी माता के साथ पीहर प्रस्थान करो। अब प्रेमिला क्या बोले, उसका मुह बंद हो गया। रक्षाबधन के इस पवित्र त्यौहार पर पवित्र धागे से बंधे माता-पुत्र और बहिन का छिन्न-भिन्न ससार सुख से भर गया। वैर-बंधन के स्थान पर सभी प्रेम बधन मे बध गये।

गणेशाचार्य फरमाया करते थे–''बहुत से लोग खासतौर से वैश्यगण दवात और कलम को राखी बांधते है, क्षत्रिय लोग तलवार को राखी बाधते है। तराजू, तिजोरी आदि को भी राखी बांधते है। मगर यह सब रूढि है। इस रूढि में प्राण आ सकते है अगर आप यह संकल्प करले।''

1. मैने कलम को राखी बांधी है तो इससे मै झूठा जमा खर्च नहीं लिखूगा। हे कलम ! तू मेरी रक्षा करना, कभी मेरे हृदय मे गलत जमा खर्च करने की दुर्बुद्धि उत्पन्न न होने देना।

2 मैने तराजू को राखी बांधी है तो मै किसी को इससे कम तोलकर नहीं दूगा और अधिक भी नहीं लूंगा।

3. मैने तिजोरी को राखी बांधी है तो न्याय नीति से उपार्जित धन ही इस तिजोरी मे रखूंगा।

4 मैने तलवार को राखी बांधी है तो यह तलवार अब रक्षा के लिए ही काम आयेगी, इससे निरपराध प्राणो का हनन नहीं करूगा।

इस प्रकार रक्षाबधन समस्त जगत की रक्षा करने का आह्वान करता है। अगर आपने अधिक नहीं तो माता-पिता की, भाई-बहिन की, मित्रो की एवं प्राणीमात्र की रक्षा करने का सकल्प कर लिया तो रक्षापर्व मनाना सफल हो जायेगा। इससे आपकी आत्मा की भी रक्षा हो जायेगी।

***



जन्माष्टमी

आज जन्माष्टमी का पवित्र दिवस है। ससार मे तीन तरह के पुरुष होते है—धर्म पुरुष, भोग पुरुष और कर्म पुरुष। **धर्म पुरुष**—तीर्थकर भगवन्तो को धर्म पुरुष कहा है। ये दुनियां में सबसे अधिक पुण्यशाली एवं शक्ति संपन्न होते है। 1 करोड इन्द्र मिलकर भी तीर्थकर की कनिष्ठा अगुली को नहीं हिला सकते हैं। **भोग पुरुष**—भोगपुरुष चक्रवर्ती को कहते हैं। छ· खंड पृथ्वी पर एक छत्र राज्य करते हैं। पूर्वोपार्जित प्रबल पुण्य का भोग करते है। इसलिए इन्हे भोग पुरुष कहा है। **कर्म पुरुष**—जो पुरुष अपने ही पुरुषार्थ पराक्रम के बल से राज्य प्राप्त करते हैं, वे पुरुष कर्म पुरुष कहलाते है। वासुदेव को कर्मपुरुष कहा है। 20 लाख अष्टापद पक्षी के बराबर उनमे बल होता है। वे 1 करोड मन का भारी पत्थर हो तो भी उसे उलट सकते हैं। उनकी शक्ति अत्यंत प्रचंड होती है, उनके समक्ष कोई विरोधी ठहर नहीं पाता।

आज ऐसे कर्म पुरुष श्री कृष्ण वासुदेव की जन्म जयंति है। महान् पुरुषो का जन्म कब होता है, जब पृथ्वी पर पाप बढता है, अधर्म अनीति अत्याचार का बोलबाला अधिक होता है। पापियो का उपद्रव बढ जाता है तब महान् पुरुषो का जन्म होता है। श्री कृष्ण जन्म के समय भी कतिपय राजा गूमडे के समान पीडाकारक थे। कंस उनमें से एक था। वह महाराज उग्रसेन का पुत्र था। माता के गर्भ में आया तो पिता के कलेजे का मांस खाने की इच्छा हुई। गर्भिणी अपनी यह अभिलाषा पति के समक्ष प्रकट न कर सकी, परन्तु साध पूरी न हो सकने के कारण वह दुर्बल और कृश होती गई।

महाराज उग्रसेन ने महारानी की वह दशा देखकर पूछा—निरन्तर दुवली होती जा रही हो, इसका क्या कारण है ?

महारानी ने अत्यन्त दु.ख और लज्जा के साथ कहा—कोई पापी जीव गर्भ मे आया है। उसके प्रभाव से पति के कलेजे का मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ है। तब महाराज ने किसी उपाय से वह दोहद पूर्ण किया।

बालक का जन्म हुआ तो उसे पापी जीव समझकर कांसे के पात्र मे सुलाकर नदी मे बहा दिया। साथ मे एक पत्र लिखकर उस पात्र मे रख दिया।

नदी मे बहता-बहता वह शिशु शौरीपुरी के निकट पहुचा। वहॉ एक गृहस्थ ने उसे देखा और किसी धीवर से उसे मंगवाया। पात्र खोलकर देखा तो उसमे शिशु निकला। संयोगवश वह गृहस्थ नि सतान था, अतएव बालक को पाकर उसे अत्यन्त हर्ष हुआ। उसने सोचा—मेरे घर में अधेरा था। अच्छा हुआ कि अनायास ही दीपक मिल गया। कांसे के पात्र मे था, अत· उसका नाम कंस रख दिया।

लडका बडा हुआ तो खेलने-कूदने लगा। वह बडा चंचल एवं नटखट था। आये दिन कितने ही लडको से झगडता मारपीट करता और उलाहने लाता था। उसके पालक पिता एवं माता उब गये थे। उनके नाको मे दम आ गया। उन्होंने सोचा—हम तो समझते थे कि यह बडा सुन्दर है, शरीर से ह्रष्ट-पुष्ट है और हमे आनन्द प्रदान करेगा, पर यह तो बडा झगडालू है। यह तो बुढिया के घर मे बाघ आ गया।

पिता ने उबकर महाराज वसुदेव से कहा—"महाराज, यह लडका बहुत होशियार है। आपकी सेवा मे रहने योग्य है। महाराज ने उसे रखना स्वीकार कर लिया और वह आनद के साथ रहने लगा।"

एक दिन जरासंध ने वसुदेव को संदेश भेजा कि—"अमुक राजा बडा उद्दण्ड है, आप जाकर उसे पराजित करे तो मै अपनी कन्या आपको ब्याह दूगा और साथ ही बडे-बडे कुछ नगर, हाथी, घोड़े आदि भेंट करूंगा।"

संदेश पाकर वसुदेव कंस के साथ युद्ध करने चले। दोनो ने वीरता के साथ युद्ध किया और उद्दण्ड राजा को बांधकर ले आये। इसी बीच किसी ने सूचना दी कि जरासंध की लडकी सुलक्षणा नहीं है। वह वसुदेव के योग्य नहीं है। अतएव बंदी राजा को लेकर वसुदेव जी जब जरासध के समीप पहुचे और विवाह के प्रस्ताव सामने आया तो वसुदेवजी ने कह दिया—इस युद्ध मे विजय प्राप्त करने का श्रेय कंस को है। इसने मुझसे शिक्षा पाई है। मै इसका गौरव बढाना चाहता हूँ। अतएव जीवयशा कंस को दी जाये, क्योंकि शत्रु को बांधने का कार्य इसी ने किया है।

जरासध ने प्रश्न किया—यह आपका पुत्र है ?

वसुदेव—मेरा पुत्र नहीं है। यह नदी में बहकर आया है। इसके साथ जो कागज था, उसमे महाराज उग्रसेन और महारानी धारणी का नाम लिखा था।

कंस यादवकुमार मान लिया गया और जरासध ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। विवाह के पश्चात् जरासंध ने कंस से पूछा—आपको कहाँ का राज्य चाहिए ?

कंस ने विचार किया—मेरे पिता ने मेरे साथ बडा ही नृशंस व्यवहार किया। मुझे नदी मे बहा दिया। क्यों न मैं उनका राज्य छीन लूं ?

इस प्रकार विचार कर कंस ने मथुरा का राज्य माग लिया। साथ ही यह भी वचन ले लिया कि – अपने राज्य मे मै पूर्ण स्वतंत्र समझा जाऊंगा और मेरी किसी भी फरियाद पर आप विचार नहीं करेगे।

कुछ दिन वहा व्यतीत करके कंस जरासंध की विशाल सेना साथ लेकर मथुरा के राज्य पर अधिकार जमाने के लिए चल पडा। महाराज उग्रसेन को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने भी युद्ध की तैयारी की। मगर कंस की सेना के समक्ष वे पराजित हो गये। कंस ने उन्हे बांधकर कैद कर लिया और पशु की तरह पिजरे में कैद कर दिया और स्वयं राजसिंहासन पर आसीन हो गया। जीवयशा अपने पति की सराहना करने लगी—अहा, मेरे पति कितने शूरवीर एवं शक्तिशाली है, जिन्होने बाप को भी कैद कर लिया।

कंस का एक छोटा भाई था-अतिमुक्तककुमार। पिता को बंदी के रूप मे देखकर उसे बडा आघात लगा। कंस को ऐसा न करने के लिए बहुत समझाया पर जब कंस ने कान न दिया तो वह गृह त्याग कर साधु बन गया।

कंस ने एक बार विचार किया—वसुदेव जी मेरे परमोपकारी है। उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है। मुझे शस्त्रविद्या मे पारंगत बनाया है। यह सारा वैभव उनकी कृपा से ही मिला है। मुझे उनका प्रत्युपकार करना चाहिए। इस प्रकार विचार कर अपने काका देवक की कन्या का विवाह वसुदेव जी के साथ करने का निश्चय किया। वसुदेव जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। विवाह मुर्हूत निश्चित हो गया था। निश्चित समय पर वसुदेव जी वर बनकर उपस्थित हुए। मंगल वाद्य बजने लगे। नगर सुन्दर

ढग से सजाया गया था। जीवयशा मस्त एवं उन्मत्त हो रही थी।

सयोगवशात् अतिमुक्तक मुनि घूमते-घूमते वहीं आ पहुचे। देवर मुनि को आते देख जीवयशा प्रसन्न हुई और उसने मुनि से कहा—देवर जी ! देवकी का विवाह हो रहा है। आपके ज्येष्ठ भ्राता शूरवीर बुद्धिमान एव बलशाली है। विशाल राज्य के स्वामी एव प्रतापशाली है। इधर आप घर-घर भीख मागकर जिन्दगी बिता रहे है। देवर जी ! यह आपको शोभा नहीं देता है। यह भिक्षुकवृत्ति त्याग कर आप महल मे पधार जाओ।

मद मे चूर जीवयशा कहती है—''एक बाप के दो बेटे हो एक राज्य करे और दूसरा भीख मांगे।'' लालाजी, आप कुल को कलक लगा रहे हो। कमा कर खाने की शक्ति नहीं तो क्या चिन्ता है ? आपके भाई समर्थ है। वे आपका पेट भर देगे।

अतिमुक्तक मुनि तपस्वी थे, ज्ञानी थे, लब्धिसम्पन्न थे। वे जीवयशा की अहंकारपूर्ण बाते सुनकर छद्मस्थ होने के कारण क्षुब्ध हो उठे। आवेश आ गया। नहीं आना चाहिए था, पर कभी-कभी भवितव्यता का योग होता है, टल नहीं पाता है।

मुनि ने कहा—रानी, आज तू अपने भाग्य पर इतरा रही है, मदोन्मत्त हो रही है, अपने पति को बडा शक्तिशाली समझ रही है, पर यह क्यो भूलती है कि तेरे श्वसुर कारगार मे बदी है। वे भयानक यातनाएं भोग रहें है और तुम दोनो गुलछरे उडा रहे हो। मै यही देखने आया था कि तुम लोगो के हृदय का जहर निकला या नहीं ? पर मालूम होता है, वह अत समय तक निकलने वाला नहीं है। लेकिन रानी, याद रखना, तुम्हारे यह रागरंग थोड़े समय के ही है। तू आज जिस देवकी के विवाह का उत्सव मना रही है, उसी का सातवां पुत्र तेरे पति और पिता को परलोक का पाहुना बनाएगा।

मुनि का अंतिम शब्द सुनकर जीवयशा का कलेजा कांप उठा । उसके हृदय को गहरा आघात लगा। उसने सोचा—मुनि ने क्रोधित होकर शाप दे दिया है। प्रभो ! अब क्या होगा ?

संयोग की बात समझिये कि उसी दिन एक अद्भूत घटना और घट गई। कस दरबार मे बैठे थे। सभासद उपस्थित थे। उसी समय एक विद्वान नैमित्तिक सभा मे आया। कंस ने प्रश्न किया—बतलाईये मेरी मृत्यु किस

प्रकार होगी ?

ज्योतिषी ने कहा—महाराज, क्षमा करें। आपके पूछने से कहता हू कि महाराज वसुदेव की रानी देवकी के पुत्र से आपकी मृत्यु होगी।

यह सुनकर कंस भीतर ही भीतर भयभीत हो उठा। फिर भी ऊपर से अकड दिखाता हुआ कहता है—पण्डित ! तुम भी खूब ज्योतिष सीखकर आये हो। मुझे मारने वाला इस संसार मे जन्म ही नहीं सकता।

आवेश में आकर कस ने अपने आमात्य से कहा—मंत्री जी इन महापंडित को कारागृह में बंद कर दो और इनके पोथी पन्ना छीन लो। जो मुझे मारने वाला आयेगा, वही इन्हें मुक्त करेगा।

इसके बाद कस ज्योतिष से कहता है—मैंने तो यों ही प्रश्न कर दिया, बाकी तो तुम्हारा ज्योतिष शास्त्र मेरी तलवार के सामने पानी भरता है। हम ग्रह-नक्षत्रों से नहीं डरते है। मेरी तलवार की चमक के समक्ष ग्रह नक्षत्र उसी प्रकार मंद पड जाते है जैसे सूर्य के सामने तारे।

थोडी देर बाद कंस दरबार से उठकर महलों मे जाता है। मन ही मन व्याकुल और चिन्तित हो रहा था, इधर महारानी भी मुनि की भविष्यवाणी सुनकर चिन्ताकुल हो रही थी। कंस सीधा महारानी के पास पहुंचा। उसे उदास देखकर उदासी का कारण पूछा तो जीवयशा ने सारी बात बतादी। तब कंस ने भी सभा में घटित घटना कह सुनाई। इसके पश्चात् थोडी देर के लिए दोनों मौन हो गए। दोनों का चित्त व्याकुल और क्षुब्ध हो रहा था। कुछ देर बाद कंस ठहाका मार कर हंसे–''अरे, इन साधु संन्यासियो की बात जाने दो। ये दुनिया को ठगते रहते है।'' प्रिये ! तुम चिन्ता मत करो। मैं मुनि और ज्योतिषी के कथन को भी मिथ्या कर दूंगा। मुझे मारने की शक्ति किसी में भी नहीं है। मैं देवकी का ही खात्मा किये देता हूं तो न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।

कंस ने फिर सोचा–''देवकी स्त्री है और फिर मेरी बहिन है। उसके प्राण ले लूंगा तो लोग क्या कहेगे ? इसके अतिरिक्त वसुदेव जी का प्रभाव वहुत है। उनका मेरे ऊपर उपकार भी है।''

फिर भी कुछ तो करना ही चाहिए। जीवन-मरण का प्रश्न है। इसे किसी प्रकार हल तो करना ही पड़ेगा। आखिर कपटी कंस ने एक उपाय

खोज निकाला। वह वसुदेव जी के पास पहुँचा और उनके चरणो मे गिर पडा। बोला—महाराज, आपकी मुझ पर असीम कृपा रही है। मै आपका ऋण जीवन पर्यन्त नहीं चुका सकता। मेरे पास आज जो कुछ भी है, आपकी ही कृपा का फल है।

वसुदेव ने सोचा—आज कंस इतनी नम्रता प्रदर्शित कर रहा है तो इसमें कोई रहस्य अवश्य होना चाहिए। यह सोचकर उन्होने कहा—कहो, क्या बात है ? क्या काम है ?

कस—देवकी के उदर से जो सतान हो, मेरे घर पर ही हो। उसका पालन-पोषण का अधिकार मेरा ही रहे।

वसुदेव ने सोचा—इसमे क्या धरा है ? मामा के घर पर सतान का प्रसव और पालन-पोषण हो तो क्या हानि है ?

यह सोचकर वसुदेव ने कस की मांग स्वीकार कर ली। कस चला गया। बाद मे वसुदेव और देवकी को मुनि और ज्योतिषी की भविष्यवाणी का पता चला तो उनके दु ख का पार नहीं रहा। वह दुष्ट अवश्य ही संतान की घात किये बिना नहीं रहेगा। मगर वसुदेव जी वचनबद्ध थे। उनका वचन वज्र की लकीर था, वे कभी भी किसी अवस्था मे वचन भंग नहीं कर सकते थे।

इस प्रसंग में अन्तगडसूत्र की कथा बड़ी उपयोगी है। वहॉ उल्लेख है कि उस समय सुलसा नामक एक सेठानी थी। उसकी कूख से मरी हुई संतान उत्पन्न होती थी। सुलसा ने हरिणैगमैषी देव से प्रार्थना की तो उन्होने कहा कि मृतक को जीवित करने की शक्ति तो मुझमे मे नहीं है। हॉ, एक काम कर सकते हैं और वह यह कि दूसरे के पुत्र तुम्हारे पास लाकर रख दे और तुम्हारे मृतक पुत्र दूसरे के पास पहुँचा दे। यह परिवर्तन इतना गुप्त रूप से होगा कि किसी को कानोकान भी पता नहीं चलेगा।

सुलसा ने यह स्वीकार कर लिया। इस व्यवस्था के अनुसार देवकी के उदर से उत्पन्न होने वाले पुत्र सुलसा के यहॉ पहुँच जाते और सुलसा के मृत पुत्र देवकी के पास पहुँच जाते। हरिणैगमैषी देव के प्रभाव से सुलसा की इच्छा भी पूरी होती और देवकी के बालकों की भी रक्षा हो जाती थी। प्रसव के समय कंस देवकी को अपने यहॉ ले आता था और जब देखता कि देवकी के मृत पुत्र उत्पन्न हुआ है तो फूला नहीं समाता। वह सोचता—मेरा तेज इतना

उग्र है कि देवकी के लडके जन्मते ही मर जाते हैं। फिर भी कंस बडा भयभीत था। सोचता—कहीं यह फिर जिन्दा होकर मुझे न खा जाएँ। यह सोचकर वह तत्कालोत्पन्न मृत बालक को भी पत्थर पर पछाड देता और अपने मन की तसल्ली कर लेता था।

अज्ञानी कंस ने यह कभी नहीं सोचा कि जिसका उदय हुआ होता है उसका अंत भी होता है। जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। इस धरा पर कोई भी जन्म लेनेवाला अमर होकर नहीं आया है तो मै कैसे अमर रहूँगा ?

एक-एक करके देवकी ने छ बालको को जन्म दिया और वे सभी सुलसा के समीप पहुँचकर बडे होने लगे। सातवीं बार श्रीकृष्ण की आत्मा देवलोक से चवकर देवकी की कुक्षी मे आई। उस समय देवकी माता ने सात प्रशस्त स्वप्न देखे।

देवकी ने अपने स्वप्नो का वृत्तान्त महाराज वसुदेव जी से कहा। वसुदेव जी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होने कहा—देवी, इस बार तुम अत्यन्त पराक्रमी पुत्र को जन्म दोगी। वह पुत्र अर्द्ध चक्रवर्ती होगा। भाग्यशाली, यशस्वी एवं तेजस्वी होगा।

धीरे-धीरे गर्भ बढने लगा। देवकी ने वसुदेव जी से कहा—स्वामी ! दुष्ट कस ने छ पुत्रो को मार डाला है, मगर इस बार किसी उपाय से इसकी रक्षा करनी चाहिए।

कंस को सातवीं संतान से ही भय था। अतएव इस बार वह बहुत चौकन्ना हो गया। उसने वसुदेव और देवकी को नजरबंद कर दिया। देवकी अत्यन्त चिन्तित थी। वह कहने लगी—महाराज ! बडे दु.ख की बात है हम अपने एक भी पुत्र की रक्षा नहीं कर पाये। पशु-पक्षी भी अपनी संतान की रक्षा करते है। मगर जो हुआ सो हुआ, पर अब ऐसा प्रतीत होता है कि पराक्रमी तेजस्वी और भाग्यवान् पुत्र का जन्म होगा, अत उसकी रक्षा के लिए कोई उपाय पहले से सोच लिया जाय।

वसुदेव ने गंभीर भाव से कहा—मैंने अभी तक सत्य का परित्याग नहीं किया है। क्या तुम मुझे सत्य छोड़ देने को कहती हो ? मेरा विश्वास है कि अगर बालक प्रचुर पुण्य लेकर आया है और उसके द्वारा जगत का

कल्याण होना है तो प्रकृति स्वय उसकी रक्षा करेगी।

अनमने भाव से देवकी ने कहा—आपका कथन यथार्थ है परन्तु हमे प्रकृति पर निर्भर न रहकर स्वय भी उद्योग करना चाहिए। प्रकृति भी तो किसी न किसी माध्यम से ही कार्य करती है। हमे उसका माध्यम बनना चाहिए।

वसुदेव—बालक रक्षा के लिए उसके बदले दूसरी सतान लाना आवश्यक है। वह कहाँ से लाई जायेगी ?

देवकी—इसकी चिन्ता आप न करे। गोकुल मे रहने वाली नन्द राजा की पत्नी यशोदा, मेरी प्रिय सखी है। उससे मेरी बातचीत हो चुकी है। वह मेरे सातवे पुत्र के बदले अपनी संतान देने को तैयार है। तो आप इतना करे कि अपनी संतान उसको दे आये और उसकी सतान यहाँ ले आये। इस उपाय से संतान की रक्षा हो जायेगी। इससे जगत् का कल्याण होगा और इन अत्याचारो का अत आ जायेगा।

वसुदेवजी ने देवकी रानी की बात स्वीकार करली परन्तु उनके चारों ओर दिन-रात जो कडा पहरा कस ने बैठा दिया था, उसके रहते यह काम होना कठिन जान पडता था। उधर ज्यो-ज्यो प्रसव का समय सन्निकट आने लगा, कंस ने पहरा अधिक कडा कर दिया। कितने ही सरदार पहरेदार बनकर चौकसी करने लगे। फिर भी जन्मने वाले बालक के पुण्य पर भरोसा करके वसुदेव जी और देवकी धैर्य धारण कर समय की प्रतिक्षा कर रहे थे।

भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी आई। अर्द्धरात्रि का समय, महारानी देवकी के उदर से श्रीकृष्ण जी का जन्म हुआ।

यह बात सिद्धान्तमान्य है कि तीर्थकर चक्रवर्ती वासुदेव एव बलदेव जैसे महापुरुषो की जन्मते ही देवता सेवा करते है। श्रीकृष्ण का जन्म होते ही देवकी और वसुदेव के समस्त बंधन टूट गये। देवकी ने वसुदेव को जगाने के उद्देश्य से पुकारा—महाराज ! किंतु महाराज तो जाग ही रहे थे। दोनो ने देखा—बन्धन टूट गये है।

देवकी ने उतावली होकर कहा—नाथ, यही सर्वोत्तम अवसर है। आप गोकुल जाइये और इस बालक को यशोदा को सौप आइए और उसके कोई सतान हुई हो तो लेते आइये।

महाराज वसुदेव ने देखा कि कारागृह के दरवाजे खुले पडे है। बडे-बडे ताले टूट गये हैं। सभी पहरेदार खर्राटें ले रहे है। वसुदेव जी श्री कृष्ण को लेकर रवाना हो गये। देव सहायता के लिए उपस्थित हो गया। एक अज्ञात छाया दीपक लेकर उनके आगे-आगे बढने लगी। वर्षा हो रही थी, बिजली चमक रही थी। मानो प्रकृति विद्युत प्रदीप जगाकर पुण्य पुरुष कृष्ण का दर्शन कर रही थी। और एक बार के दर्शन से तृप्त न होकर पुन पुन देख रही थी।

वसुदेव जी ने भाग्य का भरोसा न करके पुरुषार्थ का आश्रय लिया। वे पुरुषार्थ न करते तो कार्य की सिद्धि होती या नहीं होती, कौन कह सकता है ? भाग्य के साथ पुरुषार्थ और पुरुषार्थ के साथ भाग्य हो तो कार्य सिद्धि अवश्य होती है।

वसुदेव जी चलकर जब नगर के फाटक पर आये तो वह बंद था। बडे-बडे ताले जडे हुए थे। जंजीरे पडी हुई थी। वह सोचने लगे—फाटक को कैसे पार किया जाये ? उसी समय श्रीकृष्ण ने अपने पैर का अंगूठा फाटक को छुआ दिया और तत्काल ही ताले एवं जंजीरे टूटकर फाटक खुल गया।

इसी फाटक के ऊपर महाराज उग्रसेन अपना बदी जीवन व्यापन कर रहे थे। असमय मे द्वार खुलने की आवाज सुनी तो—उग्रसेन कहे कोई ? अर्थात् वे बोले—कौन है ? तब वसुदेवजी ने सांकेतिक भाषा मे उत्तर दिया—तुम बंधन खोले सोई।'' उग्रसेन ने मन ही मन सद्य-संजात शिशु को आशीष दी। वसुदेव जी जरा भी विलम्ब किये बिना आगे चल दिये।

जब यमुना के किनारे पहुँचे तो देखा—यमुना में पूर आया हुआ है। मगर वसुदेव जी हिम्मत न हारे। उन्हें विश्वास हो गया था कि जिस देवी शक्ति ने अब तक असंभव को संभव बनाया है, वह इस बाधा को भी दूर कर देगी। मुझे तो पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। यह सोचकर वसुदेव जी नि शंक भाव से यमुना में प्रविष्ट हो गये। घुटनों तक पानी आया, फिर कमर तक, फिर गले और फिर नाक तक आ गया। उस समय श्रीकृष्ण जी ने अपने पैर का अंगूठा लगाया कि इधर का पानी इधर और उधर का पानी उधर रह गया। बीच में रास्ता बन गया। उस रास्ते से वे यमुना पारकर गोकुल में जा पहुँचे।

नन्द के घर पहुँचकर उन्होंने कृष्ण जी को यशोदा के सुपर्द किया और यशोदा के उदर से उत्पन्न बालिका को लेकर वापिस देवकी महारानी के पास लौट आये। उनके लौटते ही यमुना अपने स्वाभाविक वेग से बहने लगी। द्वारो के किवाड और ताले आदि यथापूर्व हो गये। जैसे कोई नवीन घटना घटित ही नहीं हुई हो। इस समय महारानी देवकी और महाराज वसुदेव को जितनी प्रसन्नता हुई, संसार का बडा से बडा कवि भी उसका वर्णन नहीं कर सकता।

इतना सब हो चुकने के बाद बालिका के रुदन की ध्वनि सुनकर पहरेदार जागे। उन्होने भीतर प्रवेश करके पूछा—क्या हुआ ? देवकी ने बालिका पहरेदारो को सौप दी। पहरेदार उसे लेकर कस के पास पहुचे।

कस ने देखा कि देवकी की सातवीं सन्तान छोकरी हुई है तो उसे अनिवर्चनीय सतोष हुआ। सोचने लगा—कहते थे कि लडका होगा। पर यह छोकरी मुझे क्या मारेगी ? इसका घात करना उचित नहीं है। तथापि इसे नकटी कर देना चाहिए। जब चाहूँगा तभी इसका गला घोट दूंगा।

अब कस के घमण्ड का पार नहीं था। वह अपने को मृत्युञ्जय समझने लगा। उसने वसुदेव और देवकी को बधनमुक्त कर दिया।

गोकुल मे बात फैल गई कि यशोदा रानी के उदर से एक बडा ही सुन्दर एवं तेजस्वी बालक का जन्म हुआ है। इधर धीरे-धीरे कस को असलियत का पता चल गया और वह कहने लगा—वसुदेव जी ने मेरे साथ धोखा किया है। मगर मुझे परवाह नहीं। मै इतना शक्तिशाली हू कि वह छोकरा मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

श्री कृष्ण गोकुल मे सोलह वर्ष तक रहे। तथा अपनी शक्ति से अत्याचारियो का अत किया। गरीबो मे रहकर गरीबो के अभावो का अनुभव किया। उन्होने गायो की रक्षा की। एक बार कृष्ण ने गोकुल के निकट मरी हुई गाये देखकर पूछा—यह कैसे हुआ ? लोगो ने बताया—इस द्रह मे कालियानाग है और उसकी विषैली फुफकार की वजह से द्रह का पानी विषाक्त हो गया है। जो भी प्राणी इसका पानी पीते है, उनकी यही दशा होती है। उसी समय कृष्ण ने उठाई बशी और द्रह की गहराई मे उतर गये। वहॉ की रचना भी विचित्र थी। नागराज सोये हुए थे। नागिन चरण उपासना कर रही थी अर्थात् पैर दबा रही थी। ज्योंहि प्रिय मनोरम बालक को देखा तो

वह कहने लगी–

किण दिशा सूं आयो रे बाला, कांई तुम्हारो नाम छे।
कोन सखी नो नंद कहीजे, कांई तुम्हारो धाम छे॥
दक्षिण दिशा सूं आयो ए नागिन, कृष्ण हमारो नाम छे।
नंद यशोदा रो लाल कहिजे, गोकुल हमारो धाम छे॥

नागिन ने कहा–मेरे पति चंडाल है, खूखार है। तुम भाग जाओ, यदि जाग गये तो तुम्हारी खैर नहीं। ये लो मै पति से छिपाकर तुम्हें हिये का हार देती हूँ। लगता है तुम मार्ग भटक गये हो, पर अब हार लेकर चले जाओ। कृष्ण ने कहा–नागिन ! मुझे हार नहीं चाहिए। चोरी करके देने की जरूरत नहीं है। मै रिश्वत लेने वाला नहीं हूँ। मै तो अपना कार्य करने आया हूँ। इस कालिया नाग के विष से प्राणियों की हिंसा हो रही है। अत: मै इसे नापने के लिए आया हूँ। मै मार्ग भूलकर नहीं आया हूँ। मै अपने उद्देश्य को पूरा करूंगा और रिश्वतखोरी नहीं करूंगा। तत्पश्चात् उसने नाग को जगाने के लिए उसका स्पर्श किया। फुफकार मारता हुआ कालियानाग उठ बैठा। कृष्ण ने लीला दिखाई। नाग को चारो ओर घुमाने लगा। घूमते-घूमते मौका पाकर बंशी से फन पर प्रहार किया, नाग वहीं ढेर हो गया। कालकुमार सेनापति के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। उसे कोई परास्त नहीं कर सकता था। उसे भी कृष्ण ने महाकाल दिखा दिया। कंस ने पूतना दासी के माध्यम से भी कृष्ण को हानि पहुँचाने का प्रयास किया पर सफलता नहीं मिली। मनोविनोद के निमित्त कंस ने मल्लयुद्ध आयोजित किया। कृष्ण जाने लगे तो माता ने कहा–बेटा, मथुरा मत जाना। कृष्ण ने कहा–माँ ! मै भी देखूं तो सही। उठाई मुरली और चल पडे। मैदान मे दो मल्ल खडे थे। एक चुनौती दे रहा था–कोई है तो आ जाओ अखाडे मे। सारे चुप बैठे थे। हिम्मत नहीं थी। इतने मे बाल कृष्ण कूद पड़े। जनता हाहाकार कर उठी। इतने मे बड़े पहलवान से यह बालक क्या युद्ध करेगा ? पहलवान ने कहा–बच्चे ! अभी उमर के कच्चे हो, चले जाओ। कृष्ण ने कहा–खबरदार ! बहादुर बात नहीं करते, कायर बातें बनाते हैं। वीर हो तो उतर पडो मैदान मे। दो झपाटों में तो उस बालक ने पहलवान को पछाड दिया। अब कंस को विश्वास होने लगा कि मल्लयुद्ध में पहलवान को मारनेवाला ही मेरा शत्रु है। यह भविष्यवाणी भी

हो चुकी है। आज शत्रु मिल गया तो उसे जीवित नहीं छोडना चाहिए। बस म्यान से तलवार निकाली और आ गये सामने। कृष्ण के पास शस्त्र नहीं था। निकाली बासुरी और उसी से प्रहार करते हुए कंस की चोटी पकडी और माथा घूमा दिया, हाथ भी घूम गया। तलवार पीछे चली गई। कृष्ण ने मुरली की मार से कस को वहीं ढेर कर दिया।

जीवयशा रोती हुई अपने पिता जरासध की शरण मे गई। जरासध ने यह नहीं सोचा कि बशी के प्रहार से कस ढेर हो गया तो मै किस खेत की मूली हूँ। पर कहा है–**विनाश काले विपरीत बुद्धिः।** कृष्ण ने जरासध जो प्रतिवासुदेव था, उसे भी मौत के घाट उतार दिया और तीन खड के अधिपति बन शाति का वातावरण निर्मित किया। कस को मारकर उन्होने राजगद्दी नहीं ली अपितु उस पर जिनका अधिकार था, उन्हे अर्थात् उग्रसेन को प्रदान की। तथा उग्रसेन देवकी महाराज वसुदेव एव ज्योतिष को काराग्रह से मुक्त किया। चारो ओर श्री कृष्ण की जय-जयकार होने लगी।

इसी प्रकार आगे चलकर कृष्ण ने दुर्योधन शिशुपाल आदि का अत किया। जिस प्रकार श्री कृष्ण ने जन्म लेकर कालियानाग, पुतना राक्षसी, कस, जरासंध, दुर्योधन, शिशुपाल इन प्रधान छ. शत्रुओ का सहार किया था, उसी प्रकार हमे भी आत्मा के प्रधान षडरिपुओं काम क्रोध मोह मत्सर अहकार एवं तृष्णा का संहार करना है। यही जन्माष्टमी का असली सदेश है। यदि आप इस सदेश को आत्मसात् करेगे तो आपका जीवन धन्य हो जाएगा। आपको अपूर्व आनद की प्राप्ति होगी।

कृष्ण वासुदेव तथा नेमिनाथ भगवान दोनो चचेरे भाई थे। नेमिनाथ भगवान से कृष्ण वासुदेव ज्येष्ठ भ्राता थे। यह यादव कुल कितना भाग्यशाली है कि उस कुल मे नेमिनाथ भगवान तीर्थकर हुए और श्रीकृष्ण वासुदेव आनेवाली चौबीसी मे तीर्थकर बनेगे। कारण कि उन्होने धर्म की दलाली कर जिनशासन और भगवान के प्रवचन की बहुत प्रभावना की है। सयम लेनेवाले को पूरा सहयोग दिया। यहाँ तक स्वयं अपनी पटरानियो को, पुत्र एव पुत्रवधूओ को भगवान नेमिनाथ की शरण मे भेजा, उन्हे भी सहर्ष दीक्षा की अनुमति दी। इस धर्मदलाली के प्रताप से श्री कृष्ण आने वाली चौबीस मे 12वे अमम नामक तीर्थकर बनेगे। श्री कृष्ण गुणानुरागी थे। खराब मे से भी अच्छा ढूढ लेते थे। मातृभक्त भी थे। प्रतिदिन माता के चरण-स्पर्श का

उनका नियम था। जो जन्म लेकर जीवन मे अच्छे कार्य करते है, उन्हें दुनियां याद करती है। जयंति भी उन्हीं की मनाई जाती है, जिनका जीवन जयवंत होता है। कृष्ण और कंस एक ही राशि के थे, पर श्रीकृष्ण की जयन्ती सम्पूर्ण दुनियां मे मनाई जाती है, कंस की जयंति कोई नहीं मनाते है। राम को सब याद करते है, पर रावण को कोई याद नहीं करता है। राम-कृष्ण नाम सभी पसंद करते है, पर रावण और कंस नाम किसी को पसंद नहीं आता है। इसलिए कवि कहता है–

''जननी जने तो ऐसा जन
के दाता के शूर
नहीं तो रहिजे बांझणी,
मत गमाइजे नूर॥''

अर्थात् हे माता ! तू ऐसे पुत्र को जन्म देना जो दाता हो या शूरवीर हो। यदि ऐसा पुत्र न हो तो बाझ ही रहना। क्योकि अयोग्य पुत्र को जन्म देने मे क्या विशेषता है। आप ऐसे पुत्र को जन्म दे जो कृष्ण के जैसे माता की कुक्षी को उज्ज्वल बनाये।

***



स्वतन्त्रता दिवस

आज 15 अगस्त है, आज के दिन ब्रिटिश सरकार की गुलामी से भारत स्वतन्त्र हुआ। अग्रेजों ने भारत मे व्यापारी बनकर प्रवेश किया और ब्रिटिश इंडिया कम्पनी के माध्यम से अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। परिणामस्वरूप जितने भी देशी बादशाह, राजा महाराजा थे, अधिकाश अपनी-अपनी प्रभुत्व सत्ता खो बैठे और अंग्रेजो ने 150 वर्ष तक बडी शान से यहा पर राज किया। इस दरम्यान भारतवासियो को बहुत परेशान किया। भारतीय बुनकरो के हाथ काटकर हमारे शिला उद्योग को भी हानि पहुचाने के भागीरथी प्रयास किए गए। दुर्भाग्य हमारा कि वे सफल होते गये। शनै शनै भारतीय बुद्धिजीवी लोग उनकी चालो को पहचानने लगे थे। तभी तो महाराष्ट्र ये बाल गंगाधर तिलक, विनोबा भावे, सदाशिवराव गोखले, वीर सावरकर, **गुजरात से** - महात्मा गांधी, दयानद सरस्वती, सरदार पटेल, **पंजाब से**- लाला लाजपतराय, सरदार भगवतसिह, राजकुमारी अमृत कौर, सरदार बलदेवसिंह, **उत्तर प्रदेश से**- जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, गोविन्द वल्लभ पत, विजयलक्ष्मी पडित, आचार्य कृपलानी, **मध्यप्रदेश से**- चन्द्रशेखर आजाद, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर, **बंगाल से**- सुभाष चन्द्र बोस, सरोजनी नायडू, विपिनचन्द्र पाल, श्यामप्रसाद मुखर्जी, विद्यानद राय, **बिहार से**- डॉ राजेन्द्र प्रसाद, जय प्रकाश नारायण, डॉ जाकिर हुसैन आदि अर्थात् सम्पूर्ण राष्ट्र से आजादी की दिवानी टोलिया निकल पडी थी। नारा गूंजायमान हुआ-"अग्रेजों ! भारत छोडो।" विदेशी कपडो की होली जलाई गई। लाठियां, गोलियां, कारावास, फॉसी, उपवास हर तरह के कष्टो को हंसते-हंसते झेला। हजारों मौत को गले लगाकर शहीद बन गये। गांधीजी की अहिंसा और सत्याग्रह के सामने ब्रिटिश शासको ने आत्म समर्पण कर दिया और 15 अगस्त 1947 को भारतीय शहीदो की बलिवेदी पर भारतीय स्वतन्त्रता का सूर्य उदित हुआ तथा हमारी स्वतन्त्रता का प्रतीक विश्व-

विजय तिरंगा प्यारा अर्थात् राष्ट्रीय ध्वज लहराने लगा।

स्वतन्त्रता का मूल्याकन उतना ही महत्व रखता है, जितना कि उपलब्धि। आजादी का मायना महज गोरे राज का खात्मा नहीं था, बल्कि इसके पीछे भेदभाव से रहित समतावादी, प्रगतिशील व न्यायपूर्ण समाज की रचना का सपना सजाया गया था। जनता का राज्य जनता के लिए और जनता के द्वारा, पर लगता है यह सच्चाई नहीं है। आज हमारा प्रौढ होता लोकतन्त्र अब उन सपनों को जांचने, परखने के लिए हमे आह्वान कर रहा है। वक्त का पहिया अपनी गति से घूम रहा है। वक्त बदला है तो परिस्थितियाँ भी बदली है। आजादी मिलने के समय व आज के वक्त में मूल्यों मे बडा अन्तर देखा जा सकता है। वैचारिक स्तर पर सभी राष्ट्र-भक्ति की महिमा का बखान करते मिलेगे, पर व्यवहार मे इसे अपनाना जरूरी समझा नहीं जाता। क्रिकेट मैच मे भारतीय टीम की जीत पर पटाखे छोड देना या देश भक्ति फिल्म को देखकर तालिया बजा देने मात्र से ही राष्ट्रभक्ति नहीं है। राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना हमारे स्वभाव का अंग होना चाहिए। सच तो यह है कि हमने आज के दिन ब्रिटिश सरकार से जरूर स्वतंत्रता प्राप्त कर ली पर उसको पचाने व उसका मूल्याकन करने का साहस नहीं जुटा पाये। आज देश मे एक ऐसे परिवेश का उदय हुआ है जिससे न केवल स्वतत्र्ता के अर्थ बदल दिये हैं वरन् उसका अवमूल्यन भी किया है। आजादी जो कभी देश की अस्मिता की प्रतीक थी, आज कुछ स्वार्थी लोगों के बुद्धिहीन चिंतन के कारण अपना अर्थ खोती जा रही है। अन्यथा क्यों बढ़ता देश मे लूट-खसोट, अपहरण, आत्महत्याए, चोरी, अनैतिकता, आतंकवाद, बलात्कार और कालाबाजारी का ग्राफ ? क्यो बनती नारी हवस का शिकार ? क्यो रंगे हाथ पकडे जाते रिश्वत लेते हमारे नेतागण और उच्चस्थ अधिकारी ? क्यो गायब होते है रेलो, परिवहनो से सैकडो बल्व व पंखे ? क्यो लेम्पपोस्ट होते हुए भी सडको पर अंधेरा छाया रहता है ? इन सारे प्रश्नो पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत मे स्वतत्रता के मानदंड क्या है ? वस्तुस्थिति आज की यह है कि हमारी स्वतंत्रता केवल गीतो, कविताओ और लच्छेदार भाषणो तक सिमट गई है। व्यवहार और आचरण मे उसका कोई स्थान नहीं है।

एक तरफ 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस समारोह पूर्वक मनाते हुए तिरंगा झडा फहराया जाता है और राष्ट्रगान, वदेमातरम् के स्वर से पूरे वातावरण को गूंजायमान किया जाता है, दूसरी तरफ उग्रवादी समूह किसी के बगले को तबाह कर रहे होते हैं। खादीधारी नेता किसी नागरिक का शोषण कर रहे होते है। किसी महानगर के मल्टीस्टोरेज बिल्डिग पर बम विस्फोट से कई सहस्त्र लोग मौत के घाट उतरते है। तथा वही किसी उद्योगपति के उत्तराधिकारी पुत्र का अपहरण कर लिया जाता है। देश मे बढती इन आक्रामक वारदातो पर जब मन विचार करता है तो भीतर से उठने वाली तरगे कवि की उन पंक्तियो की स्मृति करा रही है–

आजादी के वारिसो ने ही आजादी को लावारिस बना दिया है, देश के सेवको ने ही देश को किराए की बस बना लिया है, किसे जाकर पूछे आज आदमी की जिन्दगी का जज्बात ? अमृत के अन्वेषको ने ही अमृत मे विष मिला दिया है।

आज भी हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र मे राष्ट्रीयता, नागरिकता, स्वतत्रता, एकता तथा भारतीयता का वास्तविक अर्थ तक स्पष्ट नहीं है ? केवल जीए जा रहे है। उन्हे चाहे गुलाम बनाओ या स्वतत्र रखो, कोई फर्क नही पड़ता ?

कारण स्पष्ट है हमारे देश को स्वतत्र हुए 60 वर्ष होने जा रहे है, फिर भी कहॉ है हमारे भीतर हमारी सस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रभाषा और वेषभूषा के प्रति लगाव ? देश स्वतंत्र हुआ तब सोचा था कि आजादी के बाद देश मे खुशहाली आएगी, आम जनता को उन्नति के अवसर मिलेगे। रोटी, कपड़ा व मकान की समस्या हल होगी, देश मे कई सुभाष और गॉधी पैदा होगे, लेकिन आज सपने-सपने ही रह गए। उस समय ''करो या मरो'' और ''भारत छोडो'' का नारा दिया गया था, लेकिन आज के नेता तो ब्रिटिश अमेरिका भारत आओ, सेज बिछाओ और डब्ल्यूटीओ के जरिये देश को फिर से गुलाम बनाने का न्यौता देते नजर आ रहे है। राष्ट्र, प्रेम और कुर्बानी की जो भावना उस समय थी वह नजर नहीं आती। याद करिए उस समय के शहीदो की कुर्बानियो को।

बीकानेर निवासी श्रीमान अबीरचंद जी सा बाठिया के सुपुत्र अमीरचद जी सा. बाठिया अपने पिता के साथ व्यापार दृष्टि से ग्वालियर रहते

थे। ग्वालियर राजघराने ने अबीरचंद जी सा को नगर सेठ की उपाधि से सम्मानित किया एव उस समय की प्रथा के अनुसार उन्हे पैर मे सोने का कडा पहनने का अधिकार दिया गया तथा अमरचंद जी को ग्वालियर राजकोष का प्रभारी नियुक्त किया गया।

अमरचंद जी मे देश भक्ति कूट-कूट कर भरी थी। जिसके कारण सन् 1857 मे स्वतत्रता सग्राम मे उन्होने भाग लिया। जब अंग्रेजी सेना ने ग्वालियर पर आक्रमण किया तो उन्होने रियासती सेना के साथ राजकोष का धन व अपनी पैतृक सपत्ति अंग्रेजो के विरोध मे क्रांतिकारियों को सौपकर उनकी शक्ति का सवर्धन किया। सामायिकादि धर्माराधना के प्रति भी उनकी गहरी रुचि थी और देश के लिए भी वे कुछ कर गुजरना चाहते थे। कुछ समय बाद ही अंग्रेजो ने उन पर राजद्रौह का आरोप लगाकर गिरफ्तारी का वारन्ट जारी कर दिया। गिरफ्तारी से बचने के लिए बाठियां जी भूमिगत हो गये और अग्रेजो के विरुद्ध आदोलन का संचालन करते रहे। दुर्भाग्यवश एक दिन बांठियाजी को अग्रेजो ने पकड लिया और उन पर मुकदमा चलाया गया। जैल मे कैद कर उन्हे बहुत यातनाएँ दी गई, उन्हे मुर्गा बनाया गया। पेड पर उलटा लटकाया गया, चाबुको से पीटा गया। हाथ-पैर बाधकर चारो ओर खींचा गया, लोहे के टोप्स वाले जूतो से ठोकरे मारी गई। यहॉ तक कि उन्हे पैशाब भी पिलाया गया, उनका पूरा शरीर ही विकृत कर दिया गया। ताकि वे माफी मांग ले और भविष्य में कभी आदोलन नहीं करें।

घोर यातनाओ के बावजूद भी जब वे अपनी देशभक्ति से विचलित नही हुए, माफी नहीं मांगी तो दुष्ट अंग्रेजो ने उन्हे फिर चेलेन्ज दिया कि– अमरचद ! माफी मागले और भविष्य में विद्रोही कारनामे नहीं करने का वायदा करले वरना तेरे आठ वर्षीय बेटे को तेरे सामने ही मार डालेंगे।

अमरचंदजी उनकी कौनसी बात सुनने वाले थे। इस घोरतम धमकी से भी वो नहीं डरे तो उन अग्रेजों ने क्रोधित हो उनके नन्हे आठ वर्षीय बेटे को तोप के मुँह पर बांधकर उडा दिया। उसके चिथडे चिथडे उड गये। फिर भी बाठियॉ जी अपनी देशभक्ति पर अडिग रहे।

बांठिया जी हालांकि निर्दोष थे। उन्होंने जनता से धन एकत्रित करके क्रान्तिकारियो को दिया था। उन्होने देशभक्ति का ही कार्य किया था,

कोई अपराध नहीं किया था फिर भी अधम अंग्रेज सरकार ने बिना जाच-पडताल किये उन पर राजद्रौह का आरोप लगाते हुए फासी की सजा सुना दी।

फांसी से पूर्व उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गई। उन्होने कहा–मै फासी पर लटकने से पूर्व सामायिक करना चाहता हूँ। उनकी इच्छा पूरी की गई। वे 48 मिनिट तक सामायिक व्रत मे बराबर लीन रहे। पूरी सामायिक के काल मे समभावपूर्वक नवकार मत्र का स्मरण करते रहे। सामायिक पूर्ण होने के बाद 65 वर्षीय बाठिया जी को 22 जून 1858 को ग्वालियर सर्राफा बाजार मे नीम के पेड पर लटकाकर सार्वजनिक रूप से फासी दी गई। आजादी का यह दीवाना हसते-हसते फासी के फंदे की ओर बढ गया। जल्लाद ने ज्योहि फासी लगाई कि फासी की रस्सी टूट गई। दूसरी बार फिर उन्हे फासी पर लटकाया गया तो जिस वृक्ष पर उन्हे लटकाया गया, उसकी डाली टूट गई। आखिर हारकर अग्रेजो ने उन्हे अन्यत्र मारकर फासी पर लटकाया। इतना ही नहीं जनता मे रौब जमाये रखने के लिए उनके शव को तीन दिन तक पेड पर लटकाये रखा।

ग्वालियर मे सर्राफा बाजार मे नीम के जिस पेड पर अमरचंद जी को फासी लगाई गई थी, वहीं पर पास मे अमर शहीद रूप अमरचद जी बाठिया की प्रतिमा स्थापित की गई और चारो तरफ तार लगाकर सुरक्षा कर दी गई। वहॉ पर जाने वाले प्रत्येक भारतीय का मस्तक सहज-श्रद्धा से झुक जाता है। धन्य है वह आजादी का दीवाना। धन्य है वह वीर सपूत जो देश के स्वतंत्रता के लिए हंसते-हसते कुर्बान हो गया।

देश की स्वतंत्रता के लिए हसते-हंसते मृत्यु का वरण कर वे आज भी अमर प्रेरणा स्तभ बन हुए है, उनकी मृत्यु देश के जवानों को आज भी ललकार रही है, वह कह रही है–

''उठो, जवानों देश के स्वतंत्रता पुकारती–3
नई धरा, नया गगन, नये–नये विधान है,
स्वतंत्र देश कह रहा है, निशा गई विहान है,
उठो युवक वीरवर ना अब कहीं झूके कभी,
समग्र सृष्टि सामने युवक तुम्हें निहारती
स्वतंत्रता पुकारती–3 ऽऽऽ॥''

आजादी की धुन पर सवार लोगों ने देश को स्वतंत्रता तो दिला दी, लेकिन मकसद आज भी पूरा होने की राह ढूढ रहा है। इसके लिए युवा पीढी को आगे आना होगा। स्वतंत्रता को सही अर्थो मे समझना होगा और उसे जीना होगा। पर हम कहाँ समझ रहे स्वतंत्रता के सही अर्थो को ?

आज विदेशी शिक्षा, विदेशी धर्म, विदेशी संस्कृति, विदेशी भाषा, विदेशी वेषभूषा, विदेशी खान-पान, विदेशी सभ्यता, विदेशी सोच, विदेशी अर्थ, विदेशी उद्योग, विदेशी संगीत, विदेशी उछलकूद, विदेशी यौन-साहित्य, विदेशी वास्तुकला अर्थात् हर तरह से स्वतत्रता के बाद शनैः शनैः उन्हीं पर अवलम्बित हो गये, तब भारतीय आजादी का सही अर्थ कहॉ से मिलेगा ? अब तो भारत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ठीक वैसे आवाज दे रहा है जैसे आजादी के पूर्व ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी गैस की विदेशी कम्पनी को लाकर हजारो निरपराधों को मौत के घाट उतार दिया गया था। इतना ही नहीं आज भारत ने विश्व की तमाम विकृतियों को स्वतः अपने ऊपर ओढ लिया है। अपने पूर्वजों के ज्ञान, दिशा बोध, त्याग-तपस्या, श्रम ईमान अनुभवों को भूल भूलाकर भोग विलासिता के पीछे दौड रहा है। आखिर वे अपनी संतानों को क्या बनाना चाहते हैं।

एक शराबी शराब पीकर सडक के बीचोंबीच जाकर बैठ गया और वहीं पर समान से लदा ट्रक आ गया। ट्रक चालक ने बीच सड़क में बैठे शराबी से झल्ला कर कहा—अरे फटीचर ! यह सडक क्या तुम्हारे बाप की है जो तुम सडक के बीच बैठ गये हो ? उठ ! मुझे देरी हो रही है। शराबी बोला—भाई ! तुम्हे देर हो रही है, मुझे उससे क्या मतलब ? मै तो अपनी आजादी का उपयोग कर रहा हूँ। अब हमारा देश आजाद हो गया है। इसलिए चाहे मै सडक के बीच मे बैठूं या किनारे पर। यह मेरी मर्जी। इस पर चालक बोला—अच्छा ! तुम बैठने में स्वतंत्र हो तो मै भी तुम्हारे ऊपर ट्रक चलाने में स्वतंत्र हूँ। यह सुनते ही शराबी भाग खडा हुआ।

क्या स्वतंत्रता का यही अर्थ है ? आजादी से आपका मतलब क्या है ? यही कि आजादी के नाम पर जो कुछ मिला है, वह यह है—हर कहीं खडे होकर चिल्लाना। हर प्रकार की परीक्षाओं मे खुलकर नकल कर लेना। दुल्हनो को दहेज न लाने पर जला देना। महिलाओं और बच्चियों से बलात्कार करना। धर्म, जाति, भाषा आदि के नाम पर अशिक्षित एवं भोली

जनता को मूर्ख बनाने की पूरी आजादी मिली हुई है। प्रजातंत्र के नाम पर जनता द्वारा चुने गये नेताओ की चलाई सरकार ने छोटे से छोटे काम करने या कराने मे रिश्वत लेने और देने की पूरी आजादी मिल चुकी है। शादी, जन्मदिन, स्वर्ण जयंति, हीरक जयंति, त्यौहार व उत्सवो पर धन-प्रदर्शन करने की भी आजादी है। प्रजातंत्र चलाने के लिए दल-बदल करने की भी पूर्ण आजादी मिल चुकी है। सांसदो को खरीदना भी आसान है। पुस्तकों, समाचार-पत्रो, फिल्मो, विडियो, मोबाइलो पर भी सेक्स संबंधित हर प्रकार की अभिव्यक्ति की आजादी मिल चुकी है। टीवी हो या समाचार-पत्र हो, सब पर सुन्दरियों के प्रदर्शन करने की भी आजादी है। आज देश पूरी तरह आजाद है। भ्रष्टाचार के उच्चतम शिखर को चूम लेने के लिए। आज देश भूख, बेरोजगारी और बीमारी से आर्त्तनाद कर रहा है। दक्षिण भारत मे आत्महत्याओ और उत्तर भारत मे बलात्कारों और हत्याओं का बोलबाला चल रहा है। प्रकृति प्रकोपों यानी समुद्री तूफानों, नदियो की बाढो, बांधो की टूटन और आतंकवाद का शिकार केवल देश की 80 प्रतिशत गरीब असहाय जनता इसे भुगत रही है। देश के सारे नेता और समूचा शिक्षित समुदाय अपने सुख के लिए अधिकतम साधन जुटाने मे जुटा हुआ है। देश के करोडो लोग निर्धन, अशिक्षित, बेरोजगार, बीमार एवं बेघर है। दानवीरों की और धनवानो की जूठन पर जी रहे है। हर राजनीतिक दल के अधिकाश नेता अपने-अपने मंचों पर कूद-कूद कर भाषण देते रहते है और आश्वासन देते है कि वे देश को विश्व का श्रेष्ठ देश बना देगे लेकिन अभी तक तो यह नहीं हुआ। आम आदमी को देश का मालिक बताने वाले ये नेता चुनाव के समय अपने पक्ष में बस मत डलवा लेते है, दुनिया का सबसे बडा प्रजातंत्र कहलाने का दंभ भरते है, परन्तु उसका शोषण करने में जरा भी नहीं हिचकिचाते।

आज ना महात्मा गाधी है, ना डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद, ना जयप्रकाश है ना लोहिया। कोई इस देश का रखवाला ही नहीं रहा। जनता लूट रही है और सरकार तमाशा देख रही है। हमारे सपनो का भारत ऐसा कतई नहीं था। तब यही कहा जाता था कि समाजवाद आयेगा, लेकिन आज तो सरकारो का वरद्हस्त प्राप्त लोग ही पनपते जा रहे हैं। व्यवस्थाएं ही ऐसी बना दी गई है। पुन. पूंजीपतियों का राज आ गया है। तब एक हत्या भी होती तो गॉवो मे महिनों तक उसकी चर्चा होती रहती थी। आज तो सरे आम

हत्या, डाका और गोलियां बमबारी चल रही है, लेकिन अपराधी नहीं पकडे जा रहे हैं, चूंकि मिली भगत का जो धन्धा है।

आवश्यकता है आज स्वदेशी बनकर स्वतंत्रता को स्वतत्रता की दृष्टि से देखने की, समझने की और जीने की। इसी सही समझ से हम महात्मा गॉधी के सपनो को भारत में पुन: उसी रूप मे देख सकेगे और सुन सकेगे कि भारत जो अतीत में विश्व गुरु कहलाता रहा है वह पुन विकास के बदलते मापदंडो के साथ विश्व गुरु कहलाता नजर आयेगा। नि सदेह देश की अस्मिता समाज पर, समाज की परिवार पर और परिवार की व्यक्ति पर अर्थात् देश की व्यवस्था और अव्यवस्था और परतत्रता, सुरक्षा और असुरक्षा बहुत अंशो में उसके नागरिको पर निर्भर है। अत. देश के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वतंत्रता का सम्मान करे। यह सकल्प करें कि–"हम सर्वप्रथम स्वय को सुधारेगे। नियमो एवं कानून के अनुरूप आचरण करेंगे। यह तपस्या नयी पीढी के लिए करनी होगी। फिर कमर कसकर भ्रष्टाचार और अपराध के खिलाफ अभियान छेडे। यह आजादी के लिए चलाया गया अभियान माना जाएगा। अपराध एवं अपराधियो का बहिष्कार करेंगे। अपनी स्वतंत्रता नये सिरे से हासिल करेगे। सरदार पटेल, लाल बहादुर तैयार करेंगे। नये नेतृत्व का विकास करेगे। तभी भारत एक शक्तिशाली और सही अर्थ मे विकसित राष्ट्र के रूप मे उभर सकेगा।

***



अलौकिक महापर्व–''पर्युषण''

भारतीय सस्कृति मे पर्व का बहुत महत्त्व है। वर्ष के तीन सौ साठ दिन मे शताधिक पर्व आ जाते है। पर्युषण-पर्व उसी श्रृंखला की एक कड़ी है। यह भादव-मास मे सामान्य त्योहारो की तरह आता है, इसलिए पर्व है, किन्तु यह आत्म-शुद्धि का प्रेरक, उत्प्रेरक है, इसलिए महापर्व है एव जैनो का एक मात्र विशिष्टतम अलौकिक पर्व है। कुछ पर्व अपनी व्यापक लोकप्रियता के कारण सभी जातियो, धर्मो के द्वारा मनाए जाते है, परन्तु यह वैसा भौतिक-पर्व नहीं है। शरीर केन्द्रित पर्व शरीर सुख की सामग्री जुटाते है। आध्यात्मिक पर्व आत्म केन्द्रित होते है, इसलिए वे आत्मसुख की सामग्री जुटाते हैं। कुछ पर्व तात्कालिक होते है। वे किसी पात्र या घटना विशेष के साथ जुडे होते है किन्तु यह पर्युषण-पर्व शाश्वत विशुद्ध आध्यात्मिक एव अलौकिक अष्टदिवसीय महापर्व है, जो प्रतिवर्ष मानव-मन को नया दिशा-बोध देकर चले जाते है, फिर सभालने के लिए लौट आते है।

पर्युषण का शाब्दिक अर्थ है–परि अर्थात् चारो ओर से सिमटकर, वसन-एक स्थान पर निवास करना या स्वय मे वास करना। पर्युषण शब्द को प्राकृत भाषा मे ''पज्जूसण'' भी कहते है। जिसका सस्कृत रूपान्तर है पर्यूशमन जिसका अभिप्राय है–परिसमन्तात् उपशमन चित्तवृत्ति निरोध क्रियते यस्मिन् तत् अर्थात् चारो ओर से बहिर्मुखी चित्तवृत्तियो को रोककर आत्मनिरीक्षण और आत्मचितन के लिए केन्द्रित करना। अत फलितार्थ यही हुआ कि **''आत्म निरीक्षण ही पर्युषण है।''** अथवा ''पज्जूसणा'' यह भी प्राकृत भाषा का एक शब्द है। जिसका-सस्कृत रूपान्तर है–''पर्युपशमना''। जिसका फलितार्थ होता है–चारो ओर से मनोवृत्तियो को रोककर आत्मा के अत्यधिक निकट रहना।

मैत्री भाव का प्रेरक पर्युषण–परि समन्तात् उषणं-निवास सर्वजीवै. सर्वभावनैति पर्युषणम्। सब जीवो के साथ सर्वभाव से मैत्री भावना पर्युषण है।

उपशम भाव का प्रेरक पर्युषण–परि समन्तात् उपशमनं कषायाणां इन्द्रिय विषयाणा च यस्मिन् तत् पर्युशमन। इन्द्रिय विषय और कषायों का उपशमन करना पर्युषण है।

तपोभाव का प्रेरक पर्युषण– परि समन्तात् उषणं दुष्कर्माणा पर्युषण। चारों ओर से एकचित्त होकर दुष्ट कर्मो का दहन करना पर्युषण है। **तपश्चर्या आत्मशुद्धि हेतो: यस्मिन् पर्वणि सा पर्युषणा।**

उपासना का प्रेरक पर्युषण–परि-परित· उपासना–आत्मदेवस्य देवाधिदेवस्य परमात्मनो अर्हत् देवस्य च तस्मिन् सा पर्युपासना। आत्मा-परमात्मा तथा अरिहत भगवान् की भावपूर्वक उपासना करना पर्युषण है।

साधर्मिक भाव का प्रेरक पर्युषण–परिजूषणं-परि समन्तात् जूषणं साधर्मिकै. सह प्रीतिकरणं सहयोगकरण च यस्मिन् तत् परिजूषणं। साधर्मिक के साथ प्रेम एवं सहयोग पूर्ण व्यवहार करना पर्युषण है।

उपरोक्त सभी व्याख्याएं पर्युषण मे किये जाने वाले धार्मिक कार्यो से जुडी हुई है।

मूल परिभाषा जिसे इन शब्दो मे कहा गया है–"**परिसमन्तात् उस्यते स्थीयते यस्मिन् तत् पर्युषणम्**"।

चारों ओर से हटकर स्वभाव मे निवास करना, ठहरना पर्युषण का वास्तविक उद्देश्य है। जिन लालसाओं और वासनाओं के कारण आत्मा विक्षुब्ध, संतप्त और चंचल हो गई है, उन विकारी, वैभाविक परिणामो को शांत करना, आत्मस्वरूप मे रमण करना, अलौकिक आनंद का अनुभव करना ही पर्युषण है। यह पर्व आत्मा का पर्व है, अपने आपको ज्योतिर्मय स्वरूप के चिन्तन मे सर्वात्मना समर्पित कर अनंत अक्षय आनंद के अमृत सागर में अवगाहन करना ही इस पर्व का परम एवं चरम उद्देश्य है।

दुनियां की भीड़-भाड मे आप खंड-खंड होकर जी सकते है, पर आध्यात्म जगत मे आपको अखंड होकर अपनी समग्रता के साथ जीना पडेगा औरों के साथ एकता की बातें करना सरल है। पर अपने आप में सहज होकर जीना जरा कठिन है चूकि इसके लिए पूरी ईमानदारी रखनी होती है। Love with your self in the present moment को पर्युषण की उपासना का

केन्द्र बिन्दु बनाना होगा। ''पर्युषण सिखलाता है स्वयं मे जाने का रास्ता, स्वय में जीने की आस्था।''

पर्युषण पर्व जैन धर्म का महान पर्व है। महान पर्व का आगमन, अतिरिक्त उल्लास और प्रसन्नता का आगमन बन जाता है। पर्व आए और मन में उल्लास न समाए तो पर्व की अर्थवत्ता ही क्या ? सूरज तो उगा पर रोशनी नहीं मिली। हो सकता सूरज कभी अपनी रोशनी न भी दे, पर आध्यात्मिक पर्व के साथ उल्लास का गहरा संबध है। इस पर्व की आराधना करने से मन की ग्रथियों का विमोचन होता है। ग्रथिमोचन या शल्य का उद्धरण होने से जिस शांति और आनद का अनुभव होता है, वह व्यक्ति के इर्द-गिर्द उल्लास ही उल्लास बिखेर देता है।

पर्युषण पर्व लोकोत्तर पर्व है। इस पर्व का सबध आत्मा की निर्मलता के साथ है। यह मन की खिडकियो, रोशनदानो और दरवाजो को खोलने का पर्व है। जो व्यक्ति इन्हें खोलने मे सफल हो जाता है, उसे ऐसी रोशनी मिलती है, जो जीवन को जगमगा देती है। यह रोशनी, भीतर की रोशनी है। यह व्यक्ति को बाहर से भीतर बुलाती है। उसे अन्तर्मुखी बनाती है और अपनी सही पहिचान कराती है।

पर्युषण कषायशमन का पर्व है, किसी भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति को लेकर मन मे उत्ताप उत्पन्न हो गया हो, उसको शांत करने का पर्व है। उत्ताप की स्थिति मे इस पर्व की आराधना नहीं हो सकती । उत्ताप बहिर्मुखता का प्रतीक है। अन्तर्मुखी व्यक्ति उत्ताप का प्रसंग उपस्थित होने पर भी उससे बचकर रहता है। दूध का उफान पानी के छींटो से शात हो जाता है। मनुष्य के मन का उफान आत्मालोचन से शात हो सकता है। आत्मालोचन वह कर सकता है जो ऋजु होता है। ऋजुता के अभाव मे आत्मालोचना की बात वाग्विडम्बना मात्र बनकर रह जाती है।

पर्युषण पर्व मैत्री का पर्व है। मित्रता के रथ मे स्वार्थ के घोडे जोतने वाला व्यक्ति इस पर्व की सही आराधना नहीं कर सकता। मैत्री का रिश्ता निश्छल मनो का रिश्ता होता है। यह रिश्ता अन्य सब रिश्तो से ऊपर होता है, यह रिश्ता प्राणी मात्र के साथ होता है। ''मित्ति मे सव्व भूएसु वैरं मज्झं न केणइ''–संसार समस्त प्राणियो के साथ मैत्री साधने की निष्पत्ति है, वैर भाव की समाप्ति। मित्रता के इस महान् आदर्श तक पहुंचने के लिए मैत्री भावो

का समीक्षण करना आवश्यक है। एक वर्ष तक मैत्री भाव का समीक्षण करते हुए प्राणी मात्र के साथ मैत्री साधने का अभ्यास और उसके बाद संवत्सरी के पवित्र दिन पर प्राणी मात्र के साथ मैत्री का सकल्प अपने आप मे एक आचरणात्मक अनुष्ठान होगा।

पर्युषण पर्व अहंकार और ममकार को कम करते हुए आत्म दिशा की ओर प्रस्थान करने का पर्व है। आत्मालोचन के दर्पण में स्वयं का सूक्ष्मरीत्या अवलोकन करते हुए जहाँ कहीं कुछ अवाछित हो, उसकी शल्य चिकित्सा कर सम्पूर्ण स्वास्थ्य का अनुभव करना। इस अर्थ में हम पर्युषण पर्व को स्वास्थ्य का पर्व भी कह सकते है। हम स्वयं स्वस्थ बने, आत्मस्थ बने और दूसरो को भी स्वस्थ, आत्मस्थ बनने की प्रेरणा दे।

पर्युषण पर्व पुरुषार्थ का पर्व है। दूसरे शब्दो में यह वासनाओं को उखाड फैकने का पर्व है। यह पर्युषण पर्व सिखाता है आत्म जगत् मे फिर से नई क्रान्ति उत्पन्न करना और इन्द्रिय भोगो पर त्याग का अकुश लगाना। यह स्पष्ट है कि निरकुंश वासनाए तथा असीम इच्छाएं मानव को दु खी बनाती है। यदि मनुष्य के दु.खो का कारण ढूंढा जाय तो पहला कारण है—आत्म तत्त्व से अपरिचय, दूसरा कारण है—इन्द्रियो की दासता और तीसरा कारण है—मन का असयम। पर्युषण पर्व आध्यात्म की पूर्व भूमिकाओ का श्रावक एव साधु को विवेकपूर्ण ज्ञान तो देता ही है, परन्तु बिना पुरुषार्थ किए उन भूमिकाओ पर खडा होना असंभव है, अत इन आठ दिनो मे सलक्ष्य उस दिशा में प्रयत्नशील होने की जरूरत है। इन पर्व के दिनो में 24 घंटों मे से 10 मिनिट भी व्यक्ति यदि अपनी आत्मा मे ईमानदारी से जीये तो वह पुरुषार्थ उसके जीवन मे नई क्रान्ति घटित कर सकता है। कारण यह पर्युषण पर्व अलौकिक पर्व है। इस पर्युषण पर्व की अलौकिकता का मुख्य कारण है इस पर्व के साथ अनेक जीवो के आस्था परमाणु जुडे हुए है अत सभी जैनी अतिव्यस्तता के बावजूद भी इसे मनाने को तैयार हो जाते है। इस पर्वाधिराज की आराधना ने सदा-सदा से जैन-अनुयायियो को प्रभावित और स्फुरित किया है। कभी स्थानक मे नहीं आने वाले, कभी भी उपवास, सामायिक, पौषध नहीं करने वाले भी इस पावन पर्व-पर्युषण की उपस्थिति पर कहीं न कहीं से आंदोलित अवश्य हो उठते हैं।

इस पावन पर्व पर्युषण की यह एक अलौकिक विशेषता समझिए कि अन्य दिनो मे हमारी आत्मा चाहे सोई हुई हो, चाहे इधर-उधर के प्रपचो मे उलझी हुई हो, खाने-पीने, पहनने-ओढने की होड मे लगी हो अथवा बाजारो की सोदेबाजी मे जुडी हो अपने स्वरूप को चाहे जितना धुधला कर दिया हो, परन्तु पर्युषण-पर्व के दिनो मे अगड़ाई लेकर जाग उठती है। इन दिनो मे हमारी अन्तरात्मा उन सब झझटो को एक किनारे रखकर तप, त्याग, वैराग्य की त्रिवेणी मे स्नान करके शुद्ध होने के लिए तत्पर हो जाती है। अपने आत्मस्वरूप को प्रकाशित करने के लिए पुरुषार्थ रत बन जाती है। क्या यह पर्युषण-पर्व की ही अलौकिकता नही है ? इन दिनो मे शुभ परमाणुओ का सहज संचार होता है जिससे बालक, वृद्ध, प्रौढ, युवक एव महिलाओ सभी के अन्तर मे अपार उत्साह दिखाई देता है। अन्य दिनो मे भले ही वे सांसारिक कार्यो मे व्यस्त रहते है, पर पर्युषण के दिनो मे तो प्राय सभी जैनी अपने लौकिक कार्यो को छोडकर तप जप एव व्याख्यान श्रवण हेतु धर्मस्थानो मे सहज ही बिना किसी प्रेरणा के स्वत. ही चले आते है।

जहॉ अन्य पर्वो पर बच्चो मे खाने-पीने, अच्छे वस्त्र पहनने आदि के लिए झगडे होते है, वहॉ इन्हीं पुनीत दिनो मे देखा जाता है कि बच्चे भी तपस्या करने के लिए मचलते है। कितना आध्यात्मिक सस्कार है पर्व के इन पुनीत क्षणों मे ? माता-पिता उन्हे समझाते है, प्रलोभन भी देते है—बेटा ! तुमसे उपवास नही होगा, एकासना करलो। लेकिन पर्युषण पर्व की विरासत मे मिले हुए सस्कार उन सुकुमार बच्चो को भी प्रलोभन से नही डिगा सकते। यह पर्वाधिराज पर्व का ही तो अलौकिक प्रभाव है कि वे नन्हे मुन्ने बच्चे भी इन दिनो मे तप, त्याग, सेवा आदि धर्म की आराधना के लिए उत्साहित हो जाते है। वस्तुत. यह पावन-पर्व प्राणी मात्र के लिए शाति प्रदाता एव अभयदाता है। इस पर्व को हम भरत क्षेत्र वासी ही मनाते है ऐसी बात नही है प्रत्युत सम्पूर्ण अढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य लोक मे जहॉ कहीं भी आत्म-साधक है, हमारे समानधर्मी या सहधर्मी है अथवा जो अपनी आत्मा का विकास चाहते है, वे सभी अपने-अपने क्षेत्र मे इस पर्व की आराधना करते है। वे सभी क्षमा, मैत्री, स्वधर्मी वात्सल्य, सेवा, करुणा, दया-दान, अभयदान, तप, त्याग, जाप, ब्रह्मचर्य की आराधना आदि-आदि ऐसी आध्यात्म आराधना करते है कि जिससे सारे विश्व का वायुमडल प्रभावित

होता है, जिससे पापरत हृदय भी पुनीत बन जाते हैं, उनके हृदय मे भी उन्नत एव पवित्र भावनाओ का संचार होने लगता है।

पढिये एक इतिहास का सुनहरा पृष्ठ—मेवाड के प्रतापी एवं न्यायप्रिय सम्राट् जयकेशी का पुत्र नरवीर जो था तो अत्यन्त पराक्रमी किन्तु कुसंगति से मांसभक्षी एवं शराबी बन गया। शिकार करना एवं जुआ खेलना उसका दैनिक कृत्य हो गया । वह निरपराध जीवो को मौत के घाट उतार देता। रास्ते चलते राहगीर को लूट लेता। निर्दोष कन्याओं से छेडखानी करता था। उसके दोस्त थे—चोर, डाकू एवं लुटेरे। सारी प्रजा इससे बहुत दु.खी, परेशान एवं चिन्तित थी। आखिर राजकुमार की करतूतों से परेशान होकर महाजन लोग राजा के पास फरियाद लेकर पहुँचे। राजा से निवेदन किया—'महाराज ! हम आपके राज्य में सब तरह से सुखी हैं, लेकिन राजकुमार के कारण सारी प्रजा दु·खी एव परेशान है, आप इसका कोई उपाय करने की कृपा करावे। राजा ने कहा कि—मै स्वयं ही इसके व्यवहार से बहुत दु·खी और चिन्तित हूँ, अत: शीघ्र ही उपाय करूंगा। महाजनो को विदा करके राजा ने राजकुमार नरवीर को बुलाया, लेकिन वह शराब के नशे मे चूर था। पिता के पास गया नहीं। राजा ने कुपित होकर सेनापति को आदेश दिया कि—''राजकुमार को मै देश निकाले का आदेश देता हूँ, इसे मेरे राज्य से चले जाने का हुक्म दे दो।'' सेनापति ने नरवीर को राजा का आदेश सुनाया। इस पर वह अपने मित्रों के साथ मेवाड छोडकर मारवाड में चला गया। नरवीर ने मारवाड मे पर्वतीय क्षेत्रों मे अपना अड्डा जमाया, अन्य डाकुओ को भी अपने साथ मिला लिया और सभी लुटेरो का सरदार बन गया। चोरी और लूटपाट मचाने लगा। नरवीर का नाम सुनते ही लोग कांपने लगे। एक बार मालवा का धनाढ्य सेठ धन्ना सार्थवाह उस पर्वत की तलहटी से होकर गुजर रहा था तो अवसर पाकर शस्त्रास्त्र से सुसज्जित साथियों सहित नरवीर ने उस पर धावा बोल दिया। उसकी सारी संपत्ति लूट ली। धन्ना सार्थवाह अपने प्राण बचाकर भागा। वह मालव देश के राजा के पास पहुंचा और नरवीर आदि डाकुओं से अपनी संपत्ति वापिस दिला देने की प्रार्थना की। राजा ने सार्थवाह को अपनी सेना दी। धन्ना सार्थवाह राजा की सेना के साथ उस पर्वत की तलहटी मे पहुंच कर नरवीर सिंह पर धावा बोल दिया। दोनो मे घमासान युद्ध हुआ। नरवीर के सारे साथी मारे गये। नरवीर अपनी गर्भवती पत्नी को लेकर

पर्वतीय मार्ग से कहीं भाग गया। परन्तु धन्ना सार्थवाह ने नरवीर को ढूढ निकाला और उसने नरवीर की पत्नी जो सगर्भा थी, उस पर तलवार चला दी जिससे दो प्राणियो की हत्या हो गई। उससे धन्ना सार्थवाह की आत्मा भी काप उठी और उसने जाकर सारी बात मालवाधिपति के सन्मुख कही तो मालवाधिपति भी कुपित होकर बोले–रे पापी ! मैने सेना बालहत्या एव स्त्रीहत्या करने के लिए नहीं दी थी। निर्लज्ज निकल जाओ मेरे देश से।'' राजा के कोप को देखकर धन्ना सार्थवाह जैसा खडा था वैसा ही वहॉ से सीधा जगल मे चला गया। उसे भी इस बात का भारी अनुताप हो रहा था अत वन मे जाकर तापस बन गया।

इधर नरवीर पत्नी वियोग से शोकातुर एव पागल सा होकर जगल मे भटकने लगा। वह थककर जब वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था कि आचार्य यशोभद्र सूरि अपने शिष्यो के साथ उधर से जा रहे थे, उन्हे देखकर वह दौडता हुआ आचार्य महाराज के चरणो मे गिर पडा और करुण-क्रन्दन करने लगा। आचार्यश्री ने उसे आश्वासन देकर रोने का कारण पूछा तो उसने कहा–भगवन् ! मै हत्यारा, घोर पापी हूँ, मैने अनेक पाप किये है, सैकडो प्राणियो को मौत के घाट उतारा है, हजारो को लूटा है। बहुत अत्याचार किये है। आचार्य श्री जी बोले–''वत्स ! घबराओ मत ! तुम्हे अपने जिन पापकृत्यो से पश्चाताप हो रहा है उन सभी को छोड दो और सन्मार्ग पर आरूढ हो जाओ। तुम सुखी हो जाओगे।''

बताओ, भगवन् ! मै किन-किन पापो का त्याग करू ? नरवीर ने जिज्ञासापूर्वक श्रद्धा के साथ पूछा। तब आचार्य श्री ने सप्त कुव्यसन जुआं, मांस, शराब, चोरी, शिकार, परस्त्री गमन, वेश्यागमन का त्याग कराया। नरवीर ने सश्रद्धा त्याग कर कहा–भगवन् ! अब मै कभी कुछ गलत कार्य नहीं करूगा। आचार्य श्री ने कहा–''वत्स ! अब तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है, अब तू यहॉ से सीधा तैलग देश की ओर चला जा। वहीं तेरा उत्थान होगा।'' आचार्य श्री जी की आज्ञा शिरोधार्य कर नरवीर तैलंग देश की ओर चल पडा। जब वह एकशिला नगर पहुँचा। विश्राम हेतु नगर के बाहर एक बगीचे मे वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था, उसे बहुत तेज भूख लगी थी, इस कारण नींद नहीं आई। इतने मे एक पुजारी वहॉ आया, पुजारी ने परिचय पूछा। उसने अपना सक्षिप्त परिचय दिया और कहा–मुझे बहुत तेज भूख लग रही है, इसे मिटाने

का कोई उपाय हो तो बताओ। पुजारी ने कहा—यहाँ के आढर सेठ के यहाँ चला जा। वहाँ सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक दान दिया जाता है। वहाँ तुम्हारे जैसे अनेक लोग भोजन प्राप्त करते है। वे बहुत ही दयालु मानवीय सद्गुण सम्पन्न एव करुणाशील है। वे जैन धर्मी श्रावक है। संत महापुरुषो की बहुत सेवा भक्ति करते है।'' नरवीर ने सोचा—मै क्षत्रिय पुत्र हूँ। अत· याचना तो मै नहीं करूंगा और न ही मुफ्त का खाऊंगा। यदि सेठजी कुछ काम कराले तो कार्य करके भोजन कर लूंगा। पहुँचा वह सेठ के पास और बोला— मुझे आपकी सेवा चाहिए। आप जो कार्य कहेगे, वह सेवा मै करूंगा। सेठजी ने उसको दानशाला पर नियुक्त कर दिया। नरवीर ने थोडे ही दिनो मे अपने विनम्र व्यवहार, कर्मठ पुरुषार्थ से सारे परिवार का दिल जीत लिया। वह सेठ के घर मे सबका प्रिय पात्र बन गया।

भादवा महिने मे लोग पर्युषण-पर्व मनाने की जोर-शोर से तैयारी लगे। उसने देखा कि पर्युषण आने से पूर्व कई जनो ने तपस्या प्रारंभ कर दी। इन आठ दिनो मे कोई भी जैन किसी प्रकार की जीव हिसा नहीं करता। अनाज पीसना, कूटना, हरी वनस्पति का उपयोग तथा आठ दिन व्यापार धन्धे सभी बद रहते। कई लोग तो आठो ही दिन उपवास और पौषध मे बिताते, धर्मस्थान मे ही रहते तथा प्रतिदिन प्रवचन श्रवण करते, प्रतिक्रमण भी करते है। संवत्सरी से एक दिन पूर्व संयोगवश आढर सेठ ने किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए नरवीर को दूसरे गांव भेजा। नरवीर उस कार्य को सम्पन्न कर सवत्सरी के दिन सेठ के घर पहुँचा तो देखा कि घर मे कोई नहीं था। सभी प्रवचन-श्रवण करने गये थे। वह भी प्रवचन सभा मे पहुँच गया, देखा गुरुदेव प्रवचन फरमा रहे सभी श्रोता मंत्र मुग्ध बने श्रवण कर रहे है। वह भी ऐसी जगह जाकर बैठा कि सेठ उसे देख सके। सेठजी प्रवचन श्रवण करने मे तल्लीन थे, कुछ देर बाद अनायास उनकी दृष्टि नरवीर पर पडी। सेठजी ने सोचा—नरवीर अभी ही आया है, वह भूखा है। अत उन्होंने महिलाओ की पक्ति में बैठी हुई अपनी पुत्रवधू को इशारे से कहा—घर जाओ और नरवीर को भोजन कराओ। पुत्रवधू का मन प्रवचन सुनने मे लगा हुआ था, परन्तु सेठजी की आज्ञा होने से उसे उठना पडा। नरवीर भी सेठजी का ईशारा पाकर घर पहुँचा। पुत्रवधू ने गुस्से मे कहा—''जल्दी भोजन करलो। मुझे व्याख्यान से तुम्हारे लिए उठकर आना पडा।'' कभी गुस्सा न होने

वाली सेठ की बडी पुत्रवधू को आज क्रुद्ध देखकर नरवीर ने पूछा–बडी बहूजी ! आज आप मुझ पर नाराज क्यो हो ? वह बोली–''नाराज न होऊ तो क्या करू ? आज सवत्सरी का दिवस है, पर्युषण का अतिम दिवस है, इतना अच्छा प्रवचन चल रहा था, बीच मे उठकर आना पडा। आज हमारे सभी के उपवास है।'' नरवीर ने सोचा–''मुझे भी आज उपवास करना था। वह शाति से विनयपूर्वक बोला–बडी बहूजी ! मै भी आज उपवास करूगा। आप धर्मस्थानक मे जाईये। मै भी वहीं आ रहा हूँ।''

बहू घबराई, बोली–सेठजी मुझ पर नाराज होगे। तुम उपवास मत करो। नरवीर ने कहा–'' मै अपनी इच्छा से उपवास कर रहा हूँ। सेठजी नाराज नहीं होगे। मै सेठजी को आपके खिलाफ शिकायत नही करूगा।'' फिर भी बडी बहू भयभीत होती हुई धर्मस्थानक मे चली गई। इधर नरवीर भी पहुँचा। सेठजी ने अपने पास बुलाकर धीरे से पूछा–नरवीर ! मालूम होता है, तुमने भोजन नहीं किया। नरवीर ने कहा–सेठजी ! आज महापर्व का अतिम दिवस है, मुझे उपवास का प्रत्याख्यान करादे। सेठजी ने गुरुदेव से उसको उपवास का प्रत्याख्यान कराया। नरवीर के जीवन मे यह पहला उपवास था, मन मे अत्यन्त आनद आ रहा था। एकशिला नगरी मे सर्वत्र नरवीर के उपवास की प्रशसा हो रही थी। सेठजी भी सभी के समक्ष नरवीर के उदात्त गुणो का बखान कर रहे थे। नरवीर ने जीवन मे आज पहली बार अपनी प्रशसा श्रवण एव धन्यवाद प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त किया। दूसरे दिन सेठजी ने कहा–नरवीर ! अब तू मेरा स्वधर्मी बन्धु है। सभी को सकेत कर दिया कि इसे अब कोई नौकर न माने, उसके साथ स्वधर्मी बधु का सा व्यवहार करे। सबने सेठजी की बात सहर्ष स्वीकार कर ली। नरवीर से सेठजी ने कहा–नरवीर ! पारणे का समय हो गया है, अत अब तुम पारणा करलो। नरवीर पिता तुल्य सेठजी से बोला–आपसे पहले मै पारणा नहीं करूगा, स्वामी से पहले सेवक भोजन कैसे कर सकता है ? सेठजी बोले–अब तू हमारा सेवक नहीं है, हमारा साधर्मी बंधु है।

नरवीर–सेठजी ! आप मेरे परम उपकारी है, आपकी कृपा से ही मै उपवास कर सका हूँ। पर्युषण महापर्व की महिमा भी मै आपके निमित्त से जान सका हूँ।

का कोई उपाय हो तो बताओ। पुजारी ने कहा—यहाँ के आढर सेठ के यहाँ चला जा। वहाँ सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक दान दिया जाता है। वहाँ तुम्हारे जैसे अनेक लोग भोजन प्राप्त करते है। वे बहुत ही दयालु मानवीय सद्गुण सम्पन्न एवं करुणाशील है। वे जैन धर्मी श्रावक है। संत महापुरुषो की बहुत सेवा भक्ति करते है।'' नरवीर ने सोचा—मै क्षत्रिय पुत्र हूँ। अत याचना तो मै नहीं करूंगा और न ही मुफ्त का खाऊंगा। यदि सेठजी कुछ काम कराले तो कार्य करके भोजन कर लूंगा। पहुँचा वह सेठ के पास और बोला—मुझे आपकी सेवा चाहिए। आप जो कार्य कहेगे, वह सेवा मै करूंगा। सेठजी ने उसको दानशाला पर नियुक्त कर दिया। नरवीर ने थोडे ही दिनो मे अपने विनम्र व्यवहार, कर्मठ पुरुषार्थ से सारे परिवार का दिल जीत लिया। वह सेठ के घर में सबका प्रिय पात्र बन गया।

भादवा महिने मे लोग पर्युषण-पर्व मनाने की जोर-शोर से तैयारी लगे। उसने देखा कि पर्युषण आने से पूर्व कई जनो ने तपस्या प्रारभ कर दी। इन आठ दिनो मे कोई भी जैन किसी प्रकार की जीव हिसा नहीं करता। अनाज पीसना, कूटना, हरी वनस्पति का उपयोग तथा आठ दिन व्यापार धन्धे सभी बंद रहते। कई लोग तो आठो ही दिन उपवास और पौषध मे बिताते, धर्मस्थान मे ही रहते तथा प्रतिदिन प्रवचन श्रवण करते, प्रतिक्रमण भी करते है। संवत्सरी से एक दिन पूर्व सयोगवश आढर सेठ ने किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए नरवीर को दूसरे गांव भेजा। नरवीर उस कार्य को सम्पन्न कर सवत्सरी के दिन सेठ के घर पहुँचा तो देखा कि घर में कोई नहीं था। सभी प्रवचन-श्रवण करने गये थे। वह भी प्रवचन सभा मे पहुँच गया, देखा गुरुदेव प्रवचन फरमा रहे सभी श्रोता मत्र मुग्ध बने श्रवण कर रहे है। वह भी ऐसी जगह जाकर बैठा कि सेठ उसे देख सके। सेठजी प्रवचन श्रवण करने मे तल्लीन थे, कुछ देर बाद अनायास उनकी दृष्टि नरवीर पर पडी। सेठजी ने सोचा—नरवीर अभी ही आया है, वह भूखा है। अत उन्होने महिलाओ की पक्ति मे बैठी हुई अपनी पुत्रवधू को इशारे से कहा—घर जाओ और नरवीर को भोजन कराओ। पुत्रवधू का मन प्रवचन सुनने मे लगा हुआ था, परन्तु सेठजी की आज्ञा होने से उसे उठना पडा। नरवीर भी सेठजी का ईशारा पाकर घर पहुँचा। पुत्रवधू ने गुस्से में कहा—''जल्दी भोजन करलो। मुझे व्याख्यान से तुम्हारे लिए उठकर आना पडा।'' कभी गुस्सा न होने

वाली सेठ की बडी पुत्रवधू को आज क्रुद्ध देखकर नरवीर ने पूछा–बडी बहूजी ! आज आप मुझ पर नाराज क्यो हो ? वह बोली–''नाराज न होऊ तो क्या करूं ? आज सवत्सरी का दिवस है, पर्युषण का अंतिम दिवस है, इतना अच्छा प्रवचन चल रहा था, बीच मे उठकर आना पडा। आज हमारे सभी के उपवास है।'' नरवीर ने सोचा–''मुझे भी आज उपवास करना था। वह शाति से विनयपूर्वक बोला–बडी बहूजी ! मै भी आज उपवास करूगा। आप धर्मस्थानक मे जाईये। मै भी वहीं आ रहा हूँ।''

बहू घबराई, बोली–सेठजी मुझ पर नाराज होगे। तुम उपवास मत करो। नरवीर ने कहा–'' मै अपनी इच्छा से उपवास कर रहा हूँ। सेठजी नाराज नहीं होगे। मै सेठजी को आपके खिलाफ शिकायत नहीं करूगा।'' फिर भी बडी बहू भयभीत होती हुई धर्मस्थानक मे चली गई। इधर नरवीर भी पहुॅचा। सेठजी ने अपने पास बुलाकर धीरे से पूछा–नरवीर ! मालूम होता है, तुमने भोजन नहीं किया। नरवीर ने कहा–सेठजी ! आज महापर्व का अंतिम दिवस है, मुझे उपवास का प्रत्याख्यान करादे। सेठजी ने गुरुदेव से उसको उपवास का प्रत्याख्यान कराया। नरवीर के जीवन मे यह पहला उपवास था, मन में अत्यन्त आनद आ रहा था। एकशिला नगरी मे सर्वत्र नरवीर के उपवास की प्रशंसा हो रही थी। सेठजी भी सभी के समक्ष नरवीर के उदात्त गुणो का बखान कर रहे थे। नरवीर ने जीवन में आज पहली बार अपनी प्रशसा श्रवण एव धन्यवाद प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त किया। दूसरे दिन सेठजी ने कहा–नरवीर ! अब तू मेरा स्वधर्मी बन्धु है। सभी को संकेत कर दिया कि इसे अब कोई नौकर न माने, उसके साथ स्वधर्मी बधु का सा व्यवहार करे। सबने सेठजी की बात सहर्ष स्वीकार कर ली। नरवीर से सेठजी ने कहा–नरवीर ! पारणे का समय हो गया है, अत अब तुम पारणा करलो। नरवीर पिता तुल्य सेठजी से बोला–आपसे पहले मै पारणा नहीं करूगा, स्वामी से पहले सेवक भोजन कैसे कर सकता है ? सेठजी बोले–अब तू हमारा सेवक नहीं है, हमारा साधर्मी बंधु है।

नरवीर–सेठजी ! आप मेरे परम उपकारी हैं, आपकी कृपा से ही मैं उपवास कर सका हूँ। पर्युषण महापर्व की महिमा भी मैं आपके निमित्त से जान सका हूँ।

सेठ—नरवीर ! मुझे पारणा करने में अभी देरी लगेगी। मैं सामायिक किये बिना पारणा नहीं करूंगा।

नरवीर—मैं भी आपके साथ सामायिक करूंगा, बाद मे पारणा करूगा। सेठजी नरवीर की स्वामी भक्ति एवं सामायिक की लगन देखकर हर्षित हुए। उनके नयनो मे हर्षाश्रु उमड पडे। सेठजी ने उसकी तारीफ सेठानी के सामने की, तब सेठानी ने कहा–हो न हो, मालूम होता है नरवीर किसी उच्चकुल का दीपक है। आज आप ज्यादा देरी न करे, नरवीर को उपवास का शीघ्र पारणा कराये। सेठानी का मातृतुल्य वात्सल्य और प्रेम पाकर नरवीर गद्‌गद्‌ हो उठा।

धार्मिक क्रियाओं से निवृत्त होकर सेठ और नरवीर पारणे के लिए बैठे। सेठानी ने पारणे की पूरी तैयारी कर रखी थी। सेठ-सेठानी, पुत्र-पुत्रवधूएं सभी आग्रहपूर्वक केशरिया दूध, हलवा, मिठाई, आदि खिलाने पिलाने लगे। साधर्मी भक्ति के प्रवाह मे ख्याल न रहा कि जीवन में पहली बार उपवास करने वाले को पारणे में कितना खिलाना-पिलाना चाहिये। नरवीर पारणा करके अपने कमरे मे आकर लेट गया। उसका जी घबराने लगा, पेट फूलने लगा। उदर-पीडा के कारण चैन नहीं पड रहा था। उसने अपना दर्द किसी को बताया नहीं तथा सेठजी आदि सभी पारणा करने के बाद अपने-अपने कार्यो मे लग गये। भोजन के समय जब सेठजी आये तो नरवीर को याद किया। सेठजी उसके कमरे मे पहुंचे, देखा कि वह उदर-पीडा से अतीव बैचेन है, उसकी पीडा उत्तरोत्तर बढ रही है। सेठ ने नरवीर की गंभीर हालत देखकर तुरन्त एक आदमी को वैद्यजी को बुलाने भेजा और सेठ स्वयं नरवीर के पास बैठकर उसके पेट पर हाथ फिराने लगे। पता लगते ही सेठानी, पुत्र-पुत्रवधूए सब उसके कमरे मे पहुचे गये और उसकी सेवा में लग गये। सेठानी पंखे से हवा कर रही है। इतने मे वैद्यराज जी आये। उन्होने नरवीर की गंभीर हालत देखी। शीघ्र ही उपचार शुरू कर दिया। सेठ ने नरवीर को आश्वासन देते हुए कहा–''नरवीर ! चिन्ता मत कर। मै तेरे पास हूँ। वैद्यराज भी उपचार कर रहे हैं।'' उपचार के बावजूद भी नरवीर की हालत नहीं सुधरी। वैद्यराज जी ने सेठजी को ईशारा किया कि–''नरवीर का जीवन-दीप बुझने वाला है।'' अत. सेठ ने नमस्कार मंत्र एवं चार शरणा आदि सुनाये।

नरवीर को असह्य पीड़ा हो रही थी। फिर भी शांति से सुन रहा था एव देख रहा था। वह मन मे विचार कर रहा है–अहो ! पर्युषण पर्व और जैनधर्म का कितना प्रभाव है कि मुझे आज सबकी सेवा प्राप्त हो रही है। कैसा उत्तम धर्मिष्ठ आढर कुटुम्ब मुझे मिला है। मुझे सन्मार्ग राही बनाने वाले आचार्य यशोभद्र कितने महान् थे। ऐसा धर्म मुझे भव-भव मे प्राप्त हो और मै अरिहंत, सिद्ध, साहु और धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ।'' आढर सेठ ने नरवीर का मस्तक अपनी गोद मे रख लिया। वैद्य नरवीर को बचाने के लिए जी-तोड परिश्रम कर रहा था, परन्तु आयुष्य के क्षणो को कौन बढा सकता है ? नरवीर का जीवन-दीप बुझ गया। सेठ जी के मुख से चीख निकली, वे रो पड़े। सारा कुटुम्ब शोकमग्न होकर रूदन करने लगा। सारी नगरी मे शोक व्याप्त हो गया। सर्वत्र नरवीर के गुणो की चर्चा होने लगी। कुछ समय पश्चात् उस एकशिला नगरी मे अवधिज्ञानी मुनिराज पधारे। सेठ-सेठानी जब उन्हे वंदना करने गये तो उनके शोक-सतप्त हृदय को जानकर उन्होने कहा– आढर सेठ ! तुम्हे नरवीर के पीछे इतना शोक सतप्त होना उचित नही है। उसने पर्युषण पर्व और जैनधर्म की महिमा आत्मसात् कर अपना जीवन पावन बना लिया है। वह यहाँ से आयुष्य पूर्ण कर देवपाल के यहाँ जन्मा है। भविष्य मे गुजरात के महान् अहिंसक सम्राट कुमारपाल का अहिंसक महामत्री उदयन होगा और नरवीर को सन्मार्ग राही बनाने वाले आचार्य यशोभद्र स्वामी काल धर्म को प्राप्त कर भविष्य मे कुमारपाल के गुरु ज्योतिर्धर जैनाचार्य हेमचदसूरि बनेगे। यह सुन कर आढर सेठ और उसके कुटुम्ब का शोक दूर हुआ। सबको शांति का अनुभव हुआ।

यह है पावन पर्वाधिराज पर्युषण का अमित प्रभाव, उसकी अलौकिकता जिससे पापी नरवीर परम पावन बन गया। उद्दण्ड अविनीत से सरल एव विनीत बन गया। क्रोधी कामी एव खुखार डाकू से क्षमाशील धृतिमान शीलवान एव अहिसक बन गया। कुगति के बजाय सद्गति एव सुकुल का अधिकारी बना।

इस परम-पावन पर्वाधिराज ने हमारी सम्पूर्ण सस्कृति को अपार-बल और स्थायित्व प्रदान किया है। आज हमारे पास धार्मिक सस्कारो की जो कुछ थोडी उपलब्धि बची है, वह इस पर्व की उपस्थिति से ही है। जब तक इस भरतक्षेत्र मे यह पावन महापर्व पर्युषण रहेगा तब तक ही जैन-धर्म भी रहेगा।

इस प्रकार जैनत्व के सस्कारों को जिन्दा रखने वाला यह इस अलौकिक महापर्व 'पर्युषण' जो आत्मा का पर्व है, आत्म जागरण का पर्व है, आत्म-शुद्धि का पर्व है, आत्म-परिमार्जन एव आत्म-निरीक्षण का पर्व है। इन पर्व के दिनो में हम सोचें कि–विगतकाल मे कषायो ने हमें कितना उद्वेलित किया ? शरीर इन्द्रिय और मन के विषयो ने आत्मा को कितना अपवित्र किया ? विकारी भावो की हमने कितनी दासता की ? विषयासक्त होकर हमने कितने अपराध किये ? प्रमादवश हम कितने गाफिल रहे ? कहॉ-कहॉ हमारी कथनी और करणी मे अतर रहा ? आत्मा में पर्वाराधना से कितनी निर्मलता आई, कितनी मात्रा मे कषाय मंद हुए ? इन सबका आत्म-समीक्षण करते हुए आत्म-निन्दा, आत्म-गर्हा, आत्म-आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित द्वारा आत्मा का प्रक्षालन कर आत्मा के क्षमा गुण की अभिवृद्धि के साथ आत्मा के निकट पहुॅचे और पर्युषण महापर्व की अलौकिकता को आत्मसात् करे।

समता विभूति आचार्य श्री नानेश की सुषुप्त चेतना में अभिनव क्रान्ति घटित करने वाला यही अलौकिक पर्युषण-महापर्व है। धार्मिक क्रियाओ के प्रति जिनके प्रारभिक जीवन मे उपेक्षा भाव समाया हुआ था, स्व-प्रेरणा से नहीं, जीजाजी के आग्रह से प्रवचन-स्थल पर पहुंचे, सावत्सरिक प्रवचन मे छट्ठे आरे का वर्णन जब सुना, वह प्रथम-श्रवण ही रूपान्तरण का निमित्त बन गया। अनुश्रुत-अंश पर गहन चिंतन करते-करते आत्मा का सुषुप्त अद्‌भुत शौर्य जाग उठा। अद्‌भुत क्रांति घटित हुई, आत्मस्वरूप पाने के लिए चरण गतिशील बन गये। कौन जानता था इस महापर्व के निमित्त से प्रदीप्त यह लौ जन-जन के अज्ञान-अंधकार को छिन्न-भिन्न कर देगी। साधुमार्गी परम्परा के दीप्तिमत आचार्यो की परम्परा **''हु शि उ चौ श्री ज ग ना ना''** ने आध्यात्मिक क्षितिज पर अपनी उज्ज्वल रश्मियॉ बिखेरी है। इसी शृंखला मे प्रभु महावीर के 81वें पट्टधर बने आचार्य श्री नानेश। छट्ठे आरे में मानवीय नैतिक मूल्यो की ह्रासता के चित्रण से जिनकी आत्मा कांप उठी, उस क्लेश ककास भरे वातावरण मे जीवन कितना दूभर है ? ना, ना। मुझे नहीं जाना है–ऐसी घृणित मानव-देह मे। स्वय ने उत्थान की राह पकड़ी एवं हिंसादि क्रूर कर्म के द्वारा जो उसकी बुनियाद डाल रहे थे ऐसे दलित मानवों को भी उद्‌बोधन देकर पतित होने से बचा लिया, धर्मपाल बना दिया।

सदियो के बाद उदित होते है ऐसे ज्योतिर्मान नक्षत्र। विश्व आज विषमता की ज्वालाओ से धू-धू कर जल रहा है, उसके शमन का पूर्ण वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है, उनके द्वारा प्रदत्त समता-दर्शन जो न केवल सैद्धान्तिक वरन् प्रायोगिक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। पर्युषण के द्वारा जिस मैत्री, क्षमा, समता की सर्जना चाहते है उन्हीं सद्गुणो से हर पल अनुप्राणित आपका जीवन आज भी जन-जन के लिए प्रेरक है।

***

6

आत्म शुद्धि का महापर्व संवत्सरी

संवत्सरी शाश्वत पर्व है। संवत्सर नाम है-वर्ष का। अत संवत्सरी का अर्थ हुआ-वर्ष का सबसे महत्वपूर्ण दिवस। विक्रम संवत् के अनुसार चैत्र शुक्ला एकम् नया संवत्सर का दिन है। ईस्वी सन् की कालगणना के अनुसार 1 जनवरी संवत्सर का आदि दिन है। गुजराती समाज मे दिपावली से नया संवत्सर मनाते है। दीवाली सवत्सर का आदि दिवस भी है, अंतिम दिवस भी है। इस दिन पिछले वर्ष का आय-व्यय, हिसाब-किताब मिलाया जाता है, लाभ-हानि का तलपट निकाला जाता है और अगले दिन से नये खाते चालू किये जाते है।

हमारे आध्यात्मिक जगत मे संवत्सरी आत्म शुद्धि का दिवस है। जो साल में एक बार आता है। उपवास, प्रतिकमण, आलोयणा और क्षमापना प्रायश्चित आदि द्वारा आत्म शुद्धि की जाती है। इसी के साथ आत्म चितन किया जाता है कि गतवर्ष मे मैंने क्या-2 अकृत्य किये है? अपने व्रतो में कहाँ-कहाँ दोष लगाये हैं। किस-किस के साथ मेरा मन मुटाव हुआ है। मन की गहराई मे उतरकर उनका चिन्तन किया जाता है, उनका निरीक्षण किया जाता है। स्मृतियों पर जोर देकर उन कार्यो को याद करता है, तब चित्र की भांति पश्चाताप से मन की गांठे खुल जाती है, हृदय हल्का हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे स्नान करके तरोताजा हो गये। यह आत्म-स्नान ही इस संवत्सरी महापर्व की उपलब्धि है।

संवत्सरी के पांच महत्वपूर्ण अंग है जो अवश्यमेव करणीय है। प्रथम है-उपवास, दूसरा है-प्रतिक्रमण, तीसरा है-आलोचना चौथा है-प्रायश्चित और पांचवा है-क्षमापना। उपवास से तन की भी शुद्धि होती है और मन की भी शुद्धि होती है। विकारों की शान्ति और जिह्वा इन्द्रिय का संयम करने के लिए उपवास बहुत जरुरी है। उपवास भी चौविहार हो तो श्रेयस्कर है,

उपवास के बाद प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रायश्चित और क्षमायाचना। ये चार कड़िया है एक दूसरे से जुडी हुई है। लाभ और परिणाम की दृष्टि से सभी का एक ही लक्ष्य है-विकारो की शुद्धि, विचारो की शुद्धि भावो की पवित्रता पापो का प्रक्षालन। प्रतिक्रमण और आलोचना से मन की गाठे खुल जाती है, प्रायश्चित से आत्म-शुद्धि होती है और क्षमापना से तो सारे विश्व के साथ मैत्री साधी जा सकती है। जिस वीर के हाथ मे क्षमा का अमोघ शस्त्र है, उसका दुर्जन कुछ भी बिगाड नहीं सकता है। राम का बाण कभी खाली नहीं जाता था, वैसे ही क्षमा का तीर कभी निष्फल नहीं होता। रामबाण से भी इसकी विलक्षणता है। राम का बाण तो शत्रु का नाश करता था परन्तु क्षमाबाण शत्रुता का ही नाश कर देता है। शत्रु को जीवनदान देता है, शत्रु को मित्र बनाता है, और शत्रुता को मिटाता है। ऐसा अद्‌भुत शस्त्र जिसके पास हो उसे संसार में कोई भय नहीं होता। संवत्सरी का दिन सभी को अभय बनाने का दिन है। जो सभी को अभय बनाता है, वह स्वयं अभय बन जाता है।

कुछ वर्ष पूर्व जर्मनी में रहने वाले जैन भाईयो ने सवत्सरी पर्व के अवसर पर एक सामूहिक क्षमापना समारोह किया। उसमे वहॉ रहने वाले जैनो के अलावा अपने जर्मन मित्रो को भी उन्होने आमंत्रित किया। जब जर्मन लोगों को बताया गया कि आज के दिन हम सब अपने वर्ष भर के जीवन का आचार-व्यवहार का निरीक्षण कर जिस किसी के साथ भी कुछ अनबन या कटुता पैदा हुई है, मन-मुटाव या वैर विरोध हुआ है तो उससे तो क्षमा मांगते ही है किन्तु यो प्रत्येक भाई के साथ विनम्रतापूर्वक गले लगकर परस्पर क्षमापना करते है। यह सुन जर्मन लोग इतने प्रभावित प्रसन्न एवं आश्चर्यचकित हुए कि **वाह ! अद्‌भूत** कहने लगे। वे बोले वास्तव मे ही यह एक उत्कृष्ट मानवीय आदर्श है। ऐसा अद्‌भूत त्यौहार उन्होने जीवन मे पहली बार देखा सुना और महसूस किया कि त्यौहारो और पर्वो के माध्यम से किस प्रकार हमारा जीवन परिवर्तित हो सकता है। यदि संसार मे सभी व्यक्ति इस प्रकार अपनी भूलों का निरीक्षण कर उन पर सरल हृदय से पश्चाताप करने लगे और फिर एक दूसरे के साथ इस प्रकार क्षमायाचना करके मैत्री और बंधुत्व भावना को सुदृढ करने लग जाय। तो प्रेम, मैत्री, बंधुत्व तथा सौहार्द का वायुमंडल निर्मित होकर सर्वत्र सुख और शांति का

सौंदर्य खिल उठे।

इस संवत्सरी पर्व के विषय मे जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि इस पर्व का उद्‌गम कैसे हुआ ? क्या कोई घटना इसके साथ जुडी हुई है ? इतिहास इस विषय मे क्या कहता है ?

इसका समाधान है कि यह संवत्सरी महापर्व सनातनकाल से मनाया जा रहा है। इसका इतिहास कुछ वर्षो या शताब्दियों का नहीं है अपितु अतीत की अनंत गहराइयो से जुडा हुआ है। इस अवसर्पिणाी काल के चरम तीर्थकर प्रभु महावीर है। पूर्व के तीर्थकरो ने जो प्रतिपादित और आचरित किया है, वही प्रभु महावीर ने प्ररूपित एवं व्यवहृत किया है। क्योंकि सभी तीर्थकरो की मौलिक प्ररूपणा एक समान होती है। समवायांग सूत्र मे कहा गया है–

समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते।

सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेत्ति वासावास पज्जवसेइ॥

अर्थात् श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने वर्षावास का एक माह और 20 अहोरात्रि व्यतीत होने पर और 70 अहोरात्रि अवशेष रहने पर पर्युषण-कल्प अर्थात् संवत्सरी महापर्व की आराधना की। चातुर्मास का प्रारभ आषाढ शुक्ला पूर्णिमा से होता है। ठीक उससे 50वे दिन भाद्रपद शुक्ला पचमी को सवत्सरी पर्व आता है।

इस आगम पाठ से यह स्पष्ट होता है कि प्रभु महावीर एव उनके पूर्ववर्ती तीर्थकरो ने भी इस पर्व का आराधन किया था। इससे इस पर्व की सनातनता एवं महत्ता सिद्ध होती है।

यह दिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से तो महत्वपूर्ण है ही, समग्र सृष्टि के लिए युगान्तरकारी है। जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक काल चक्र के बारह आरे होते है। छ. आरे उत्सर्पिणी (उत्तरोत्तर विकास) काल के हैं और छ आरे अवसर्पिणी (उत्तरोत्तर ह्रास) काल के है। जिस समय मे मनुष्य आदि प्राणियो के शरीर की ऊंचाई-चौडाई एवं शक्ति मे तथा जमीन आदि पदार्थो के रस कस मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता जाता है, वह काल उत्सर्पिणी काल कहलाता है। तथा जिस समय इनका क्रमिक ह्रास होता जाता है, वह समय अवसर्पिणी काल कहलाता है। यह काल का चक्र निरन्तर घूमता रहता है। वर्तमान मे अवसर्पिणी काल का पंचम दु षम नाम का आरा चल रहा है।

21 हजार वर्ष का यह आरा है। इसकी समाप्ति पर छट्ठा दु षम दु.षम आरा लगेगा। वह ह्रास का पराकाष्ठा काल होगा। उसमे धर्म, कर्म, राज्य व्यवस्था बादर अग्निकाय आदि का लोप हो जायेगा। प्रकृति मे भयकर उथल-पुथल होगी। गांव, नगर, पर्वत सभी उजड जायेगा। छट्ठे आरे के लगते ही सवर्तक एव महासवर्तक नामक प्रलयकारी हवाए चलेगी। अधिकाश बस्तियो को उजाड देगी।

दिशाए धूल से भर जायेंगी, प्रकाश रहित होगी। अरस विरस, क्षार, खात, अग्नि, बिजली और विष मिश्रित बरसात होगी। जिससे वनस्पतिया, त्रसप्राणी, गाव, नगर, पर्वत आदि सब नष्ट हो जायेगे। सिर्फ वैताढ्य पर्वत आदि शाश्वत पर्व एव गगा-सिधु नदी अवशेष रहेगे। जो मनुष्य और पशु-पक्षी रहेगे वे गगा-सिधु नदियों के पूर्व पश्चिम तट पर बने 72 बिलो मे निवास करेगे। सूर्य खूब तपेगा, चन्द्रमा अत्यधिक शीतल होगा। भूमि अगार, भोमर, राख तथा तपे हुए तवे के समान होगी। गंगा-सिधु नदियो का पाट, रथ के चीले जितना चौडा रहेगा, उसमे रथ की धुरी प्रमाण पानी रहेगा। छट्ठे आरे के मनुष्यों की अवगाहना लगते आरे 2 हाथ की उतरते आरे 1 हाथ की होगी। उनका अधिकतम आयुष्य स्त्रियो का 16 वर्ष का तथा पुरुषो का बीस वर्ष का होगा। वे वीभित्स रूप वाले दीन-हीन, अमनोज्ञ स्वर वाले, काले-कुरुपे अधिक सन्तान वाले होगे। उनका वर्ण गध रस स्पर्श सहनन सस्थान सब अशुभ होगे। वे अधिकतर रोगी, क्रोधी, मानी, मायी एव लोभी होगे। मच्छ-कच्छ का भोजन करेगे। व्रत-नियम-पचक्खाण रहित मासाहारी सकिष्ट परिणामी वे जीव मरकर प्राय नरक तिर्यच गति मे जायेगे। यह आरा इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा। प्रत्येक आरा आषाढ सुदि पूर्णिमा को समाप्त होता है। और श्रावण वदि एकम को प्रारभ होता है। इस शाश्वत नियम के अनुसर श्रावण वदि एकम को उत्सर्पिणी काल का प्रथम आरा प्रारंभ होगा और वह भी 21 हजार वर्ष तक अवसर्पिणी काल के छट्ठे आरे के समान ही चलेगा। इसमें वर्ण पर्याय आदि अनतगुण परिवृद्धि क्रम से परिवर्धित होते जायेगे। फिर दु षमा नामक द्वितीय आरा प्रारभ होगा। उसमे भी वर्णपर्याय आदि अनंतगुण परिवृद्धि क्रम से परिवर्धित होगे। श्रावण वदि एकम से लेकर प्रथम सात दिन रात तक भरत क्षेत्र की अशुभ अनुभावमय रूक्षता, दाहकता आदि का अपने प्रशांत जल द्वारा शमन करने वाला पुष्कर-संवर्तक नामक

महामेघ (भरत-क्षेत्र प्रमाण मेघ को महामेघ कहा है) मसूलधार जल वृष्टि करेगा। जिससे सारा भूमि भाग शीतल हो जायेगा। फिर सात दिन रात तक क्षीर मेघ मूसल और मुष्टि परिमित धाराओ से सर्वत्र एक सदृश बरसेगा। वह भूमि में शुभ वर्ण गंध रस और स्पर्श उत्पन्न करेगा। फिर घृत मेघ 7 दिन रात तक बरसेगा। वह भूमि मे स्निग्धता उत्पन्न करेगा। फिर अमृत मेघ 7 दिन रात तक बरसेगा। वह भरत क्षेत्र मे सर्वत्र वृक्ष गुच्छ गुल्म लता आदि हरियाली, औषधि, जडी-बूटी आदि बादर वनस्पति कायिक जीवो को उत्पन्न करेगा। इसके बाद 7 दिन रात रसमेघ बरसेगा। वह उत्पन्न वनस्पतियों में पांच प्रकार रस उत्पन्न करेगा। इस प्रकार पांच सप्ताह बारिश होगी और बीच मे दो सप्ताह धूप निकलेगी। जो किटाणुओं से सुरक्षा कर फसल को बढाने मे सहयोगी बनेगी। जब वे बिलवासी मनुष्य देखेगे कि भरत क्षेत्र मे चहुँ और हरियाली छा गई, वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता बेल, औषधि आदि उग आई है तो वे ऐसा देखकर बिलों से बाहर निकलेगे। निकलकर हर्षित एवं प्रसन्न होते हुए एक दूसरे को पुकारेगे। और पुकार करके कहेंगे-- देवानुप्रियो ! अब समय बदल गया। प्रकृति ने हमे फल-फूल, धान्य औषधि देना प्रारंभ कर दिया है, अतः हमें आज से प्राकृतिक जीवन यापन करना है। हे देवानुप्रियो ! अब आज से कोई मांसाहार नहीं करेगा। जो मांसाहार करेगा उसके शरीर का स्पर्श तो दूर रहा पर उसकी छाया तक वर्जनीय होगी, उसकी छाया तक नहीं छुएंगे। ऐसा निश्चय कर वे समीचीन व्यवस्था कायम करेगे। अर्थात् शाति पर्व के रूप मे उस दिवस को मनायेंगे। इस दिन मासाहारी लोग मांसाहार का त्याग कर सभी पंचेन्द्रिय जीवों को अभयदान देंगे। वह अभयदान का शुभ दिवस संवत्सरी का पावन दिवस होगा। जो तीर्थकर के द्वारा अनादिकाल से मनाया जा रहा है। 50वे दिन संवत्सरी मनाने का यही ऐतिहासिक प्रमाण है। यह पर्व आत्मशुद्धि की प्रेरणा देने वाला एवं जीवन में मैत्री प्रतिष्ठित करने वाला पर्व है।

यहॉ एक प्रश्न है कि वर्तमान मे हम जो पर्युषण मना रहे हैं, ये आठ दिन मनाते है और इसे अष्टाह्निक पर्व कहते हैं अर्थात् आठ दिन का पर्व। जबकि आगम पाठ से यह पर्व एक दिन का सिद्ध होता है। चातुर्मास के प्रारंभ दिन से गणना कर 50वॉ दिन अर्थात् संवत्सरी के दिन ही मुख्य रूप से पज्जोसवणा माना गया है।

इसका समाधान है कि यह अष्टदिवसीय पर्युषण मनाने की परम्परा जैनाचार्यो की देन है। उनका कहना है–जैसे प्रत्येक त्यौहार योजनापूर्वक मनाये जाते है वैसे ही महापर्व सवत्सरी के पूर्व के 7 दिन उसकी पूर्व की भूमिका के रूप में निर्धारित किये जाने चाहिये।

आज के युग मे विविध सप्ताहो का भी आयोजन देखा जाता है, जैसे कभी राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता है। कभी कृषि सप्ताह तो कभी श्रम सप्ताह। इन आयोजित सप्ताह मे अन्य कार्यो से छुट्टी लेकर विशेष कार्यक्रमो की ओर ध्यान दिया जाता है। जैसे राष्ट्रीय सप्ताह मे राष्ट्र हित के दृष्टिकोण को प्रमुखता देकर तदनुरूप कार्यक्रमो का आयोजन किया जाता है। सफाई-सप्ताह मे स्वच्छता को प्रमुखता दी जाती है वैसे ही यह पर्युषण पर्व भी आध्यात्मिक सप्ताह है। प्रारभ के 7 दिन साधना अभ्यास के क्षण है। आठवा दिन परीक्षण का है। इसमे बाह्य जगत के क्रिया-कलापो से निवृत्ति लेकर आध्यात्मिक जगत मे संचार किया जाता है। आत्मा को शुद्ध बनाने वाले कार्यक्रमो को प्रमुखता दी जाती है। इन प्रारंभ के 7 दिनो मे विकार विजय की तैयारी की जाती है। पर्युषण का आठवा दिन पूर्ण विजय-प्राप्ति का दिन है। संवत्सरी के दिन तो सारा मैल धूल जाना चाहिए। ताकि सुलझे हुए विचारो से सच्चे दिल से क्षमायाचना कर सके।

संवत्सरी पर्व जीवन मे मैत्री की भावना भरता है, मेलजोल का हाथ बढाने की प्रेरणा देता है। इस पर्व के दिन वायुमडल इतना धर्ममय बन जाता है कि जैन समाज का कोई भी व्यक्ति जिसमें किचित मात्र भी धर्म के संस्कार है, वह चाहे कितना भी व्यस्त क्यो न हो, इस पर्व के दिन उसके मन मे भी त्याग, तप, जप के भाव प्रगट होते है। उसके कदम धर्म स्थानक की ओर बढ जाते है। आश्चर्य तो तब होता है जब कभी भी उपवास सामायिक पौषध नहीं करने वाले व्यक्ति अठाईयॉ, मासखमण की तपश्चर्या कर स्थानक मे प्रतिक्रमण करते नजर आते है। अनेक युवक-युवतियॉ द्रव्य की मर्यादाऍ करते हुए रात्रि भोजन का त्याग करते है। होटल, सिनेमा का प्रत्याख्यान करते है। छोटे-छोटे बच्चे भी खाना और खेलना छोडकर मुखवस्त्रिका बांधकर चद्दर ओढकर पूंजनी हाथ मे लेकर धर्मस्थानक मे बैठकर सामायिक करते नजर आते है।

एक मॉ के जाए, साथ जन्में, साथ खेले, साथ पढे, समय आया, राग-द्वेष की हवा चली, कषाय से अभिभूत होकर दोनो भाई बिछुड गये। एक पर पिता को सम्भालने का दायित्व आया, दूसरे पर मॉ का। वैर के कारण मॉ-बाप भी आपस मे मिल नहीं सकते। मॉ की मृत्यु हुई, दूसरा भाई अपने भाई के घर नहीं गया। कुछ समय बाद पिताजी का आयुष्य पूर्ण हुआ, वह भाई भी उस भाई के घर नहीं गया। सवत्सरी महापर्व, आत्मशुद्धि की प्रेरणा लेकर आया, आत्मा को पवित्र बनाने की हवा चली। उस हवा ने मन की कालुष्यता धो डाली। मैत्री की भावना जागी, बडा भाई, छोटे भाई के घर पहुचा, वैर वैमनस्य समाप्त हुआ। छोटा भाई बडे भाई के चरणो मे गिर पडा। अश्रुओ से बडे भाई के चरणो का प्रक्षालन करने लगा। बड़े भाई ने छोटे भाई को उठाकर अपने गले से लगा लिया। परस्पर क्षमायाचना करने लगे। यह है संवत्सरी का महात्म्य।

सामने वाले के असद् व्यवहार से होने वाली मानसिक व्यथा को आप यह सोचकर दूर करे कि इसमें उसका अहित होगा या नहीं, किंतु मेरा अहित तो होगा ही। अपने बडप्पन का परिहार करे, यदि आप ऐसा करते हैं तो निश्चित ही आपके जीवन मे मैत्री का अवतरण होगा।

जैन शास्त्रो में कहा है—आपने कोई भी बुरा काम किया है, पापाचरण किया है, किसी के साथ क्रोध या झगडा किया है, तो तुरन्त उससे क्षमायाचना करलो। मन का क्रोध, भावो की उग्रता तथा विचारों की कटुता को तुरन्त दूर कर दो। कभी भी वैर की गांठ मत बांधो। वैर की गांठ मन की शांतिधारा में रूकावट पैदा करती है। पाप का जख्म यदि जल्दी नहीं भरा तो नासूर बन जाता है। इसलिए घावो की तुरन्त महल्म पट्टी करो, तुरन्त चिकित्सा करो।

भगवान् महावीर ने साधुओ को निर्देश करते हुए कहा है कि—परस्पर कोई कटुता उत्पन्न हो तो भोजन करने से पहले ही उसे समाप्त कर दो। बृहत्कल्पसूत्र मे बताया है—

''भिक्खू य अहिगरणं कट्टु ते अहिगरणे अविओसइत्ता नो से कप्पइ गाहावइ कुले भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए।''

हे भिक्षुओ ! यदि किसी कारणवश किसी से कलह हो गया हो तो उससे तुरन्त क्षमायाचना करलो, उस कलह की शांति करलो, पाप की शुद्धि

करलो जब तक कलह की शाति और पाप का प्रक्षालन न हो जाय, गृहस्थ के घर आहार-पानी लेने भी मत जाओ। यहॉ तक शौचादि शारीरिक क्रियाए भी बाद में करो। पहले उससे कलह कटुता द्वेष-विद्वेष की शाति करो।

वैदिक ग्रथो मे बताया है–

''आ सवत्सर प्रायश्चितकरणे पाप द्वैगुण्यम्।'' अर्थात् एक वर्ष तक यदि पाप का प्रायश्चित नहीं किया जाता है तो पाप दुगुना हो सकता है। कई विद्वानो का मत है कि जैसे धन ब्याज मे बढता है वैसे ही मन मे छिपाकर रखा हुआ पाप दिन-रात बढता है।

जैन दर्शन मे पाप का तुरन्त प्रायश्चित करने का विधान है। एक बार एक मुनि भगवान् के पास आकर बोला–भते ! आज अमुक मुनि से मेरा कलह हो गया है, मुझे उसका अनुताप है, अब मै क्या करू ? भगवान् ने कहा–परस्पर क्षमायाचना करलो।

मुनि– भते ! मेरा अनुमान है कि वह मुझे क्षमा नहीं करेगा। भगवान्–वह तुम्हे क्षमा करे या नहीं करे, आदर दे या न दे, तुम्हारे जाने पर वह खडा होवे या न होवे, वदना करे या न करे, साथ मे खाना खाए या नही खाये, साथ मे रहे या न रहे, कलह शात करे या न करे, फिर भी तुम उसे क्षमा करो।

मुनि–भते ! मुझे अकेले को ही ऐसा क्यो करना चाहिए ? भगवान्– आयुष्मान् ! श्रमण होने का अर्थ है–शांतिमय जीवन जीना, मैत्रीपूर्ण जीवन होना। तुम श्रमण होने का अनुभव कर रहे हो, इसलिए मै कहता हू कि तुम अपनी मैत्री जगाओ, जो मैत्री को जागृत करता है, वह श्रमण होता है। इस जगत मे सभी लोग श्रमण नही होते है और श्रमण भी सब समान वृत्ति के नहीं होते है। इस वस्तुस्थिति को ध्यान मे रखते हुए भगवान ने कहा–यदि तत्काल मैत्री की अनुभूति नहीं कर सको तो पक्ष के अतिम दिन अवश्य मैत्री का अनुभव करो, पाक्षिक दिन भी उसकी अनुभूति न हो सके तो चातुर्मासिक पर्व के दिन अवश्य उसे विकसित करो, यदि उस पर्व पर भी मैत्री का अनुभव न हो तो संवत्सरी पर्व पर तो अवश्य उसका विकास हो जाना चाहिए। यदि उस दिन भी द्वेष की ग्रथी नहीं खुलती है, सबके प्रति मैत्री भावना जागृत नहीं होती है तो समझलो कि अभी तुम सम्यगदृष्टि नहीं हो, धार्मिक भी नहीं हो। धर्म की प्रथम सीढी है–सम्यगदृष्टि और सम्यगदृष्टि

की पहली पहिचान है–शांति और मैत्रीमय मानस का होना। जिसके मन मे प्राणीमात्र के प्रति मैत्री दृष्टि नहीं है तो वह सम्यगदृष्टि भी नहीं है।

इस दृष्टि से जैन परम्परा मे क्षमा याचना को एक आध्यात्मिक गौरव प्राप्त है। इसलिए देवसी-रायसी प्रतिक्रमण के अतिरिक्त पाक्षिक, चातुर्मासिक एव सांवत्सरिक प्रतिक्रमण को विशेष महत्त्व दिया है। जहाँ साधु के लिए तो यह अनिवार्य है कि ''कोई गल्ती हो जाय तो क्षमायाचना किये बिना मुँह मे अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करे।'' यदि ऐसा नहीं कर पा रहा है तो पाक्षिक पर्व पर तो उसे क्षमा याचना कर लेना जरूरी ही है यदि ऐसा नहीं करता है तो उसके साधुत्व मे सशय पैदा हो जाता है। इसी तरह 12 व्रतधारी श्रावक चातुर्मासिक पर्व पर भी गल्ती की क्षमायाचना नहीं मागता है तो उसके श्रावकत्व को खतरा पैदा हो जाता है। यदि सम्यगदृष्टि आत्मा 12 महिने मे सवत्सरी जैसे महापर्व पर भी अपने वैमनस्य की गांठ को नहीं

है तो उसका सम्यक्त्व ही धूमिल हो जाता है। इसीलिए इन पर्वो पर क्षमायाचना का विशेष महत्व है।

संवत्सरी का संदेश आज हमे जगा रहा है कि वर्ष भर मे जब भी जहाँ भी जाने-अनजाने, एकान्त मे या प्रकट में, आपसे कुछ भी पाप हो गया हो, किसी के साथ द्वेष-विद्वेष हो गया हो तो कटुता या संघर्ष की चिनगारी उठी हो, मनोमालिन्य की स्थिति बन गई हो तो आज बालक की तरह सरल मन होकर उन गाठो को खोल दो, पापों को स्वीकार करो, उन पापो की निन्दा करो और उनसे छुटकारा पाने हेतु प्रायश्चित करलो, क्षमा मांग लो। चूंकि मन की गांठे बहुत खतरनाक होती है। वह मन को अशात, बैचेन, भयभीत, कुंठाग्रस्त बना देती है, फिर धीरे-धीरे शरीर को भी रोगी अशक्त, अपाहिज बना देती है।

आज के मनोवैज्ञानिक डॉक्टरो का कहना है कि तन का हर रोग मन की गुत्थी से पैदा होता है। गुप्त पापों के कारण ऐसी मानसिक ग्रंथियां बनती है, जिसके कारण अनेक भयंकर बीमारियो से इन्सान ग्रस्त हो जाता है। पेट का अल्सर, कैंसर की गांठे, रसौली, पागलपन, उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियां शारीरिक नहीं मानसिक ग्रंथियों का परिणाम है। जिनकी चिकित्सा दवाओं से या इंजेक्शन से संभव नहीं है केवल उन पापों का प्रायश्चित उनका प्रगटीकरण और परिशोधन करने पर ही उन बीमारियों से छुटकारा

मिल सकता है। अमेरिका में, श्रीमती जे सी ट्रूस्ट नामक एक महिला-सत है, जिसने सैकड़ो लोगों को सिर्फ अपराध स्वीकृति और अपराध की शुद्धि, तप-प्रायश्चित द्वारा ही ठीक किया है।

एक सत्य घटना है–अमेरिका के न्यूजर्सी शहर मे एक प्रसिद्ध डॉक्टर नारमन बीसेण्टपीले रहते थे। वे शरीर चिकित्सक के साथ मनोवैज्ञानिक भी थे और धार्मिक भी। वे एक चर्च मे धार्मिक प्रवचन भी करते थे। एक दिन प्रवचन समाप्त कर डॉक्टर चर्च की सीढियो से नीचे उतर रहा था कि एक नवयुवती उनके सामने आकर बोली–डॉक्टर ! क्या मेरे रोग का इस ससार में कोई ईलाज नहीं है ? युवती की बैचेनी और हडबडाहट देखकर डॉक्टर पीले चकित रह गया। उसने शाति से पूछा–ऐसी क्या बीमारी है तुम्हे ?

युवती ने कहा–''जब भी मै चर्च मे आती हूं मेरी बाहो मे बड़ी तेज खुजली चलती है। खुजलाते-खुजलाते मे बेहाल हो जाती हू। देखो मेरी लुहलुहान बाहे।'' उसने बाहो को दिखाया। उन पर लाल-लाल चकते बन गये थे।

डॉक्टर ने कहा–''हो सकता है तुम जिस कुर्सी पर बैठती हो या जो वस्त्र पहनती हो, उनमे कोई रासायनिक पदार्थ ऐसा हो जो तुम्हारे चमडी के अनुकूल नहीं पडता है।''

युवती–''अगर यही बात होती तो मै दूसरे गिरजे मे जाती हू, दूसरी कुर्सी पर बैठती हू और कपडे भी हर दिन धुले हुए साफ-सुथरे पहनती हू परन्तु मेरी वहॉ पर भी यही हालत होती है और सिर्फ गिरजे मे ही होती है।''

डॉ पीले बडा सहृदय था। उसने सहानुभूति के साथ विचार किया और युवती के फैमिली डॉक्टर से मिला। फैमिली डॉक्टर ने बताया–''इस युवती को इण्टरनल एग्जिमा है अर्थात् यह खुजली किसी रोगाणु के संक्रमण से नही होती है, परन्तु अपने आप भीतर से ही उलझने रहने के कारण होती है। बहुत बार देखा जाता है, जब कोई चीज नहीं आती तो हम कनपटियो पर खुजलाने लगते है। जब रुपये पैसो की तंगी होती है और सख्त आवश्यकता महसूस होती है तो हथेलिया खुजलाने लगती है। हाथ मे खाज आती है तो आप समझते है पैसा आयेगा या जायेगा। इस प्रकार की खुजलाहट दिमाग मे होने वाली उथल-पुथल या वैचारिक ग्रथि का परिणाम

होता है। कभी-कभी व्यक्ति बडे कठिन मानसिक संघर्ष में उलझ जाता है तो शरीर के किसी भाग मे खुजली चलती है और खुजलाते-खुजलाते चमडी लाल हो जाती है। मन.चिकित्सक इसे इंटरनल एग्जिमा कहते है।

डॉक्टर पीले ने युवती को बहुत गहराई से टटोला, उसे पिछले जीवन के बारे में कुरेद-कुरेदकर पूछता रहा तो युवती ने अपना सारा अतीत खोल दिया। उसने बताया–एक बार वह कंपनी में एकाउन्टेन्ट का काम करती थी और मौका देखकर गोलमाल भी कर दिया करती थी। वह यह सोचकर पैसे चुराती थी कि जल्दी ही इन पैसों को वापस गल्ले मे रख देगी। परन्तु मजबूरीवश वापस पैसे नहीं रख सकी। इस अपराध बोध की भावना अभी भी उसके मन को उद्वेलित करती रहती है।

डॉक्टर पीले को रोग की जड मिल गई। युवती के मन मे अपराध की भावना घर कर गई है। उसे प्रकट भी नहीं कर सकती और मन से वह भी नहीं मिट पाता। जब भी वह चर्च में आती तो उसकी यह पश्चात्ताप और आत्मग्लानि की भावना उग्र हो जाती, फलस्वरूप रक्तवाहिनी की पैशियों में ऐंठन होने लगती और खुजली शुरू हो जाती। मन की गहराई मे जमी इस रोग की जड को पकडकर डॉक्टर पीले ने युवती को समझाया– ''तुम फर्म के मालिक के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार करलो और चुराई हुई रकम वापस लौटा दो।'' साथ ही डॉक्टर ने युवती को ढाढस बधाते हुए कहा कि–''हो सकता है मालिक तुम्हे नौकरी से निकाल दे या तुम्हें पुलिस के हवाले भी कर दे, परन्तु इससे भी भारी मानसिक यंत्रणा जो तुम पा रही हो, उससे छुटकारा तो मिल ही जायेगा। तुम अपनी आत्मा की कुठा से तो मुक्त हो ही जाओगी।''

युवती ने साहस करके मालिक के सामने अपनी गलती स्वीकार कर ली। मालिक उसकी ईमानदारी और नैतिक मूल्यो के प्रति उदित हुई निष्ठा से प्रभावित हुआ। उसने युवती के खिलाफ कोई भी कानूनी कार्यवाही नहीं की, उल्टी उसकी पदोन्नति कर दी। युवती के भीतर पश्चाताप और प्रायश्चित की भावना के फलस्वरूप जो आन्तरिक शुद्धि हुई, उसके अन्त करण में जो हल्कापन निर्भीकता और साहस का उदय हुआ उससे, उसी दिन उसकी खुजली मिट गई। वह स्वस्थ हो गई, तन से भी और मन से भी।

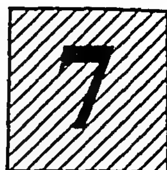
पाराशर स्मृति मे कहा है–

कृत्वा पापं न गूहेत, गुह्यमानं विवर्द्धते।
स्वल्पं वा प्रभूतं वा धर्म विद्भ्यो निवेदयेत्॥

पाप कर्म करके उसे छिपाना नहीं चाहिए। पाप चाहे थोडा हो या अधिक धर्मज्ञ पुरुष के समक्ष उसे उसी प्रकार प्रगट कर देना चाहिए जैसे रोगी वैद्य के सामने अपनी बीमारी बताकर निरोग होने का प्रयास करता है। छिपाई हुई बिमारी बढती है और छिपाया हुआ पाप भी बढता है। इसलिए पाप को नष्ट करने की औषध है–आलोचना प्रतिक्रमण प्रायश्चित।

सवत्सरी का महापर्व आत्मशुद्धि का पुनीत दिवस है। आत्मा को शाति तभी मिलेगी, जब उसके भीतर छिपाये दोष, दुष्कर्म, दुष्प्रवृत्तिया, दुर्भावनाएं शात हो जायेगी, और यह तभी संभव है जब हम आज के दिन वर्ष भर के अपने कृत्यो का पवित्र अन्त करण की साक्षी से निरीक्षण कर आलोचना प्रतिक्रमण प्रायश्चित और हृदयपूर्वक क्षमायाचना करते हुए इस पर्व की आराधना करेगे।

***



क्षमा–पर्व

क्षमा एक अमृत है। यह जिसके पास होता है, वह कटुता के जहर को धोकर स्वयं अमृत बन जाता है। जैन धर्म मे क्षमा का गौरव पूरी गुरुता के साथ उद्‌गीत है। धर्म के चार दरवाजो मे पहला द्वार क्षमा है। इस द्वार में प्रवेश किए बिना कोई भी व्यक्ति मोक्ष के महापथ पर आगे नहीं बढ सकता। दस प्रकार के श्रमण धर्मो मे पहला धर्म क्षमा है। क्षमा जीवन का तेज है, ओज है। क्षमा ब्रह्म है, सत्य है। क्षमा ही तपस्वियों का रूप है। इसलिए क्षमा-धर्म का विकास अपेक्षित है।

क्षमापना, क्षमायाचना और खमतखामणा–ये तीनों शब्द क्षमा-धर्म की परिक्रमा करते है। अपनी भूल के लिए क्षमा मांगना और औरो की भूल के लिए क्षमा करना–इन दोनो का समन्वित रूप है–"खमत-खामणा"।

एक राजकन्या ने सकल्प किया कि–"जो व्यक्ति उबलते हुए नेल के कडाह मे स्नान करेगा, मै उसके साथ शादी करूंगी।"

राजकुमारी गुणज्ञ, रूप सम्पन्न, शील सम्पन्न एवं सभी तरह की कलाओ मे प्रवीण थी। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। अनेक राजकुमारो ने उसकी ख्याति सुनकर शादी का प्रस्ताव भेजा। परन्तु उसका संकल्प बाधक बन रहा था। उबलते हुए तेल के कडाह मे स्नान करने का अर्थ था मौत से मुकाबला करना। मरना कौन चाहेगा। बात टलती गई।

एक युवा राजकुमार को किसी विशिष्ट ज्ञानी से यह बात ज्ञात हुई कि "यदि उबलते हुए तेल के कडाह मे दो रत्ती बावना चन्दन डाल दिया जाय तो उबलता हुआ तेल का कडाह प्रभाव हीन हो जाता है। राजकुमार ने बावना चन्दन मगवाया और राजकुमारी की चुनौति स्वीकार कर ली। जब चहुं ओर यह सूचना पहुंची कि अमुक राजकुमार ने राजकुमारी की चुनौती स्वीकार कर ली है तो हजारो की तादाद मे लोग अपना आवश्यक कार्य छोडकर राजभवन की ओर आने लगे। देखते-देखते अच्छी भीड इकट्ठी हो गई। राजमहल के

परिसर में तेल का कडाह आग पर चढा दिया गया। तेल पूरी तरह उबल चुका था। राजकुमार उसमे अवगाहन करने के लिए तैयार खडा था। दर्शको के मन में करुणा उमड रही थी, पर राजकुमार के चेहरे पर गर्व की दीप्ति थी। उसने बावना चन्दन की पुडिया तेल के कडाह मे डाली और उत्साहित होकर कूद पड़ा। बहुत ही रोमाचक थे वे क्षण। जहाँ उबलते हुए तेल की एक बूद शरीर पर कहीं भी लग जाए तो वह स्थान जल जाता है। वैसी स्थिति मे युवक तेल में पूरी तरह डूबकर बाहर निकल आया। राजकुमारी ने उसके गले मे वरमाला पहिनाकर अपना संकल्प पूरा किया। यह घटना सत्य हो या न भी हो पर जैसे बावना चन्दन के प्रयोग से शीतलता वरतती है ठीक वैसे ही "खमत-खामणा" भी एक ऐसा बावना चन्दन है। जो क्रोध के उफनते हुए दरिया को शांत कर सकता है। क्रोध का उफनता हुआ दरिया जब नियत्रण से बाहर हो जाता है तो प्रलय मचा देता है। इसे शात करने का अमोघ उपाय है क्षमा का आदान-प्रदान।

जैन धर्म का एक विलक्षण पर्व है–पर्युषण-पर्व। आठ दिनो तक इस पर्व की आराधना करने के बाद नौवे दिन खमतखामणा के क्षण उपस्थित होते है। इसे भी एक पर्व की गरिमा प्राप्त होती है। यह क्षमा-पर्व है। मैत्री पर्व है। क्षमा लेने और देने का पर्व है। यह पर्व व्यक्ति को विराट बनाने वाला है। इसमे संबंधों की सारी सीमाऐं टूट जाती है। अपनेपन परायेपन की भेद-रेखा समाप्त हो जाती है। जीवन मे भरा हुआ राग और द्वेष का लावा पिघलकर बह जाता है। जीवन की धरती पर मैत्री और समता की पौध लहलहा उठती है। ऐसे ही क्षणो मे व्यक्ति को अनुभव होता है–"**मित्ति मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणई**"–ससार के समस्त प्राणियो के साथ मेरी मैत्री है, किसी के प्रति मेरे मन मे शत्रुता का भाव नहीं है। इस संकल्प का संबंध केवल उन्हीं मनुष्यो या प्राणियो के साथ नहीं है, जिनसे व्यक्ति का कोई रिश्ता नहीं है, जान-पहिचान नहीं है और प्रयोजन नहीं है। ऐसे व्यक्तियो के सामने मैत्री का हाथ बढाना बहुत बड़ी बात नहीं है। बडी बात है–मित्रो के साथ मैत्री करना। ऐसे मित्र जिन्होने कभी स्वार्थ पर चोट की, हितो का विघटन किया, किसी मर्म का प्रकाशन किया, जिनके साथ संबध कटुतापूर्ण हो गए, क्या उनके सामने एक बार फिर मैत्री का हाथ बढाया जा सकता है ? ऐसे परिजन जिन्होंने कभी स्वप्न मे भी अहित नहीं किया, पर किसी गलतफहमी के कारण आज वे दूर

हो गए। क्या उनको फिर निकट लिया जा सकता है ? यदि खमत-खामणा करने वाले व्यक्ति के पास इन प्रश्नो का सकारात्मक उत्तर नहीं है तो क्या सब जीवो के प्रति मैत्री का आदर्श खडित नहीं होता है ?

खमत-खामणा का अर्थ है—क्षमा देना और क्षमा लेना। खमत खामणा का सही रूप तभी सामने आता है, जब सहिष्णुता का विकास हो। इसके अभाव मे खमतखामणा का मूल्य शाब्दिक उच्चारण से अधिक कुछ नहीं है। व्यक्ति किसी को शब्दो से क्षमा देता है पर मन मे आक्रोश भरा रहता है तो यह क्षमादान है या उसकी विडम्बना है ? व्यक्ति क्षमा मांगता है, पर सामने वाले व्यक्ति द्वारा किए गए दुर्व्यवहार को भूलता नहीं है। क्या मन का पूरा सहयोग मिले बिना क्षमा मांगने का प्रयोग सफल हो सकता है ? ऊपर-ऊपर से विश्वात्मा के साथ तादात्म्य की बात और भीतर विरोध की ज्वाला। क्या यह खमतखामणा की सार्थक्ता है ?

कुछ परिवारो मे छोटे-छोटे कारणों को लेकर वैमनस्य हो जाता है, अनबन हो जाती है, आपस मे बोलचाल बंद हो जाती है। उस परिवार के सदस्य क्षमायाचना के दिन खमत-खामणा करने के बाद भी अपने वैमनस्य को नहीं भूलते है, आपस में एक-दूसरे से नहीं बोलते हैं तो क्या यह खमतखामणा हास्यापद नहीं है ?

सवत्सरी के दिन प्रतिक्रमण कर व्यक्ति चौरासी लाख जीव-योनियों के साथ खमत-खामणा कर लेता है, पर जिनके साथ कुछ अवांछित घटित हुआ है, जिनके प्रति मन मे दुर्भावना है, उनका सामना होने पर व्यक्ति कहता है—आपके साथ कटु-व्यवहार हुआ हो तो खमत-खामणा है। इस कथन का क्या अर्थ है ? साहस तो इतना होना चाहिए कि आपके अमुक व्यवहार से मुझे ठेस पहुंची अथवा मेरे व्यवहार से आपको निश्चित रूप से आघात लगा है, पर आज हमे उस प्रसंग से उत्पन्न तनाव को समाप्त करना है, मन हल्का करना है और सदा-सदा के लिए कटुता को भूलकर मैत्री-भाव बढाना है। इस प्रकार अतीत के सम्पूर्ण कालुष्य को धोकर अन्तर्मन से स्वस्थ होना हल्कापन अनुभव करना खमत-खामणा का सही प्रयोजन है।

खमत-खामणा का पर्व धार्मिक लोगों के लिए एक आह्वान है। व्यक्तिगत जीवन मे छोटी-छोटी बातो को लेकर जो गांठे उलझ जाती है उन्हे खोलना आवश्यक है। जब व्यक्ति अपने कृत्त अपराध के लिए क्षमा मांगता है और दूसरे

को बिना मागे ही क्षमा देता है। इससे व्यक्ति का अह विगलित होकर बह जाता है। एक का अह टूटता है तब दूसरा अभिभूत हो जाता है, जब दो व्यक्तियो के बीच अह की बाधा नहीं रहती है तो वे दोनो ही गुणग्राही बन जाते है।

मेडता की बात है—वहॉ के नरेश मालदेव थे और उनका मत्री था—कल्याणमल। कल्याणमलजी जैन थे। पुराने जमाने मे अधिकाश मत्री प्राय जैन ही होते थे। कल्याणमलजी के अधीन जो मत्री थे, वे भी जैन थे। उनका नाम था—सहस्त्रमल जी। दोनो मे घनिष्ठ मैत्री थी। दोनो ही 12 व्रतधारी श्रावक, तत्त्व-रसिक, जिज्ञासु थे। अष्टमी, चतुर्दशी को पौषध एव अहर्निश सामायिक व्रत की आराधना करते थे। सामायिक मे दोनो जब तत्त्व-चर्चा करते तो उन्हे इतना आनद आता कि 2-3 सामायिक कब हो जाती, समय का पता ही नहीं चलता। कभी-कभी तत्त्वचर्चा के मध्य विवाद का प्रसग भी बन जाता था। एक बार उनकी तत्त्वचर्चा मे विवाद उपस्थित हो गया। तत्त्वचर्चा मे सवाद रहे तो आनद आता है पर विवाद कभी-कभी घातक सिद्ध हो जाता है। सहस्त्रमलजी के मन मे तो कुछ नहीं था पर कल्याणमलजी ने गाठ बाध ली। वे सोचने लगे—''इसने अपनी प्रभुता दिखाकर मुझे नीचा दिखाया है। मै इस सहस्त्रमल को मौत के घाट न उतार दू तब तक माथे पर साफा नहीं बाधूगा।''

कल्याणमलजी अपने कृत सकल्पानुसार अब सिर पर साफा नहीं बाधते है। लोगों ने देखा और सोचा—बात क्या है ? आजकल कल्याणमलजी साफा क्यो नहीं बाधते है ? लोगो के मन मे प्रश्न उभरा, पर पूछे—कौन ? इधर कल्याणमलजी मौका ढूंढ रहे थे, वैर की ज्वाला दिन-प्रतिदिन उग्र रूप धारण कर रही थी कि मै अपने अपमान का बदला कैसे चुकाऊ ? छ माह, साल, दो साल निकल गए। सयोग से तीसरे साल चातुर्मास हेतु भाग्यवान संतो का आगमन हुआ। संत ज्ञानी गुणी एव संयमनिष्ठ थे। कल्याणमल जी ने मुनियो के स्वागत एव सम्मान मे कोई कमी नहीं रखी। कल्याणमल जी एवं सहस्त्रमलजी दोनो उपाश्रय मे आते है, सतो की वाणी सुनते है। सामायिक भी करते है, पर आपस मे अब तत्त्वचर्चा नहीं करते है। सहस्त्रमलजी के मन मे कुछ भी नहीं था। वे तो यही सोच रहे थे कि उस दिन जब तत्वचर्चा मे विवाद हो गया तब से ये मेरे से नहीं बोल रहे है। खैर . . मेरे मन मे इनके प्रति कुछ भी नहीं है।

उस जमाने मे लोग खुले सिर नहीं रहते थे। सभी के सिर पर टोपी, पगडी या साफा अवश्य रहता था। केवल श्मशान मे जाते समय सिर खुला रहता था।

हो गए। क्या उनको फिर निकट लिया जा सकता है ? यदि खमत-खामणा करने वाले व्यक्ति के पास इन प्रश्नो का सकारात्मक उत्तर नहीं है तो क्या सब जीवों के प्रति मैत्री का आदर्श खडित नहीं होता है ?

खमत-खामणा का अर्थ है—क्षमा देना और क्षमा लेना। खमत खामणा का सही रूप तभी सामने आता है, जब सहिष्णुता का विकास हो। इसके अभाव मे खमतखामणा का मूल्य शाब्दिक उच्चारण से अधिक कुछ नहीं है। व्यक्ति किसी को शब्दो से क्षमा देता है पर मन में आक्रोश भरा रहता है तो यह क्षमादान है या उसकी विडम्बना है ? व्यक्ति क्षमा मागता है, पर सामने वाले व्यक्ति द्वारा किए गए दुर्व्यवहार को भूलता नहीं है। क्या मन का पूरा सहयोग मिले बिना क्षमा मांगने का प्रयोग सफल हो सकता है ? ऊपर-ऊपर से विश्वात्मा के साथ तादात्म्य की बात और भीतर विरोध की ज्वाला। क्या यह खमतखामणा की सार्थक्ता है ?

कुछ परिवारो मे छोटे-छोटे कारणो को लेकर वैमनस्य हो जाता है, अनबन हो जाती है, आपस मे बोलचाल बंद हो जाती है। उस परिवार के सदस्य क्षमायाचना के दिन खमत-खामणा करने के बाद भी अपने वैमनस्य को नहीं भूलते है, आपस मे एक-दूसरे से नहीं बोलते हैं तो क्या यह खमतखामणा हास्यापद नहीं है ?

सवत्सरी के दिन प्रतिक्रमण कर व्यक्ति चौरासी लाख जीव-योनियों के साथ खमत-खामणा कर लेता है, पर जिनके साथ कुछ अवांछित घटित हुआ है, जिनके प्रति मन मे दुर्भावना है, उनका सामना होने पर व्यक्ति कहता है—आपके साथ कटु-व्यवहार हुआ हो तो खमत-खामणा है। इस कथन का क्या अर्थ है ? साहस तो इतना होना चाहिए कि आपके अमुक व्यवहार से मुझे ठेस पहुची अथवा मेरे व्यवहार से आपको निश्चित रूप से आघात लगा है, पर आज हमे उस प्रसंग से उत्पन्न तनाव को समाप्त करना है, मन हल्का करना है और सदा-सदा के लिए कटुता को भूलकर मैत्री-भाव बढाना है। इस प्रकार अतीत के सम्पूर्ण कालुष्य को धोकर अन्तर्मन से स्वस्थ होना हल्कापन अनुभव करना खमत-खामणा का सही प्रयोजन है।

खमत-खामणा का पर्व धार्मिक लोगों के लिए एक आह्वान है। व्यक्तिगत जीवन मे छोटी-छोटी बातो को लेकर जो गांठे उलझ जाती है उन्हे खोलना आवश्यक है। जब व्यक्ति अपने कृत अपराध के लिए क्षमा मांगता है और दूसरे

को बिना मागे ही क्षमा देता है। इससे व्यक्ति का अह विगलित होकर बह जाता है। एक का अह टूटता है तब दूसरा अभिभूत हो जाता है, जब दो व्यक्तियो के बीच अह की बाधा नहीं रहती है तो वे दोनो ही गुणग्राही बन जाते है।

मेडता की बात है–वहॉ के नरेश मालदेव थे और उनका मत्री था–कल्याणमल। कल्याणमलजी जैन थे। पुराने जमाने मे अधिकाश मत्री प्राय जैन ही होते थे। कल्याणमलजी के अधीन जो मत्री थे, वे भी जैन थे। उनका नाम था–सहस्त्रमल जी। दोनो में घनिष्ठ मैत्री थी। दोनो ही 12 व्रतधारी श्रावक, तत्त्व-रसिक, जिज्ञासु थे। अष्टमी, चतुर्दशी को पौषध एव अहर्निश सामायिक व्रत की आराधना करते थे। सामायिक मे दोनो जब तत्त्व-चर्चा करते तो उन्हे इतना आनद आता कि 2-3 सामायिक कब हो जाती, समय का पता ही नहीं चलता। कभी-कभी तत्त्वचर्चा के मध्य विवाद का प्रसंग भी बन जाता था। एक बार उनकी तत्त्वचर्चा मे विवाद उपस्थित हो गया। तत्त्वचर्चा मे सवाद रहे तो आनद आता है पर विवाद कभी-कभी घातक सिद्ध हो जाता है। सहस्त्रमलजी के मन मे तो कुछ नहीं था पर कल्याणमलजी ने गाठ बाध ली। वे सोचने लगे– ''इसने अपनी प्रभुता दिखाकर मुझे नीचा दिखाया है। मै इस सहस्त्रमल को मौत के घाट न उतार दू तब तक माथे पर साफा नहीं बाधूंगा।''

कल्याणमलजी अपने कृत सकल्पानुसार अब सिर पर साफा नहीं बाधते है। लोगो ने देखा और सोचा–बात क्या है ? आजकल कल्याणमलजी साफा क्यो नहीं बाधते है ? लोगों के मन मे प्रश्न उभरा, पर पूछे–कौन ? इधर कल्याणमलजी मौका ढूंढ रहे थे, वैर की ज्वाला दिन-प्रतिदिन उग्र रूप धारण कर रही थी कि मै अपने अपमान का बदला कैसे चुकाऊं ? छ माह, साल, दो साल निकल गए। सयोग से तीसरे साल चातुर्मास हेतु भाग्यवान संतो का आगमन हुआ। सत ज्ञानी गुणी एवं सयमनिष्ठ थे। कल्याणमल जी ने मुनियो के स्वागत एव सम्मान मे कोई कमी नहीं रखी। कल्याणमल जी एव सहस्त्रमलजी दोनो उपाश्रय मे आते है, सतो की वाणी सुनते है। सामायिक भी करते है, पर आपस मे अब तत्त्वचर्चा नहीं करते है। सहस्त्रमलजी के मन मे कुछ भी नहीं था। वे तो यही सोच रहे थे कि उस दिन जब तत्वचर्चा मे विवाद हो गया तब से ये मेरे से नहीं बोल रहे है। खैर . मेरे मन मे इनके प्रति कुछ भी नहीं हैं।

उस जमाने मे लोग खुले सिर नहीं रहते थे। सभी के सिर पर टोपी, पगडी या साफा अवश्य रहता था। केवल श्मशान मे जाते समय सिर खुला रहता था।

संतों की अमृत प्रवचन धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही थी। कल्याणमल जी धर्म के पुजारी थे। प्रतिदिन यथासमय प्रवचन मे पहुंचते थे। उनका खुला सिर देखकर संत रोज सोचते कि क्या बात है, इतना धर्मनिष्ठ श्रावक मर्यादा का उल्लंघन इस तरह क्यो कर रहा है ? यह सिर क्यों खुला रखता है ? एक बार रात मे प्रतिक्रमण के बाद जब कल्याणमलजी अकेले ही रह गये, सभी चले गये, तब बड़े संत ने कल्याणमलजी को बुलाकर पूछा—आप बडे श्रावक है, राजा के मंत्री है, फिर यह मर्यादा का अतिक्रमण कैसे ? वे भी सुज्ञ श्रावक थे, बोले—गुरुदेव ! आपसे क्या छिपाना। मेरी प्रतिज्ञा है— ''सहस्त्रमलजी के प्राणों का घात न कर दूं, तब तक साफा नहीं बांधूगा।'' गुरुदेव ने उसके वैर की बात सुनकर अनेक प्रकार से उन्हे समझाया। कहा कि ''इस प्रकार का चिंतन मिथ्यात्व दशा मे पहुंचाने वाला है।'' पर कल्याणमलजी पर किंचित् भी असर नहीं हुआ। व्याख्यान में भी भिन्न-भिन्न प्रसंगों से समझाया पर उत्तर यही आया कि ''मैं उनसे खमतखामणा नहीं कर सकता। मेरे भीतर में भारी चुभन है। बिना बदला लिये यह मन शांत नहीं होगा।''

देखिए—स्वधर्मी-वात्सल्य के स्थान पर वे खून के प्यासे बने हुए हैं। उनकी तलवार मौका देख रही है, अपना बदला चुकाने हेतु। पर कभी खून से सना कपडा खून से साफ हो सकता है क्या ? वैर परम्परा बढ़ती रही। कोशिश की गई पर सफलता नहीं मिली।

इधर श्रावण शुक्ला पंचमी—मासखमण के घर का दिन आया। उस दिन सभी धर्मप्रेमी आत्माऐं विशेष आराधना की दृष्टि से तप-त्याग पौषधादि अनुष्ठान में रत थी। कल्याणमल जी ने भी उस दिन पौषध किया था और उपाश्रय में ही विश्राम कर रहे थे। सहस्त्रमलजी ने पौषध नहीं किया, घर पर ही सोये थे। रात्रि के लगभग 1 30 बजे उनकी नींद खुली और फिर नींद नहीं आई। चिन्तन करते-करते बात ध्यान में आई कि—''आज मासखमण के घर का दिन है। कुछ प्राप्त करना चाहिए। गुरु भगवन्तो के चरणों में पहुंचूं और कुछ प्राप्त कर लू। उसी समय उठे और घर से चलकर उपाश्रय में आये। देखा कि गुरुदेव ध्यान कर रहे है। उनके सन्मुख जाकर बैठ गये। ज्योहि गुरुदेव का ध्यान पूर्ण हुआ, अपने सन्मुख किसी को बैठा देख कर पूछा— कौन ? उत्तर मिला—सहस्त्रमल।

अभी इतनी रात्रि में यहाँ कैसे आना हुआ ? ''गुरुदेव ! अचानक नींद खुल गई। सोचा–आज मासखमण के घर का दिन है। गुरुदेव के चरणो मे जाकर कुछ प्राप्त कर लू।''

गुरुदेव गंभीर हो गये। बोले–''सहस्त्रमलजी ! आपके सिर पर नंगी तलवार लटक रही है। अत आपको असमय मे घर से नहीं निकलना चाहिए।''

गुरुदेव ! आप यह क्या फरमा रहे है ? ''हकीकत कह रहा हूँ।'' किसी का अपघात न हो, इसलिए सारी बात स्पष्ट रूप से कह दी। इधर पौषध मे स्थित कल्याणमल जी ने सारी बात सुन ली। उनका आक्रोश अत्यधिक बढ गया। पौषध पूर्ण कर गुरुदेव को ऊलजलूल, जो मुँह मे आया, बहुत सुनाया और फिर घर आ गये। अब कल्याणमलजी के दो शत्रु हो गये। गुरुदेव ने मेरी गुप्त बात क्यो प्रकट कर दी ? मेरी सारी योजना ही विफल कर दी। एक गाठ और लग गई। अब उनका धर्मस्थानक मे आना भी बद हो गया। गुरुदेव को वंदना करना बंद कर दिया।

जब गुरु के साथ वैर बाध लिया तो गणमान्य व्यक्तियो ने उन्हें ऐसा नहीं करने के लिए बहुत समझाया। कहा कि–''कल्याणमलजी ! संतो की आशातना मत करो। पर्वत से माथा टकराये तो खून आये बिना नहीं रहता। यदि कदाचित् खून न भी आये पर संत महापुरुषो की आशातना निश्चित क्षति पहुंचाने वाली होती है।''

दशवैकालिक सूत्र का नौवा अध्ययन गुरु-आशातना के दुष्परिणाम बता रहा है–''देवयोग से सिह के मुंह मे हाथ डालने या अग्नि मे कूदने पर, सिह न भी मारे या अग्नि न भी जलावे किन्तु गुरु की आशातना करने वाले को कभी मोक्ष नहीं मिलता है।''

''न यावि मोक्खो गुरु हीलणाए''

चाहे कितनी ही साधना क्यो न करलो , गुरु की आशातना की गई तो वह साधना मोक्ष के लिए कारगर नहीं होगी।

सभी ने मिलकर कल्याणमलजी को बहुत समझाया पर उन्होने वैर की गाठ दृढतापूर्वक पकड रखी थी।

कल्याणमलजी ने गुरु से वैर बांधा था। इस बात का फायदा उठाने

के लिए अन्य मत के संभ्रात लोग कल्याणमलजी को अपने धर्म में लाने की कोशिश करने लगे। परन्तु कल्याणमलजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि–''**भूखा शेर कभी घास नहीं खाता है।**'' सच्चा तो जिनशासन ही है। अमुक व्यक्ति के साथ मेरी शत्रुता है, धर्म के साथ नहीं। मै शरीर को छोड सकता हूँ, पर धर्म प्रज्ञप्ति को नहीं।'' ''**चइत्तु देहं न तु धम्मसासणं**'' मै आपके धर्म को स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। बिचारे वे व्यक्ति मौन हो गये। जब संत ने सुना तो वे कल्याणमलजी की दृढ श्रद्धा से बहुत प्रसन्न हुए और उनके पास जाकर क्षमायाचना करने का दृढ निश्चय कर लिया।

थोडे दिन के बाद जब पर्युषण के पवित्र दिन आये संत देख रहे थे कि इन पावन दिनो में तो कल्याणमलजी प्रवचन सुनने आएंगे, पर नहीं आये। उन्होने स्थानक में जाना छोड दिया था पर धर्म नहीं छोडा। घर पर ही सामायिक, उपवास, पौषध, संवरादि करते थे। देखते-देखते संवत्सरी भी आ गई, प्रवचन, दोपहर की आलोयणा सब कुछ हो गये, फिर भी श्रावक जी नहीं आये। मुनि ने विचार किया–''मुझे प्रतिक्रमण करना है।'' झोली ली और चल पडे कल्याणमलजी के घर की तरफ, पहुचे उनके घर पर। बच्चो ने मां को आवाज लगाई–''माँ ! महाराज आये है।'' कल्याणमलजी की पत्नी बाहर आई। बोली–''पधारो महाराज !'' महाराज अन्दर आये। कल्याणमलजी अपनी पौषधशाला मे पौषध की अवस्था मे स्वाध्याय कर रहे थे। देखा कि–''संत आये हैं, दरवाजा बंद कर लिया और बोले–''मै इन संत का मुँह भी नहीं देखना चाहता हूँ।''

सामायिक पौषध और स्वाध्याय, फिर भी भीतर में जो वैर की गाठ पडी हुई है, उसे खोलने को तत्पर नहीं।

पत्नी पूछ रही है–महाराज ! आपके अभी पधारने का प्रयोजन ?

संत ने कहा–''कल्याणमलजी से मिलना है।'' कल्याणमलजी कहाँ है ?

खिडकी खुली थी, उनका बच्चा खिडकी से अन्दर गया और अन्दर जाकर दरवाजा खोल दिया। कल्याणमलजी के तो कषाय समुद्घात की स्थिति बनी हुई थी। भयंकर क्रोध से सारा शरीर प्रकम्पित हो रहा था। न खडे हुए और न ही सत की तरफ आँख उठाकर देखा।

सत खडे है, देख रहे है, कल्याणमलजी की क्रोध भरी स्थिति को, अपने अपमान का किंचित् मात्र भी ख्याल न करते हुए वे महापुरुष सबोधन करते हैं–"देवानुप्रिय ! श्रावण शुक्ला पचमी की रात्रि मे जो मेरे निमित्त से आपको ठेस पहुची, मै सवत्सरी प्रतिक्रमण करने का इच्छुक हूँ। प्रतिक्रमण के बाद रात्रि को नहीं आ सकता, अत प्रतिक्रमण के पूर्व ही आत्म-विशुद्धि हेतु आया हूँ। अणगार धर्म को विशुद्ध रखने हेतु क्षमायाचना करता हूँ। आशा करता हूँ कि तुम उदार हृदय से मुझे अवश्य क्षमा कर दोगे। मेरे कोई अन्यथा भाव नहीं थे , सहस्त्रमल की हत्या न हो जाय, इसीलिए सहज-भाव से उन्हे सावधानी दिलायी थी। जिससे आपको ठेस पहुंची, मुझे क्षमा कर दो। क्षमा लिये बिना मै संवत्सरी प्रतिक्रमण करने का अधिकारी नही हूँ।"

देखिए, एक साधु श्रावक से क्षमा मांग रहा है। आगम-वाणी साक्षी है–गौतम स्वामी ने आनद श्रावक से क्षमा मागी थी। क्षमा मागना वीरो का काम है और क्षमा करना भी। महापुरुष क्षमा माग रहे है। कल्याणमलजी मौनपूर्वक सुन रहे है। ज्योहि सत की बात पूरी हुई कल्याणमलजी फफक-फफक कर रो पडे। चरणो मे गिर पडे।

भगवन् ! अपराध आपका नहीं, मेरा है। आपने मेरे भीतर दीपक को जलाने का प्रयत्न किया है। मेरे मन मे टीस थी, आज आपके अमृत-वचनो से दूर हो गई। भगवन् ! मुझ पापी को क्षमा कर दो। भीतर का पूरा दर्द कल्याणमलजी का अश्रुओ के रूप मे बह रहा है। पैर पकड लिये। पश्चात्ताप के अश्रुओ से अपने अन्तर का प्रक्षालन कर रहे है। गुरुदेव खडे है। कल्याणमल जी पूछ रहे है–गुरुदेव ! सहस्त्रमल कहॉ है ?

सत ने कहा–वह धर्मस्थानक मे पौषधव्रत मे स्थित है।

गुरुदेव ! मै भी आपके साथ चलना चाहता हूँ।

अहासुह ! गुरु की आज्ञा प्राप्त कर कल्याणमलजी गुरुदेव के साथ धर्म स्थानक मे आये। तीन साल से सहस्त्रमलजी से क्षमायाचना नहीं की थी। आज सीधे पहुचे सहस्त्रमलजी के पास, उनके चरणों मे झुक गये और कहने लगे–"मै अपराधी हूँ, हत्यारा हूँ, मुझे आप क्षमा करना।"

सहस्त्रमलजी ने कहा—महामत्रीवर ! आप क्या कर रहे हो ? और दोनो एक-दूसरे के गले मिले। राम-भरत सा मिलन देखकर धर्मस्थानक मे

उपस्थित सभी जनो की आंखो में अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। विश्वमैत्री की सध्या अविस्मरणीय बन गई। यही है सच्ची क्षमापना। प्रभु महावीर का फरमाना है–जो क्षमा करता है, वह आराधक है और जो क्षमा नहीं करता है वह विराधक है। दोनो ने परस्पर क्षमायाचना की और पुनः दोनो मे परस्पर प्रगाढ मैत्री संबंध स्थापित हो गया।

हमारी इस आत्मा ने इस लोक में सिर का एक बाल रखने योग्य जगह को भी स्पर्श करने मे बाकी नहीं रखा है। सभी आत्माओ के साथ सभी तरह के सबध कर लिये है, अतः हम किसी जीव के साथ दुश्मनी नहीं रखते हुए सबसे अन्त.करण पूर्वक क्षमायाचना करे।

घाटकोपर चातुर्मास का प्रसंग आचार्य श्री नानेश के चरणो में उपस्थित होकर संघ के सदस्यों ने निवेदन किया–गुरुदेव ! आज संवत्सरी का प्रतिक्रमण 500 व्यक्तियो की उपस्थिति मे करना है। किसी की आवाज इतनी तेज नहीं है कि 500 व्यक्तियो को प्रतिक्रमण सुना सके। अत हम प्रतिक्रमण के समय माईक का प्रयोग करेगे।

गुरुदेव ने फरमाया कि–यह नहीं होगा। आपने विश्वास दिलाया था कि–''आपकी समाचारी के अनुरूप वर्तन होगा। अतः मै तो आपको माईक मे बोलने की आज्ञा नहीं दूंगा। आप किससे आज्ञा लेगे ?''

तब उन्होने कहा–गुरुदेव ! हमारे पास अलग-अलग प्रतिक्रमण कराने वाले नहीं है। हमें प्रतिक्रमण कराने वाले 10 व्यक्ति चाहिए, तब तो आपकी आज्ञा की अनुपालना हो सकती है।

बस उनके मांग करने की देरी थी, उसी समय संघ अध्यक्ष सुश्रावक रत्न श्रीमान् चुन्नीलालजी सा. मेहता और श्रीमान् सुन्दरलालजी कोठारी एक-एक स्थानक मे घूम-घूमकर 1000 व्यक्तियों को प्रतिक्रमण सुना सके ऐसी बुलन्द आवाज वाले, 10 व्यक्तियों का चयन किया, एक-एक हाल में 2-2 व्यक्ति खडे किये गये ताकि एक मंद भी हो जाय तो दूसरा बोलता रहे, किसी को शिकायत का अवसर नहीं मिले। प्रतिक्रमण पूरा होने पर सभी प्रसन्न मुद्रा मे आचार्य भगवन् के समीप उपस्थित हुए और बोले–''गुरुदेव ! आज हमें प्रतिक्रमण का जो आनंद आया, वह अपूर्व ही था। ऐसा लग रहा था कि शहर के वातावरण से बहुत दूर, शांत-एकांत में अपना धर्मानुष्ठान कर

रहे है।''

व्याख्यान के दौरान आचार्य श्रीजी ने इस विषयक मीमासा करते हुए फरमाया–हम ''खामेमि सव्वे जीवा'' की पाटी प्रतिक्रमण मे बोलते है। एक तरफ तो सब जीवो से क्षमा चाहते है और दूसरी तरफ उसी क्षण उनको मार रहे है तो यह कैसी क्षमा ? यह तो कुंभकार वाला मिच्छामि दुक्कड होगा।

घडा तो फिर भी निर्जीव है पर यहॉ तो साक्षात् ध्वनिवर्धक यत्र से तेउकाय के जीवों की हिसा होती है, फिर माईक मे बोलकर हम सभी को अभयदान, क्षमादान कैसे दे पायेगे ? मानवता एवं नैतिकता के सरक्षण हेतु हमे प्रतिज्ञा मे मौजूद रहना अति आवश्यक है। ध्वनिवर्धक यत्र के विषय में आयुर्वेद संस्थान ने शोध किया है कि इससे भी प्रदूषण होता है और वह प्रदूषण बडा घातक होता है। उसका यह प्रभाव होगा कि ''आने वाली 7वीं पीढी बहरी होगी। क्या आने वाली पीढी को यही उपहार देगे हम ?''

आज लोग तर्क देते है कि–''युग बदल रहा है, युग के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। इत्यादि लेकिन ये थोथी तर्के है। ''युग बदला किसने ?'' इंसान ने ही तो ? और युग बदल गया तो क्या ऑख, नाक, कान का स्थान भी बदल गया क्या ?

हम क्षमा की बात कर रहे है ? सयतिराजा गुरु-चरणो मे खडे अभय मांग रहे है। मुनि कह रहे हैं–राजन् ! तुम अभय चाहते हो तो सभी को अभयदान दो, क्षमादान दो।

हमें प्रतिक्रमण इस तरह करना है कि हमारी आत्मा भावित बने, हृदय गुण सिधु बने। अपने भूले भटके मन को सभाले। आक्रोश, किसी दूसरे का नहीं, स्वय का हनन करता है। यह सोचकर मन के रोष का निवारण करे तो आत्महित-परहित दोनो एक साथ सध जाते है।

क्षमा का आदान-प्रदान सही रूप में हुआ या नहीं, इसका मापदड दूसरा नहीं, व्यक्ति स्वयं होता है। खमतखामणा करने के बाद मन हल्का हो जाय। चित्त आह्लाद से भर जाए और भीतर का शल्य निकल जाय तो जान लेना चाहिए कि खमतखामणा हो गया। ऐसा करने वाला व्यक्ति सबका मित्र बन जाता है। दूसरा कोई उसका मित्र बने या नहीं बने, उसके मन मे किसी

के प्रति शत्रुता का भाव नहीं रहता। मैत्री होने के बाद उत्तरोत्तर भाव-विशुद्धि होती रहती है।

खमतखामणा के व्यावहारिक रूप को अभिव्यक्ति देते हुए आगमों में बताया गया है–

खामेमि णं देवाणुप्पिया !

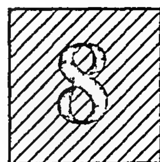
खमंतु णं देवाणुप्पिया !

खमंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया !

देवानुप्रिय ! मै आपसे क्षमायाचना करता हूँ। आप मुझे क्षमा करें क्योकि आप क्षमा करने मे समर्थ है। सामर्थ्य के अभाव मे क्षमा का आदान-प्रदान करना संभव नहीं है। जिस समय खमतखामणा का व्यावहारिक रूप सामने आता है, मन, वाणी और शरीर एकीभूत हो जाते है। मानसिक, वाचिक और कायिक सरलता इसकी निष्पत्ति है। एक बार ग्रथि-मोचन करने के बाद "**बीयं तं न समायरे**" अपनी ओर से दूसरी बार ग्रंथिपात का अवसर ही न उपस्थित होने दे, यह खमतखामणा की पूर्णता है। क्षमावान वह होता है, जो अतीत को विस्मृत करता है, वर्तमान की चिन्तनधारा बदलता है और भविष्य मे किसी प्रकार की छलना न करने के लिए संकल्पित होता है।

यह खमतखामणा का पर्व कितना अद्‌भुत है ! कितना मांगलिक है। कितना महान् है और कितना उपयोगी है। इस दिन मन की ग्रथियॉ न खुले तो सम्यक्त्व की सुरक्षा मुश्किल हो जाती है। सम्यक्त्व एक अनमोल रत्न है। मन की पवित्रता इसकी सुरक्षा-मंजूषा है। जिस प्रकार साधारण पात्र में सिंहनी का दूध नहीं टिकता है, ठीक वैसे ही कलुषित मनोभूमि मे सम्यक्त्व रत्न नहीं रह सकता। इस रत्न की सुरक्षा हेतु आपके मन में स्थान है या नहीं ? यह देखने के लिए पर्युषण महापर्व एक आईना है। इस आईने मे झाककर मन की कलुषता को धोना महापर्व को मनाने की सार्थकता है। पर्युषण पर्व या संवत्सरी महापर्व की आराधना अच्छी तरह हुई या नहीं ? इसका मापदंड है–खमतखामणा का पर्व। अन्त करण की प्रत्येक ग्रंथि को खोलकर भीतर तक चुभे हुए शल्यो को निकाल कर जीवन को आराधना की दिशा देने वाला, उसे प्रसन्नता से आप्लावित करने वाला यह क्षमा-पर्व विश्व शाति का प्रतीक बन सकता है।

***



विजयादशमी

आज विजयादशमी है, आज जहाँ भी देखो, करीब-करीब भारत मे सभी जगह रावण का पुतला बनाकर जलाने की प्रक्रिया दिखलाई जाती है। यह सब अनीति दुराचार की फजीहत है। कुछ लोगों की मान्यता है कि आज के दिन पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी महाराज ने दुराचार से युद्ध छेडा था। कुछ लोग मानते है कि आज के दिन युद्ध की पूर्णाहुति हुई थी। रामचन्द्र जी ने रावण पर विजय प्राप्त की थी। दोनो मे से कोई भी बात सत्य हो, पर यह निश्चित है कि आज का दिन अनीति दुराचार की फजीहत की कहानी सुनाता है।

जब रावण सही राह पर चलता था, सदाचार की मर्यादा मे था, तब उसने अर्द्ध-भरत पर विजय प्राप्त की थी। सैकडो राजा उसके चरणो मे झुकते थे। हजारों व्यक्ति उसकी कृपा चाहते थे। उस समय वह जहाँ जाता, विजयमाला उसका स्वागत करती थी। वह विजयवत नीतिवान रावण राम से क्यो हार गया ? कारण सदाचार की सीमा का अतिक्रमण। जिस दिन सदाचार की सीमा का अतिक्रमण हुआ, उसके दिन बदल गये। दूसरे तो क्या उसका सगा भाई विभीषण भी उसको छोड कर चला गया। जब रावण नीति और सदाचार की मर्यादा में था, तब वह चारित्र का कितना निर्मल था।

एक प्रसग दिग्विजय के समय का—जब रावण के मन मे दिग्विजय करके महान् सम्राट बनने का भाव जगा, तब अनेक देशो पर विजय प्राप्त करता हुआ अलका नगरी पहुंचा। अलकानगरी का राजा नलकुबेर था। उन्होने आसालिका विद्या से नगरी के चारो और सौ योजन पर्यन्त अग्निमय किला बना रखा था, उसमे ऐसे यत्र लगा रखे थे कि जिनसे आकाश मे अग्नि की चिनगारिया निकलती हुई दिखाई देती थी। जिससे सेना का अन्दर प्रवेश अशक्य था। तीनो भ्राताओ मे विचार-विमर्श चल रहा था कि ''क्या करना चाहिए'' तभी एक दूती ने सैनिको से आज्ञा लेकर उनके शिविर मे प्रवेश

किया। आने का प्रयोजन और परिचय पूछने पर उसने बताया कि– ''राक्षसपति ! मै नलकुबेर की पत्नी उपरम्भा की निजी दासी हूॅ। उनके हृदय मे आपकी शूरवीरता एवं पराक्रम के बारे मे सुनकर आपके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया, उन्होंने आपको देने के लिए यह पत्र भेजा है।' पत्र मे उन्होने लिखा है कि आप मुझे अपनी रानी बनायें तो मै आपको ऐसा मंत्र बताऊगी, जिससे अग्नि किला शीतलता में बदल जायेगा।

रावण कुछ बोले उससे पूर्व ही विभीषण ने कह दिया–ऐसा ही होगा। दासी प्रसन्न मन चली गई। इधर रावण विभीषण पर बरस पड़े–''अरे तुमने यह कुल विरूद्ध कार्य कैसे स्वीकार कर लिया ? हमारे कुल मे किसी ने भी परस्त्री का मन मे भी ध्यान नहीं किया। तुमने आज राक्षस कुल को कलंकित कर दिया। मुझे भीख मांगकर खाना पडे, लंका छोडनी पडे और जंगलों मे भी रहना पडे तो मुझे स्वीकार है। पर मै चारित्र बेचने को तैयार नहीं हूॅ।'' यह था रावण का सयम और चारित्र के प्रति निष्ठा। विभीषण ने विनम्रतापूर्वक कहा–मेरी बात आप शांतचित्त होकर सुन लीजिए–शुद्ध मन वालों के लिए धर्म विरूद्ध वचन नीति होते हैं, अधर्म नहीं। राक्षस कुल को कलंक तो अधर्म सेवन से लगेगा। पहले आप अपना कार्य सिद्ध कीजिए, फिर उसके बाद उपरम्भा को संबोध दीजिए। अधर्म सेवन से इन्कार कर दीजियेगा। यह तो आपके हाथ की बात है। कोई बलात्कार थोडे ही कर लेगी वह। रावण का कोप शांत हो गया और विभीषण की बात स्वीकार कर ली। तब तक कामांध बनी महारानी उपरम्भा वहॉ आ पहुॅची और आसालिका विद्या रावण को सीखा दी और अनेक व्यतर देवो से रक्षित अमोघ अस्त्र भी दिये। रावण ने अग्नि शांत की और विभीषण ने नल कुबेर को युद्ध करके बदी बना लिया। वहॉ से रावण को सुर-असुरो से अजेय सुदर्शन चक्र भी प्राप्त हो गया। अव उपरम्भा ने अपनी इच्छा पूर्ति की अभिलाषा प्रकट की। रावण ने नीतिपूर्ण गंभीर शब्दो मे समझाया–''देवी ! तुम तो मेरी गुरु हो, माता हो।''

रानी ने उपालम्भ देते हुए कहा–''दशानन ! तुम शक्ति पाकर चाल चल रहे हो। वचन से मुकर रहे हो।''

दशानन ने मधुर शब्दो में कहा–''रानी ! जब मैंने स्वीकृति दी, तव तुम्हारा मेरा कोई सबंध नहीं था। पर अब तुमने मुझे विद्या सिखाई है, अत तुम मेरी गुरु बन गई हो। मै तुम्हारा शिष्य बन गया हूॅ। गुरु के साथ काम-

सबध धर्म और नीति दोनो के विरूद्ध है। अत. अकरणीय है। उपरम्भा इस युक्ति का प्रतिकार नहीं कर पाई और हाथ मलती रह गई। **यह है रावण की चारित्र निष्ठा का परिचय।** यही रावण राम के समक्ष हार गया। इसका यही कारण था जब राम के साथ युद्ध हुआ तब उसके मन मे इतनी पवित्रता नहीं थी। विषय-वासना से उसका मन मलीन बना हुआ था। रावण ने सीता का अपहरण किया था और उसे लका मे लाकर अपने महलो मे नहीं, अपितु अशोक वाटिका में रखा। उसकी परिचर्या के लिए दासिया भी रखी हुई थी। रावण प्रतिदिन आता और सीता को अपनी बात मानने का आग्रह करता और सीता उसे दुराचारी लम्पट आदि कहकर दुत्कार देती थी। ऐसी स्थिति में रावण वापस चला जाता है कितु कभी भी सीता पर बलात्कार करने की कोशिश नहीं की, फिर भी रावण को अपमानित होना पडा और आज तक होना पड रहा है।

आज का इन्सान विजयादशमी के दिन मेले मे रावण को जलाने से पूर्व जरा अपने-अपने गिरेबान मे झाककर देखे कि कहीं उसके भीतर ही रावण तो नहीं पनप रहा है जो आज सीता-सावित्री जैसी महिलाओ पर कुविचार-कुवासना डाल रहा हो या किसी के साथ बलात्कार, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन जैसे कुकृत्यो में लिप्त हो। यदि इन्सान की ऐसी स्थिति बनी हुई है तो उसे क्या अधिकार है कि वह बाहरी रावण को जलाने के लिए जाए। क्या यही अच्छा हो कि वह अपने भीतरी रावण को समाप्त करने के लिए राम को जाग्रत करे। राम की व्युत्पत्ति करते हुए बतलाया गया है कि "**रमन्ते योगिनः अस्मिन् इति रामः।**" जो अपने आप मे रमण कर रहे है, वह राम है। आज के इन्सान स्व मे कम पर मे अधिक रमण कर रहे है। यही वजह है भीतर का राम जाग्रत नहीं हो पा रहा है। जिनवाणी सुनकर अपने भीतर रहे हुए राम को जागृत करे और मिथ्यात्व मोह रूपी रावण पर विजय प्राप्त करे।

अयोध्या के राम के पास धर्म न्यायनीति एव सदाचार का अगाध बल था, अत महान् समृद्धिशाली बलवान् रावण पर तथा आसुरी प्रकृतियो पर राम ने विजय प्राप्त कर ली। ज्ञानी जन कह रहे हैं–आज इस विजयादशमी के दिन आप भी सकल्पित बने कि हमे आत्म-शत्रुओ पर विजय प्राप्त करना है। बाहरी शत्रुओ पर तो इस जीव ने बहुत बार विजय प्राप्त की है परन्तु आभ्यन्तर विजय नहीं पाई है। यह अनूल्य मानव भव प्राप्त

करके धर्म पर अविचल श्रद्धा रखते हुए सम्यग्दर्शन द्वारा मोह और मिथ्यात्व रूपी अंधकार को दूर करके समस्त कर्म रिपुओं पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची विजय है।

आध्यात्मिक लंका नगरी का राजपरिवार—आध्यात्मिक क्षेत्र मे लालच रूपी लका है, उसमे महामोह रूपी रत्नश्रवा राज्य कर रहा है। क्लेश रूपी कैकसी रानी है। उसका मिथ्यात्व मोहनीय रावण ज्येष्ठ पुत्र है। इस प्रकार के मिथ्यात्व रूपी जिसके दस मुँह है। बीस आश्रव रूपी बीस भुजाए है। सम्यक्त्व मोहनीय रूप दूसरा पुत्र विभीषण है। विभीषण न्याय मार्ग पर चलने वाला था। जब रावण भान भूल गया। महामोह मे फस गया, तब विभीषण ने कहा—भैया ! पर स्त्री का हरण कर लाना महान पाप है। यह तुम्हे शोभा नहीं देता। अभी भी आप सीता को राम के हाथ सौप देगे तो श्रेयस्कर होगा अन्यथा आपका विनाश नजदीक है, पर रावण ने इस सचाई को स्वीकार नहीं किया अत मे रावण सहित लका राख हो गई। इसी प्रकार सम्यक्त्व मोहनीय जीव को सत्कर्म करने की, सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है, परन्तु मिथ्यात्व मोह के कारण जीव को सही समझ नहीं आती। तीसरा भाई कुभकरण मिश्र मोहनीय जैसा है क्योकि मिश्र मोहनीय के उदय से जैसे, जीव सही गलत का निर्णय नहीं कर पाता है, वैसे ही कुभकरण में सही गलत का निर्णय करने की क्षमता नहीं थी। रावण की पत्नी मन्दोदरी माया स्वरूपा है। रावण के भी दो पुत्र है—एक विषय और दूसरा अहंकार। रावण की एक बहिन थी—जिसका नाम शूर्पणखा था। कहा जाता है कि इसी शूपर्णखा ने रावण को कुबुद्धि दी थी। रावण को कैसे भरमाया था क्या आप जानते हो ?

सूर्यहंस खड्ग के लिए शंबूक की साधना—शंबूक शूपर्णखा का पुत्र था, एक बार उसने अपने मामा रावण के पास सूर्यहंस नामक खड्ग देखा, उसे देखकर प्राप्त करने की इच्छा बलवती हो उठी। घर पर आकर माता-पिता के सन्मुख अपनी इच्छा प्रकट की। शूपर्णखा ने कहा—बेटा ! तेरे मामा प्रतिवासुदेव है। अत उन्हे वह खड्ग सहज ही प्राप्त हो गया है, लेकिन तुझे उसे प्राप्त करने के लिए 12 वर्ष तक एकासना करके उल्टे मस्तक लटकना पडेगा। अत· हमे खड्ग की क्या जरूरत है ? परन्तु शंबूक नहीं माना और सूर्यहस खड्ग के लिए जंगल मे चला गया। घनी झाडी मे उल्टे लटककर

साधना करने लगा। उसकी माता शूपर्णखा रोज उसे खाना खिलाने आती थी। जब व्यक्ति को किसी चीज की तीव्र लगन लग जाती है तो उसमे उसे थकान का एहसास नही होता। शबूक की 12 वर्ष की साधना पूर्ण होने आयी और इधर दशरथ की आज्ञा से राम सीता एव लक्ष्मण वनवास मे पर्णकुटी बनाकर रह रहे थे। शबूक की साधना का अतिम दिन था, उसकी साधना से सूर्यहस खड्ग आ पहुँचा था। बहुत ही तेजयुक्त और चमकदार था। उस दिन सयोग से लक्ष्मण जी उस ओर घूमते हुए आ पहुँचे और उनकी दृष्टि उस खड्ग पर पडी। लक्ष्मण ने सोचा–क्या चमक रहा है ? चलो देखू तो सही, उसे उठाने के लिए हाथ बढाया। लक्ष्मण वासुदेव थे, इसलिए उनके हाथ बढाते ही खड्ग उनके हाथ मे आ गई। खड्ग हाथ मे लेने के बाद उनके मन मे विचार आया कि इतना तेजस्वी खड्ग है, पर चलने मे कैसा है ? यह तो देखू जरा और उस खड्ग से सामने वाली घनी झाडी पर झटका लगाया, झटका लगते ही अन्दर शबूक उल्टा लटके हुए साधना कर रहा था, उसका सिर कट गया। जब खड्ग को रक्त सिचित देखा तो लक्ष्मण का कलेजा धक् सा रह गया। झाडी के अन्दर देखा तो ऊपर पैर बधे थे और मस्तक कटा हुआ नीचे पडा था। यह देखकर लक्ष्मण सारी वस्तुस्थिति समझ गया।

अहो, जो इस खड्ग को प्राप्त करने की साधना कर रहा था, उसकी साधना की आज पूर्णाहूति थी, इसीलिए खड्ग यहाँ आकर पडा था और मैने उसके प्राण ले लिये। बहुत पश्चात्ताप होने लगा। मुझ पापी ने यह क्या किया ? क्यो यहाँ आ पहुँचा ? आँखो से पश्चात्ताप के आँसू बह रहे है। इतने में शूपर्णखा अपने पुत्र को खाना खिलाने आ पहुँची। पुत्र की यह मृत हालत देखकर रोने लगी और पूछा कि किसने मेरे पुत्र को मारा ? लक्ष्मण ने उत्तर दिया–"बहिन ! अनजाने मे मेरे हाथों से तेरे पुत्र की मृत्यु हुई है, आप मुझे माफ कर दे, बहुत बडा अपराध हो गया मेरे हाथ से।" लक्ष्मण ने जितनी विनम्रता से क्षमा मागी, शूपर्णखा का क्रोध उतना ही बढता गया। तुरन्त घर आकर अपने पति देव एवं देवर से कहती है–धिक्कार है तुम्हारे राज्य पद को, आपके राज्य मे ऐसा अधेर चलता है। मेरा एकलौता पुत्र शबूक का लक्ष्मण के हाथो वध हुआ है। इतना कहकर वह करुण क्रन्दन करने लगती है। तब उसके पति तथा दोनों देवर खर-दूषण और त्रिशरा तीनो भाई हथियार लेकर लक्ष्मण पर चढाई कर देते है। परन्तु लक्ष्मण तो वासुदेव थे। बहुत बलवान

थे, अत: अपने पराक्रम से तीनो भाइयों को मार देते हैं। पुत्र, पति एवं दोनो देवर, इनके मृत कलवेर के साथ शूर्पणखा उदास बैठी थी, तभी अचानक उसने लक्ष्मण की ओर देखा और उसके रूप पर मुग्ध हो गई तथा बोली– 'मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ, आप मुझे स्वीकार कीजिए।'' लक्ष्मण ने कहा–'यह आप क्या कह रही हैं ?' इस दु:ख की घडी में आप विवाह की बात कर रही है, मै तो आपका दुश्मन हूँ। दुश्मन के प्रति आपके मन मे ये भाव कैसे ? और भी आप तो मेरी माता एवं भाभी के समान है। मेरे बड़े भैया यही रहते है, यदि आपको विवाह करना ही है तो उनसे प्रार्थना कीजिए। मै आपसे विवाह नहीं कर सकता।'' शूपर्णखा अपनी इच्छा पूर्ण न होने पर क्रोधावेश में प्रतिशोध कीं भावना से रावण के पास पहुँची। उस कुमति रूप शूपर्णखा ने सुमति रूपी सीता की बहुत प्रशंसा की और कहा– ''भैया ! तेरे अन्तपुर में भाभी मन्दोदरी कितनी ही सुन्दर है, पर सीता जैसी नहीं है। वह हो तो तुम्हारा अन्त:पुर सुशोभित हो जाये। बस इतना सा कथन पर्याप्त था। पूर्व भव के राग संस्कार जागृत हो उठे। सीता को अपने महलो मे लाने का दृढ संकल्प किया और जोगी का वेष बनाकर कपट से सीताजी को उठाकर लंका में ले गया। इस प्रकार कुमति रूपी शूपर्णखा ने मिथ्यात्व मोहनीय रूपी रावण को उकसाया, सारा परिवार का उच्छेद कराया। युद्ध में रावण की मृत्यु हुई, इसके साथ ही सारी लंका नष्ट हो गई। हमारी आध्यात्मिक नगरी मे भी ये शत्रु इसी कदर हमारी नगरी को नष्ट करने पर तुले हुए है। आज इस दिवस से प्रेरणा लेकर इन समस्त शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने के लिए हमे प्रशस्त कदम उठाना है। एतदर्थ महाराज दशरथ के आध्यात्मिक परिवार का समावेश हमारे जीवन में करना होगा। धर्मरूपी राम दशविद्य यति धर्म रूपी दशरथ एवं संवर रूपी कौशल्या से जन्म को प्राप्त कर सत्य रूपी लक्ष्मण के साथ हमारे जीवन में प्रवेश पा जाये। साथ ही सुमति रूपी सीता का सहवास मिल जाये तो धर्म सत्य और सुमति से मोक्ष प्राप्त होते कोई देर नहीं लगेगी।

***

9

प्रकाश-पर्व –दीपमालिका

भारतीय सस्कृति मे पर्वो, त्योहारो की एक महान् परम्परा रही है। इस परम्परा का अपना इतिहास है, महत्त्व है और उपयोग है। कभी-कभी इसका इतिहास समय की सघन परतो के नीचे दब जाता है, फिर भी पर्व का महत्त्व कम नहीं होता। परम्परा एक ऐसी कडी है जो उसे लोक पर्व के रूप मे प्रतिष्ठित कर देती है।

दीपावली एक ऐसा पर्व है, जो अन्य पर्वो से विलक्षण है और लोक-जीवन को खुशियों से सराबोर कर देता है। हमारे परम-पिता परमेश्वर प्रभु महावीर कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पिछली रात्रि को मोक्ष पधारे थे और प्रभु के प्रथम शिष्य गणधर गौतम स्वामी ने केवलज्ञान का दीपक प्रज्वलित किया। इसलिए दीपमालिका के ये दिन काफी महत्त्वपूर्ण है। धनतेरस, रूप चउदस, दिवाली, नया वर्ष और भाईदूज–इस प्रकार पच दिवसीय यह त्यौहार है।

धन-तेरस के दिन भरत-चक्रवर्ती को छह खड का राजा बनाने के लिए उनकी आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था। ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त हुआ इसकी बधाई भी भरत महाराज को धन-तेरस के दिन ही मिली थी और पुत्र रत्न की बधाई भी मिली थी। रूप-चउदस के दिन रामचन्द्र जी ने रावण की आसुरी प्रकृति पर विजय प्राप्त कर अयोध्या नगरी में प्रवेश किया था। दिवाली की रात मे प्रभु महावीर ने निर्वाण और गौतम स्वामी ने केवलज्ञान पाया था। अत नववर्ष कार्तिक शुक्ला एकम को भगवान् का निर्वाण महोत्सव एवं गौतम स्वामी का केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिए इन्द्र, देव और मनुष्य आये थे। इसलिए पावापुरी मे लोग समा नहीं रहे थे। एक तरफ गौतम स्वामी के केवलज्ञान महोत्सव का आनंद था तो दूसरी तरफ भगवान् महावीर के मोक्ष पधारने से भरत क्षेत्र मे तीर्थंकर का वियोग हुआ

अत: शोक छा गया था। इसलिए यह अलौकिक दिन है। प्रभु के निर्वाण हो जाने पर उनके बडे भाई नंदीवर्धन को बहुत आघात लगा। इस आघात को शात करने के लिए बहिन सुदर्शना भाई नदीवर्धन के घर जाती है। अत: इसे भैया-दूज के रूप मे मनाया जाता है। ये पांचों ही दिन मांगलिक रूप है। इसलिए इन दिनो मे जितना सभव हो, धर्मसाधना करनी चाहिए।

भगवान् महावीर ने दीक्षा लेने के बाद कुल बयालीस चातुर्मास किये थे। जैसे कवि की भाषा मे–

अस्थि, वाणिज्य, आलम्बिका सावत्थी नगरी जाणो
अनार्य देश अपापानगरी, पावापुरी पहिचाणो
एक-एक चौमास जी, षट् मिथिला में खास जी,
दो भद्रिका तीन विशाला, दश चम्पा में सुहाया जी।
अंतिम चौमासा वीर-प्रभु ने, पावापुरी फरमाया,
पावापुरी फरमाया, हस्तीपाल का भाग्य सवाया जी॥टेर॥

अतिम चातुर्मास प्रभु का पावापुरी मे हस्तीपाल नरेश की शाला मे हुआ था। वह भूमि कितनी पावन थी, जहाँ हस्तीपाल नरेश की विनंति स्वीकृत हुई। जहॉ अहर्निश गौतमादि संत, चन्दनबाला आदि साध्वियॉ, श्रावक और श्राविकाए प्रभु की अमृतवाणी का पान कर रहे थे। भगवान् के मोक्ष पधारने के दिन नजदीक आये जानकर नौमल्ली और नौलिच्छवी नरेश भी पावापुरी प्रभु के चरणो मे आये।

आप सोच रहे होंगे–पंच दिवसीय दीपमालिका त्यौहार का प्रथम दिवस धन-तेरस के रूप मे क्यों मनाया जाता है ? इसका नाम धनतेरस क्यों पडा ?

गौशालक के द्वारा भगवान् को मारने के लिए छोडी गई लेश्या से स्वय पराभूत हुए गौशालक ने क्रुद्ध होकर भगवान् महावीर को जब इस प्रकार कहा कि–''आयुष्मान् काश्यप ! तुम मेरी तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत हो पित्त ज्वर से ग्रस्त शरीर वाले होकर छह मास के अन्त में छद्मस्थावस्था में ही काल कर जाओगे। तब प्रभु महावीर के मुखारविन्द से ये शब्द निसृत हुए कि–''हे गौशालक ! तेरी तेजोलेश्या मुझे जला नहीं सकेगी। मै इस पृथ्वी पर अभी सोलह वर्ष तक गधहस्ती सम विचरण करूगा। परन्तु तुम अपनी तेजोलेश्या से पराभव को प्राप्त कर आज से सातवें दिन मृत्यु को प्राप्त हो

जाओगे। वहाँ जो उपस्थित थे, उन सबने ये शब्द याद रखे क्योकि सभी को दृढ विश्वास था कि भगवान् तो केवलज्ञानी है उनके मुखारविन्द से उच्चरित शब्द सत्य है। अत सभी को मालूम था कि भगवान् का पावापुरी मे यह अंतिम चातुर्मास है। इसलिए सभी प्रभु के चरणो मे पहुचने लगे। उस अवसर पर नौमल्ली और नौ लिच्छवी इन अठारह देशो के राजा अपने परिवार सहित रूप चउदस और अमावस का पौषध करने पावापुरी आये। ये सब राजा भगवान महावीर के परम भक्त थे। उन्होने एक दूसरे को समाचार देकर निर्णय किया कि–"हम सब पावापुरी के द्वार पर जाकर खडे रहेंगे, सभी के एकत्रित होने पर ही एक साथ प्रवेश करेगे।" उनमे कितना संगठन था, कितनी एकता थी। आज तो स्वधर्मी की सेवा घट गई है और धन की सेवा बढ गई है।

ये अठारह देश के राजा अपने परिवार के साथ हाथी, घोडे आदि लेकर आये तो बहुत अधिक मनुष्यो की भीड और उनकी आवाज होना स्वाभाविक है। जिस समय वे पावापुरी मे प्रवेश कर रहे थे, उस समय गायो का घण (झुण्ड) जो जगल मे चरने गया था वह लौट रहा था। गाव मे इतनी भीड देखकर गाये भडक गई और इधर-उधर भागने लगीं। गायो के घण मे भाग दौड मच जाने से इस दिन का नाम घणतेरस पडा। परन्तु लोगो को धन अधिक प्रिय होने से वे घणतेरस को धनतेरस के नाम से पुकारने लग गये।

आज आप सभी धन की पूजा करते है, पर याद रखिए धन की पूजा करने से, धन को धोने से धन नहीं मिलता है, पर धन मिलता है धन का सदुपयोग करने से। यथाशक्ति गरीबो के आसू पौछने से। इन दिनो मे धनिको के घर मिठाइयाँ बनती है जबकि गरीबो के घर घी तो क्या तेल भी नहीं होता है, ऐसे दिनो मे गरीबो के आसू पौछकर उन्हें सहयोग करके धन को सार्थक करना चाहिए। तभी धन-तेरस का त्यौहार मनाना सार्थक हो सकता है।

धन-तेरस से ही दीपमालिका के त्यौहार की शुरुआत हो जाती है। पर अफसोस है यह त्यौहार आध्यात्मिकता से परे हट भौतिक बनता जा रहा है। यह दिवाली कईयो को हंसा रही है तो कईयो को रूला भी रही है।

श्रीमंतो के घरो मे मिठाइयाँ बनती है। पटाको के पैकेट, मिठाइयो के डिब्बे लाये जाते है। घर के सभी सदस्य अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहनते है और दिवाली मनाते है। पर बिचारे गरीबों के बच्चे, धनवानो के घर मिठाइयाँ देखकर ललचाते है। घर जाकर माँ-बाप को तंग करते है। बिचारे वे गरीब

मॉ-बाप कैसे एवं कहॉ से उनके अरमानो की पूर्ति करे, पूर्ति के अभाव मे वे बच्चे कैसे रोते हैं और उनके मॉ-बाप का क्या हाल होता है। सुनिये एक सत्य घटित प्रसंग–

एक ही मां की कुक्षी से जन्मे दो सगे भाई, परस्पर दूध-मिश्री सदृश प्रेम। एक के अभाव में एक नहीं जीमता। इतना अटूट प्रेम। दोनों बडे हुए; माता-पिता ने बडे घर की कन्याओं के साथ अपने दोनों लाडलों की शादी कर दी और थोडे दिन बाद माता-पिता दोनो परलोकवासी हो गए। दोनो भाइयो का अद्‌भुत प्रेम देखकर माता-पिता दोनों बडी संतोषजनक स्थिति से परलोक के यात्री बने पर अब इधर थोडे ही दिनो बाद दोनो भाइयो की पत्नियों के बीच परस्पर विवाद होने लगा। छोटी-छोटी बातों को लेकर वे दोनों जेठानी-देवरानी, राई और मैथी की तरह तडतड करने लगी। दोनो भाइयो के बीच तो बहुत प्रेम था पर पत्नियों के झगडे से परेशान होकर दोनो भाई अलग-अलग हो गये। जब तक सब शामिल रहते है तब तक यह निर्णय नहीं हो पाता कि ''कौन किसके पुण्य का खा रहा है ? यदि किसी एक इंसान की पुण्यवानी प्रबल होती है तो उससे सारा कुटुम्ब शांति से चलता है। लेकिन जब वह इंसान चला जाता है तो सारा घर ही उजड जाता है। फिर पता चलता है कि ''अमुक के पुण्य से घर आबाद था।''

ऐसा ही हुआ। ज्योंहि दोनो भाई अलग-अलग हुए। थोड़े ही समय में छोटे भाई की सम्पूर्ण लक्ष्मी चली गई। ऐसा दीन-हीन-गरीब बना कि शहर छोडकर खेडे मे जाकर एक छोटी सी झोपडी बांधकर उसमें रहने लगा। खेती मे कठोर परिश्रम कर, अनाज के बोरे कंधे पर लादकर बाजार मे जाता और उसे बेचकर जो कुछ मिलता उससे सुबह शाम का भोजन नसीब कर पाता। वह अकेला तो था नहीं घर में पूरे पांच सदस्य थे। उसकी पत्नी, दो लडके, एक लड़की।

इन्हीं दुःखी दिनों में दिवाली का त्यौहार आया। तन पर पहने हुए कपड़े सभी फट गये, पर जहॉ खाने का भी भोजन बराबर जुट नहीं पाता, वहॉ कपडे किससे खरीदे ? कर्मो की बडी विचित्रता है। वह बडा भाई जो पुण्यात्मा है, उसके घर लक्ष्मी का पूर आया हुआ है। व्यापार धनाधन चल रहा है, किंचित मात्र भी उसे फुर्सत नहीं है। दिवाली के दिन, सभी घरों मे मिठाइयां बन रही है। मिठाइयों की दुकानो से मिठाइयां खरीदकर डिब्बे के

डिब्बे लोग अपने घर ले जा रहे है। उस छोटे भाई के बच्चे पडौसी के यहॉ मिठाइयॉ देखते है। देखते है कि वे बचे अच्छे-अच्छे कपड़े पहने हुए है तो घर आकर मॉ-पिताजी से कहते है–''बापूजी सभी के घरो मे बरफी, पेडे, गुलाब-जामुन आदि बहुत सी मिठाइया है, अपने घर मे क्यों नहीं है ? सभी अच्छे-अच्छे कपडे पहनकर घूमने जा रहे है। अपने अच्छे कपडे क्यो नहीं है ? बापूजी ! हमे भी मिठाई चाहिए, अच्छे कपडे पहिनने को चाहिये। इस प्रकार बार-बार मिठाई और कपडे की रट लगाकर तग करने लगे। उस समय छोटे भाई को बहुत दु ख हुआ। गत वर्ष की दिवाली का आनद आंखो के सामने नाचने लगा। मैंने बचपन में दिवाली के त्यौहार कितनी मौज-शौक की पूर्ति करते हुए मनाये थे, पर आज मेरे बच्चे कैसे फटे हाल है ? कैसे दीन बने हुए है ?

ढाढस बधाता हुआ कहने लगा–बेटो ! रोओ मत, तुम्हारे लिए मिठाइया मंगवाई है और कपडे दरजी को सीलने के लिए दिये है। आने पर तुम्हें मिठाई भी खिलायेगे, अच्छे कपडे भी पहिनायेंगे। शांति रखो। इस प्रकार बालको को समझा दिया। पर एक दिन निकला, दो दिन निकले, दिवाली का दिन आया। तीन दिन के भूखे बालक पुन रोने लगे। आखिर कब तक उनका मन बहलाये ?

पत्नी कहने लगी–''स्वामी बच्चो का यह रोना मुझसे नहीं देखा जाता। आप ऐसा करो, बडे भाई के पास जाओ। वे बडे दयालु है। जरूर अपनी मदद करेगे।''

छोटा भाई फटेहाल, तीन दिन का भूखा, शर्म आ रही है, बडे भाई के पास कैसे जाऊं ? फिर भी अन्य कोई रास्ता नहीं था, पहुचा बडे भाई के पास। बडे भाई ने दूर से देखा, देखते ही पहिचान गया कि मेरा छोटा भाई है यह, परन्तु इसकी ऐसी हालत कैसे हो गई ? वह तुरंत उठा और दौडता हुआ भाई के सामने जा पहुँचा। उसे ससम्मान अपनी दुकान पर लाया, गादी पर बिठाया और पूछा–''मेरे प्यारे भैया ! तुम्हारी यह हालत कैसे ? इतनी दयनीय स्थिति में पहुंच गये फिर भी मुझे कुछ खबर नहीं दी ?''

तब छोटा भाई बोला–भैया ! मेरे दु ख का पार नहीं। कहते-कहते फूट-फूटकर रोने लगा और रोता-रोता कहने लगा–भैया ! तुम्हारा मेरे ऊपर अनहद प्रेम है। जब तक मै तुम्हारी छाया मे था, तब तक तुम्हारी पुण्यवानी

से सुख भोगता था। पत्नियों के झगडे से अलग होना पडा। अब मुझे बहुत पश्चात्ताप है। तुम्हारे से अलग होने के बाद मेरी यह स्थिति हुई कि आज तीन दिन हुए, घर के सभी सदस्य भूखे है। आज दिवाली का दिन है। बालक पडौसियों के यहाँ मिठाइयां एवं बालकों को अच्छे कपडे पहिने हुए देखकर आए और घर आकर मिठाई और अच्छे कपडे की मांग कर रहे है। रो रहे है। उनका रोना भैया मुझसे सहन नहीं होता। बचपन मे मै कितनी रईसी मे रहा और आज मेरे बचो का यह हाल। यह कहते-कहते छोटा भाई मूर्च्छा खाकर गादी पर गिर गया।

बडे भाई जिसकी आंखो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। छोटे भाई का दु:खडा सुनते-सुनते ज्योंहि देखा कि छोटा भाई बेहोश होकर गिर पडा। जल्दी से ठंडी हवा करता है, ठंडे पानी के छींटे डालकर उसे होश दिलाता है और कहता है–भैया ! देखो मै कितना पापी, इतने दिन हो गये, व्यापार मे उलझा तुम्हारी सुध भी नहीं ले सका। लो भैया ! लो रुपये ले जाओ और यथाशीघ्र बचो के अरमान पूरे करो। मेरे भाई ! रोओ मत। कर्मो का खेल बडा विचित्र है।

ऐसा कहते हुए बडे भाई ने ज्योहि जेब मे हाथ डाला, योग की बात, भवितव्यता, फक्त 5 रुपये का नोट निकला। हमेशा जिनकी जेबें, दो हजार, चार हजार रुपयों की गड्डियो से भरी रहती थी, वहां आज जेब खाली है। दिवाली का दिन था, दुकान मे बहुत ग्राहक बैठे हुए थे। अत. मजबूर बना बड़ा भाई कहता है–भैया ! आज सब नोट घर पर तिजोरी मे रख कर आया हूँ। लो मै तुमको चिट्ठी लिखकर देता हू। इसे लेकर घर पर जाओ। भाभी से कहना, वे तुम्हें 5 हजार रुपये दे देगी। देखो भैया ! जीमकर जाना, भूखे मत जाना। मै स्वयं तुम्हारे साथ चलता, पर क्या करूं ? इन ग्राहकों को निपटाना है। तुम घर चलो, मैं भी अभी आधे घंटे मे सभी को निपटाकर आता हूं।

छोटा भाई बडे भाई की चिट्ठी लेकर घर जाता है। भाभी ने दूर से फटेहाल देवर जी को आते देखा, तुरन्त समझ गई कि– ''ये कुछ न कुछ लेने के लिए आ रहे है। एक बार इनको दे देंगे तो फिर बार-बार आयेंगे, अत· मुझे सावधान हो जाना है।''

इस जगह यदि देवर श्रीमंत हो तो भाभी ऐसा विचार करे ? अरे, वह तो उसे अत्यन्त प्रेम से बुलायेंगी। आज दुनियां मे पैसे का

मान है। यदि घर में मेहमान आते है तो घरवाली पति से पूछती है कि मेहमान कैसा है ? यदि थर्ड क्लास है तो जाडी रोटी और छाछ परोस देगी। यदि सैकड क्लास है तो दाल-भात, पतले फुलके और सब्जी परोस देगी और यदि फर्स्ट क्लास है तो मिठाईयो की भरमार लग जाएगी। एक दिन रूकने वाला होगा तो उसे आग्रह करके रोका जाएगा। गरीब को रोकना तो दूर रहा, कब घर से जायेगा, यह राह देखी जाती है। बडी विचित्र स्थिति है। ज्ञानी पुरुष कर्मो की विचित्रता देखकर ही इस ससार की मोह-माया मे नही फसते है।

छोटा भाई बड़े भाई की चिट्ठी लेकर उसके घर आया। भाभी के पास खडा है, पर भाभी ऑख उठाकर भी उसकी ओर नहीं देखती है, न उसे बैठने के लिए कहती है। फिर भी उसने सोचा–''मेरे अभी पाप का उदय है, भाभी का कोई कसूर नहीं है। मुझे गरीबाई मे मान नहीं रखना है। भाभी भले ही मुझसे न बोले, पर अभी मुझे गरज है, मुझे बोलना उचित है।'' ऐसा सोचकर भाभी को भाई के द्वारा दी हुई चिट्ठी देता है। पढती है, लिखा था–''मेरा भैया आ रहा है, उसे पहले भोजन कराना और बाद मे 5 हजार रुपये देकर विदा करना। पर धनवान घर की बेटी, लखपति पति की पत्नी, सकीर्ण विचार वाली, क्या अपने देवर को भोजन कराये, क्या 5 हजार रुपये देवे उसे ? साफ इन्कार कर देती है। कहती है–''भैया सा ! मै आपको अवश्य जिमाती पर आज हम सभी को जीमने जाना है, अत रसौडा बन्द है, कुछ भी नहीं बनाया। तब देवर ने कहा–भाभी ! मुझे नहीं जिमना है। मुझे तो भैया ने 5000 रुपये देने का लिखा है पर मुझे 5000 रुपये भी नहीं चाहिए, सिर्फ 1 हजार रुपये दे दो। जब मेरी स्थिति सुधरेगी, मै आपको ब्याज सहित दे जाऊगा। अभी मेरे बालक सभी भूखे है, अत उन्हे कुछ खिला सकूं, उनके दिवाली के अरमान पूर्ण कर सकू। पर भाभी कहती है कि देवरजी तुम्हारा कहना सही है, पर क्या करू, अभी घर मे सवा रुपया रोकड भी नहीं है, आज तुम्हारे भैया सब रुपया दुकान पर ले गये है।''

देवर समझ गया, भाभी देने वाली नहीं है। अतीव हताश बना घर से बाहर निकला और भाई के वचन को ध्यान मे रखकर कि–''भैया ने कहा था मै आधे घंटे में सब काम निपटाकर आता हूँ, तुम बैठना।'' अत बाहर चबुतरे पर बैठ गया। पर वह भाभी वहॉ भी उसे बैठने नहीं देती है, वहॉ से

भी, हम अमुक प्रोग्राम में जा रहे है। दरवाजा बंद करना है, इत्यादि बहाना बनाकर उसे उठा देती है।

तब उसे बहुत दु ख होता है, गहरा आघात लगता है। सोचता है– ''मेरे जबरदस्त पापकर्म का उदय है। अब जो होगा सो होगा, मुझे यहॉ से चले जाना है।'' ऐसा विचार कर वहॉ से उठकर सीधा अपने घर चला आया। ज्योंहि घर पहुॅचा बच्चे दौडते हुए आये और भूख से बिलबिलाते हुए वे बच्चे पूछने लगे–बापूजी ! हमारे लिए मिठाई लाये, हमारे लिए अच्छे कपडे लाये ? बालको को गोद मे उठाकर कहने लगे–बेटा ! अभी तुम्हारे बडे पिताजी तुम्हारे लिए बहुत सारी मिठाई और अच्छे कपडे लेकर आ रहे है। तुम सो जाओ। एक नींद ले लो। मासूम बच्चो को इस प्रकार समझाकर सुला दिया और फिर अपनी पत्नी के सन्मुख सारी बात कही। पत्नी का धैर्य विचलित हो उठा, उसने पति के सन्मुख प्रस्ताव रखा कि–''अब अपने से तो बालको का दु:ख देखा नहीं जाता, अत बेहतर तो यही है कि कुए मे गिरकर आत्महत्या कर ले।'' दोनो का यही निर्णय अटल रहा और भूखे-प्यासे बचो को भर निद्रा मे सोये छोडकर मध्यरात्रि मे अपने ही खेडे के पानी भरने के कुऍ पर जाकर दोनो ने एक साथ छलाग लगा दी। कुछ ही समय मे दोनो का प्राणान्त हो गया। सुबह बहिने पानी भरने आई तब दोनो लाशे पानी पर तैर रही थी। इधर तो लोगो को पता चला और इधर सुबह होते ही बालक जब उठे तो मां-बापूजी को नहीं देखकर रोने लगे। अड़ौसी-पडौसी मिलकर आस-पास खोजने लगे, जब कुएं से दोनो लाशे निकाली गई, तभी वे ढूंढते हुए पडौस के लोग वहॉ पहुंच गये, लाशे देखते ही बोल उठे–''अरे ये दोनो लाशे तो इन्हीं बच्चो के मां-बाप है। बच्चे भी खोजते-खोजते वहॉ पहुंच गये थे। मा-पिताजी की लाश देखकर फूट-फूटकर रोने लगे। लोगो ने बड़े भाई को सूचना दी, वह दौडता हुआ आया, अपने छोटे भाई और भाभी की यह दशा देखकर एकाएक मूर्च्छित होकर गिर पडा। लोगों द्वारा होश दिलाया गया। बच्चो के भी आंसू पौछे। दोनो बच्चो को साथ लेकर छोटे भाई के झोपडे पर आया। दोनो लाशे भी झोपडे पर लाई गई। जब बडा भाई घर के अन्दर गया तो बिस्तर पर एक पत्र लिखा हुआ मिला। उसमें लिखा था– ''पितातुल्य मेरे बडे भाई ! तुम्हारे भरोसे हम इन बचों को छोड़कर लम्वी मुसाफिरी पर जा रहे है। इनको संभालना।

तुम्हारी चिट्ठी लेकर मै भाभी के पास गया था। मेरे अशुभ कर्मो का उदय, भाभी ने मुझे कुछ भी नहीं दिया। भाभी की चरण-रज मस्तक पर चढाकर लौट आया।''

यह पत्र पढकर बडे भाई को गहरा आघात लगा। यह शब्द उसके मुह से उच्चरित हुए कि-''मेरी तिजौरी मे भले ही लाखो का धन है, पर वह क्या काम का ? मेरे भाई भाभी गरीबी से घबराकर आत्महत्या कर गये। इस लक्ष्मी के पीछे पागल बना। मैने इनकी सुध भी न ली। अब मेरा प्यारा भाई मुझे कहॉ मिलेगा ? फूट-फूटकर रुदन करने लगा। आखिर रोये तो भी कब तक ? अब पश्चाताप करने से क्या होने वाला है। उठा और भाई व भाभी की अंतिम अग्नि सस्कार क्रिया सम्पन्न करवाई। तीनो बच्चों को लेकर अपने घर आया। पत्नी के स्वभाव से परिचित तो था ही, अत आते ही पत्नी से स्पष्ट कहा-इन बच्चों को अपने बच्चे के बराबर संभालकर स्नेह दे सकती हो तो इस घर मे रहो वरना तुम्हारी मुझे कोई जरूरत नहीं है। आज तुम्हारे ही कारण-''मै अपने प्यारे भाई भाभी को खो बैठा।''

वह भी चतुर थी, समझ गई, अब इस घर मे मेरी दाल गलने वाली नहीं है। रहना है यही, पर अब पति के कहे अनुसार चलना होगा। वह बच्चो को स्नेह के साथ रख रही है पर मॉ का प्यार थोडे ही दे सकती है। हर दिवाली आती है, बच्चे अपने मॉ-बाप की याद मे रोते है।

इस सत्य घटना से शिक्षा लेनी है। धन मिला है तो इसका सदुपयोग करना चाहिए। लक्ष्मी-पूजन करने से लक्ष्मी नहीं मिलती है वरन् लक्ष्मी का सदुपयोग करने से ही लक्ष्मी मिलती है।

राजस्थान मे एक जैन भाई जिसका व्यापार बहुत अच्छा चलता था। जब उसने साधर्मी वात्सल्य का महत्त्व सुना तो निश्चय किया कि-''मै इस समय समर्थ हूँ। यह लक्ष्मी तो चंचला है, आज है, कल नहीं। अत. मै अपनी सम्पत्ति से साधर्मी-बंधुओ का सहयोग करू। इस लक्ष्मी का दूसरा नाम दौलत भी है, जो आते समय पीठ पर लात मारती है, जिससे व्यक्ति अभिमान मे ऐठ कर चलता है और जाते वक्त सीने मे लात मारती है, जिससे मनुष्य झुक जाता है। दो लात मारने वाली होने से इसे दौलत कहा जाता है। अत: क्यो न दो लात मारने वाली इस दौलत का सदुपयोग करके दौलत के इस अवगुण से मुक्त हो जाऊं।'' उसने मारवाड से 50 परिवारों को क्रमश

महाराष्ट्र में जहाँ उसका व्यापार चलता था, वहाँ बुलाया। जो भी परिवार आता, उसे वह अपनी पूंजी लगाकर दुकान करवा देता और उसके कहता कि ''घाटा हो तो मै भरूंगा, नफा होगा तो आधा हिस्सा मेरा होगा।'' जब दो-चार वर्ष में दुकान अच्छी जम जाती तो वे अपना हिस्सा निकाल लेते और उसी के नाम की दुकान कर देते। इस तरह 50 परिवारों को उन्होंने व्यवसाय करवाकर सम्पन्न एव सुखी बना दिया। इतना उत्तम कार्य करने पर भी न उन्होंने अपना नाम किसी पत्र-पत्रिका में दिया, न जाहिरात की और न किसी के सामने ढिढोरा पीटा।

यह है धन का सही उपयोग। धन-तेरस मनाना ही है तो इस ढंग से धन को सार्थक बनाइये।

कहा जाता है कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन रामचन्द्र महाराज ने रावण पर विजय प्राप्त कर अयोध्या में प्रवेश किया। उसी के आनंद मे लोग दिवाली के दिनो मे विजय महोत्सव मनाते है और खुशियों के प्रतिक रूप मे फटाकें फोडकर आनंद मनाते है। क्षणिक खुशी के लिए व्यक्ति आतिशबाजी, द्यूतक्रीडा जैसी प्रवृत्तियो को महत्त्व देता है और करोडो की राशि अपव्यय करता है पर उसकी क्या अर्थवत्ता है ? एक ओर देश मे बढती हुई गरीबी ! करोडों लोगो को भरपेट रोटी नसीब नहीं होती। दूसरी ओर अमीरी का ऐसा प्रदर्शन। यह जीवन की बहुत बडी विसंगति है। आतिशबाजी अपने आप में अपव्यय है। फिर उससे होने वाली आगजनी मे जान-माल की कितनी क्षति होती है। इन फटाको से अगणित जीवो की होली हो जाती है। उसके जहरीले धुएं से फैफडो की शक्ति घटती है। कई बार जल जाने से मृत्यु भी हो जाती है। फटाके फोडते हुए जीव आठो कर्म बांधता है।

1. कागज के अक्षर जलने से ज्ञानावरणीय 2. जीवो के अंगोपाग के नाश से दर्शनावरणीय 3. जीवो को दुःख होने से पीड़ा के कारण असातावेदनीय 4. फटाके की आवाज एवं रोशनी से आनंदित होने से मोहनीय 5. कठोर परिणाम एवं जीव-हिंसा से नरक या तिर्यच गति का आयुष्य बंध सकता है। 6. फटाके फोडते हुए मद करने से नीच-गौत्र 7. जीवों के शरीर का नाश करने से अशुभ नाम-कर्म। 8. जीवों की शाति में खलल पैदा करने से अंतराय कर्म। इस प्रकार जीव आठों कर्मो का बंध करता है। भगवान महावीर के शासन के अहिंसक वीर ऐसी दिवाली कभी

नहीं मनाते। फटाके फोडने से आनंद क्षण का और पाप मण का और पाप से दु ख आये टन का। अत आप भगवान् के सच्चे अनुयायी है तो फटाका फोडना बद कर दीजिए।

''दिवाली आई, दिवाली आई
करने कर्म की होली
फर–फर फटाका फोड कर,
न भरना पाप की झोली''

इन्हीं दिनो मे जितना सभव हो, आरभ-समारभ का त्याग कर आतिशबाजी, द्यूतक्रीडा जैसी प्रवृत्तियो को सम्पूर्ण तिलाजलि देकर बेले-तेले तपपूर्वक सत्य, दया, अहिसा की मशाल ग्रहण कर अन्तर शत्रु पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

कार्तिक अमावस्या को भगवान महावीर का परिनिर्वाण हुआ। अमावस्या की रात का अंधेरा वैसे ही सघन होता है, उस पर तीर्थकर का परिनिर्वाण। भीतर और बाहर सब ओर अधकार ही अधकार छा गया। ऐसे समय मे स्वाभाविक रूप से ऐसा प्रकाश हुआ, जिससे पूरा ससार आलौकित हो उठा। ऐसे प्रकाश की बात केवल कल्पना या परम्परा नहीं है। इसके पीछे आगम का आधार है। स्थानाग सूत्र के चौथे ठाणे मे बताया गया है कि चार ऐसे अवसर आते है, जिस समय ससार उद्योतित हो उठता है–

1 तीर्थकर के जन्म के समय
2 तीर्थकर के दीक्षा के समय
3 तीर्थकर के केवलज्ञान प्राप्ति के समय
4 तीर्थकर के परिनिर्वाण के समय

कार्तिक अमावस्या को प्रभु महावीर के परिनिर्वाण के समय देवो ने भी आकाश मे रत्न जड दिये। अर्थात् रत्न-जडित विमानो मे बैठकर देव परिनिर्वाण महोत्सव मनाने के लिए आये। उस रात इतने विमान आए कि अमावस्या की अधेरी रात प्रकाश से जगमगा उठी। एक तरफ आत्म-ज्योति का आध्यात्मिक प्रकाश, तो दूसरी तरफ देव विमानो का दिव्य-प्रकाश, कहीं कोई भी कौना अंधकार मय नहीं रहा। उस समय अठारह गणतत्रो के गणनायक एव गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे। उन्होने सोचा कि प्रकाश के

ऐसे श्रेष्ठ अवसर का पुन: पुन स्मरण किया जाना चाहिए। अत: प्रकाश-पर्व की परिपाटी उन्होने प्रारम्भ कर रत्नों के स्थान पर मिट्टी के दीये जलाये, जो सम्पूर्ण विश्व मे दीपमालिका के रूप मे प्रसिद्ध हो गये। प्रकाश-पर्व, दीपमालिका का आयोजन तब से अबाध रूप से चलता आ रहा है। जगमगाते दीपों की लम्बी पक्तिया दीपमालिका शब्द को सार्थकता दे रही है। यद्यपि आज शहरो मे माटी के मोहक दीपको का स्थान विद्युत-बल्बों ने ले लिया है। दीपक से दीपक जलाने की मीठी कल्पना, घर के मुंडेरो पर उन्हें सजाने की होड और घर के साथ आत्मा को प्रकाशित करने का उत्साह काफी मंद हो गया है।

इस पर्व के साथ दो बाते विशेष रूप से जुडी हुई है–संमार्जन और प्रकाश। समार्जन वृत्तियों का भी होता है और पदार्थो का भी। सामान्यत. दीपमालिका को निमित्त बनाकर घर, दुकान, ऑफिस से वर्ष भर का कूडा-कर्कट बाहर निकाला जाता है। बर्तनो को चमकाया जाता है। घरो को, दुकानों को विविध प्रकार से सजाया जाता है और भी बहुत कुछ किया जाता है। मिठाइयां बाटी जाती है। आतिशबाजी की जाती है। जीवन-परिमार्जन की प्रक्रिया पर ध्यान की कोई व्यापक परम्परा नहीं है। व्यक्तिगत रूप से कुछ व्यक्ति भले ही उपवास, बेला, तेला, जप, ध्यानादि उपक्रम करते है किन्तु बाहरी सफाई करने की जैसी परम्परा है वैसे कोई निश्चित व्यापक अनुष्ठान नहीं चलता है।

प्रकाश का जहॉ तक प्रश्न है वहॉ आत्मा को प्रकाशित करने की बात गौण है, दीपकों, मोमबत्तिया एवं विद्युत-बल्बो से घर को आलौकित किया जाता है। इस दिन भीतरी प्रकाश की कोई खोज करे या न करे, बाहरी प्रकाश कई रंग-रूपो मे उजागर होता है। प्रतीत तो यह होता है कि समार्जन का स्थान झाड-पौछ ने लिया है और प्रकाश का स्थान आतिशबाजी ने ले लिया है और मेल-जोल के उपचार बढ गये हैं। नये वर्ष कार्तिक शुक्ला एकम को लोग रामा सामा करने अर्थात् स्वजन और मित्रो से मिलने मे पूरा कर देते है और भाई-दूज के दिन भाई बहन के घर जीमने चला जाता है। इस प्रकार दीपमालिका के त्यौहार की पूर्णता हो जाती है। परन्तु इस प्रकाश-पर्व के रूप में दीपमालिका का यथार्थ आयोजन किस रूप मे होना चाहिए यह चिन्तन का विषय है।

इधर महावीर प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया और उधर गौतम स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ–यह आध्यात्मिक प्रकाश का अपूर्व स्वरूप था।

प्रभु महावीर के वियोग मे व्यथित गौतम स्वामी विलाप करते-करते उनका प्रभु के उपदेश पर चिन्तन बना कि–प्रभु ने कहा था–''जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही तुम्हारी भी आत्मा है। जैसे मुझे केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, वैसा ही केवलज्ञान तुम्हारी आत्मा मे भी अप्रकट रूप से रहा हुआ है।''

अनुप्रेक्षा से अध्यवसाय निर्मल बनते गये, प्रशस्त मोह की परते जो केवलज्ञान के सूर्य को आच्छादित किये हुए थी, क्षपक श्रेणि पर चढते ही ज्योंहि वे दूर हटी, त्योंहि कैवल्य-सूर्य जगमगा उठा। उनकी आत्मा ज्योतिर्मय बन गई।''

जैसे प्रभु महावीर का यह उपदेश गौतम स्वामी के लिए वियोग के क्षणों मे चिन्तन का विषय बना वैसे ही हम सभी के लिए यह चिन्तन का विषय बन जाय तो प्रकाश-पर्व-दीपमालिका का यथार्थ आयोजन सिद्ध हो सकता है। आत्मा की मलिनता को दूर करते हुए आध्यात्मिक ज्योति से प्रकाशमान बनाने का पुरुषार्थ ही इस पर्व की सार्थकता है। आज दीपमालिका मनाने का प्रसग अधिकतर मनोरजन के साथ जोडा जाता है, वह उपयुक्त नही है। इसका सबंध वस्तुत मनोनिग्रह के साथ जोडा जाना चाहिए। यह बाहर की सजावट तो एक तरह से हिसा को प्रश्रय देना ही है। आवश्यकता है कि ''आत्मा का आन्तरिक शृगार किया जाय, आत्म लक्ष्मी को आह्वान किया जाय। आज के प्रसंग से समय और शक्ति का अपव्यय नहीं होना चाहिए। फटाके छोडने जैसे हानिकारक रिवाज तो कतई नही होने चाहिए। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो और ज्ञान-ज्योति प्रकटे–ऐसा अथक प्रयास होना चाहिए।

इस पावन प्रसग से तो वास्तव मे अध्यात्म लक्ष्मी की पूजा होनी चाहिए, जबकि आप धन-लक्ष्मी की पूजा मे अपने आपको व्यस्त बनाते है। लक्ष्मी जी को प्रसन्न करने के लिए धूप-दीप मिठाई चढाते है और समझ लेते है कि लक्ष्मी जी प्रसन्न हो जायेगी। आपकी वास्तविक अभिलाषा क्या होनी चाहिए–इसे कम से कम उस लेखन से तो समझिए, जो आप अपनी नई बहियो पर मांगलिक रूप से लिखते है–

''गौतम स्वामी की लब्धि

धन्ना–शालिभद्र की ऋद्धि

बाहुबली का बल
भरत–चक्रवर्ती की पदवी
अभयकुमार की बुद्धि प्राप्त हो।

इस लेखन के आन्तरिक महत्त्व को समझें। लिखने मात्र से आपको गौतम स्वामी जैसी लब्धि और धन्ना–शालिभद्र जैसी ऋद्धि मिलने वाली नहीं है। ये सब पुण्य के योग से साधना के प्रभाव से प्राप्त होती है। सच्चा सुख लक्ष्मी की पूजा से नहीं वरन् आत्म–लक्ष्मी की आराधना से प्राप्त होगा।

कई स्थलो में दीप जलाकर घर के दरवाजे खुले रखे जाते है ताकि किसी प्रकार से लक्ष्मी के घर मे प्रवेश करने में रुकावट न हो पर ऐसे लक्ष्मी का तो प्रवेश करना दूर रहा कई जगह चोरिया हो जाती है, घर की लक्ष्मी ही चली जाती है। अत ज्ञानीजन कहते है लौकिक नश्वर लक्ष्मी की चाह छोडकर ज्ञान दीप जलाकर दिल के दरवाजे खोल दीजिए ताकि आध्यात्मिक लक्ष्मी भीतर प्रवेश कर सके।

दीपमालिका के दिन अतर मे ऐसे उज्ज्वल ज्ञान दीप प्रक्टाइए कि जिससे अज्ञान अन्धकार दूर हो जाय। स्वरूप लक्ष्मी की ऐसी पूजा कीजिए कि फिर से जड लक्ष्मी की जरूरत न पडे। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् चारित्र रूपी ऐसे दिव्य रत्न प्रक्टाइये, जिससे जड रत्नों की जरूरत महसूस न हो। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह महाव्रत रूपी ऐसे आभूषण धारण कीजिए कि लौकिक आभूषणो को धारण न करना पडे। आत्म स्वभाव रूपी धूप ऐसा प्रक्टाइये कि जिसकी सुगध सर्वत्र फैले और जिसमे द्रव्य–भाव कर्म जल जाएं। मोह–राग एवं द्वेष का ऐसा फटाका फोड दीजिए कि पुन संसार मे न आना पडे, मोक्ष का असीम आनद प्राप्त हो जाय। ऐसी मगलमय अवस्था प्राप्त हो जाय कि पुन कभी अमगल न हो। आत्मा के असंख्य प्रदेश मे अनंत ज्ञान का दीपक प्रक्टे वही सच्ची दिवाली है। ऐसी अपूर्व दिवाली मनाने वाले सत्य ही अभिनदन एव अभिवदन के पात्र बनते हैं।

परन्तु आज तो ज्यादा से ज्यादा सारी रात फटाके फोडते हुए दिवाली मनाई जाती है और कर्मबधन किया जाता है। प्रभु महावीर ने तो छोटे से छोटे जीव को भी जीवन दान देने का उपदेश दिया है। किसी भी धर्म मे किसी को तकलीफ देने एवं प्राण हरण करने की बात नहीं कही है। आप जैनी

है, कम से कम अपने अहिंसा के आदर्शो को याद करे और फटाके फोडने से एक साथ असख्य जीवो की हिसा होती है। बेचारे निर्दोष निरपराधी प्राणियो को अपने क्षणिक आनद के खातिर मृत्यु के मुह मे पहुचा देना कैसी शर्मनाक, लज्जास्पद बात है।

"फूटते हैं फटाके
टूटते हैं कलेजे.....
खुटती है दाल-रोटी"

करोडों रुपयों के फटाके फूटते है, करोडो जीवो के कलेजे टुटते है, करोडो मानवो के भूखे पेट दाल-रोटी से वचित रह जाते है, तो आप ही सोचिए फटाके फोडने से क्या फायदा ? फटाके की फट-फट की आवाज मे क्षण भर का तुच्छ आनंद है और असख्य जीवो का मृत्युनाद है। फटाके से बिखरता बारुद वातावरण को बिगाडता है, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त नुकसानप्रद है। फटाके फोडने से अनेक पशु पक्षी भयभीत हो थरथराते है और कितने ही मर जाते है। जब हम किसी को जीवन दान नहीं दे सकते है तो उनके प्राण हरने का हमे कहाँ अधिकार है ? फटाके बेचना, फोडना पाप का पोटला बाधकर पर भव मे दुर्गति मे जाने का परमीशन है। अधिक क्या कहा जाये- फटाके खरीदना एवं फोडना तो मानो रुपयो के बडल को दियासलाई दिखाने जैसी मूर्खता है। दूध के एक घूट के बिना जीने वाले हमारी करोडो की सख्या में गरीब जनता का मजाक है।

आपको कभी ऐसी मन में नहीं आती कि हजारो रुपयो का फटाका फोडकर पैसे का निरर्थक व्यय और धुऑ करने से अच्छा तो यह है कि उन रुपयो से गरीबो की मदद की जाय। परमार्थ का कार्य किया जाए। आज से आप प्रतिज्ञा कर लीजिये कि अब हम कभी फटाका का कातिल पाप नहीं करेगे। आप प्रतिज्ञा कर लेंगे तो कितनेक अंशो में अहिसक बन जायेगे।

कार्तिक शुक्ला एकम को वीर-सवत् का शुभारभ नया वर्ष लग जाता है। नये वर्ष का शुभारंभ, पुराने वर्ष की विदाई के साथ पाप की भी विदाई दे दीजिए। फटाके के स्थान पर कुसंस्कारो को सुलगाकर राग-द्वेष की होली करने वाली पवित्र दिवाली मनाइए और आत्मलक्ष्मी को प्रगटाइये। आत्मविकास की यात्रा प्रारंभ कर दीजिए। ***

10

दीपों का त्यौहार–इतिहास के परिप्रेक्ष्य में

निर्धूमवर्तिरपवर्जित – तैलपूर:,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाश:॥

आचार्य मानतुग आदिनाथ स्तोत्र में ऋषभप्रभु की स्तुति करते हुए कहा है–प्रभो ! आप अमर-दीप है, एक भिन्न ही प्रकार के दीपक है। अन्य दीपको मे बाती से धुआं निकलता है, पर आप तो ऐसे दीपक है, जिसकी बाती निर्धूम है, जिसकी लौ के साथ धुआ नहीं निकलता है। अन्य दीपक तेल के सहयोग से जलते है, बिना तेल के बाती नहीं जल सकती पर आप ऐसे दीपक है, जिसमे तेल की आवश्यकता नहीं होती। अन्य दीपक ससीम क्षेत्र मे प्रकाश फैलाते है, पर आप ''कृत्स्नं जगत्त्रयमिद प्रकटीकरोषी''–तीनो लोकों को प्रकाशित करते है। दूसरे दीपक हवा के झोंके मे टिक नहीं सकते, बुझ जाते है पर प्रभो ! आप ''गम्यो न जातु मरुता चलिता चलानाम्''–ऐसे दीपक है, जो पर्वतो को हिला देने वाले झंझावतो से भी प्रकाशित नहीं होते। इसलिए हे जगत्-प्रकाशक ! आप नि:संदेह एक अद्भूत दीपक हैं।

त्रिलोकी नाथ को एक अद्वितीय अनुपम दीपक के रूप मे निरूपित किया गया है।

दीपक संसार के लिए बहुत उपयोगी वस्तु है। भीषण, सघन अंधकार को ध्वस्त करने के लिए एक दीपक भी पर्याप्त होता है। इसी दृष्टि से छोटा सा दीपक भी बहुत मांगलिक माना जाता है। वर्तमान युग मे प्रकाश के अनेक साधनो के आविष्कृत हो जाने पर भी दीपक तो दीपक ही है। उसकी गरिमा अभी भी पूर्ववत् सुप्रतिष्ठत है।

दीपावली दीपो का त्यौहार है। घरो मे, दूकानो मे दीप जलाकर यह त्यौहार मनाया जाता है।

जैन इतिहास मे दीपावली पर्व भगवान महावीर एव गणधर गौतम स्वामी से सबद्ध है। इसी अमावस्या की रात्रि को प्रभु महावीर का परिनिर्वाण और गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इन दोनो महोत्सवो मे सम्मिलित होने के लिए देवी-देवता भूतल पर आये, तब घोर तमोमय अमावस्या दिव्य-ज्योति से जगमगा उठी। उस समय अठारह गणतत्रो के गणनायक एव गणमान्य व्यक्ति जो वहाँ पर उपस्थित थे, उन्होने सोचा कि- ''प्रकाश का ऐसा श्रेष्ठ अवसर पुन पुन स्मरण किया जाना चाहिए। अत मिट्टी के दीये जलाकर दीपो का त्यौहार प्रकाश-पर्व की परिपाटी प्रारंभ कर दी।

दीपावली से सम्बद्ध इतिहास वृत्तो की श्रृखला मे एक धारणा यह भी है कि ''मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी महाराज चौदह वर्ष वनवास पूर्ण कर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन अयोध्या लौटे, तब अयोध्यावासियो ने विशाल उत्सव मनाकर अपना हर्षोल्लास व्यक्त किया तथा महासती सीता का अपहरण करने वाले रावण का वध कर, लका पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य मे लोगो ने कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन दीप जलाकर शांति-प्रदाता रामचन्द्र जी महाराज का अभिनदन किया। तभी से दीपोत्सव की परम्परा प्रचलित हुई।

पुराणो मे एक अन्य घटना भी वर्णित है—वह इस प्रकार है कि भूतानन यानी भूटान का राजा नरकासुर बहुत ही अत्याचारी एव व्यभिचारी था। नरकासुर ने 16000 राजकन्याओं को कैद कर रखा था। जब संत्रस्त प्रजाजनो ने श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण की। शरणागतो की रक्षार्थ श्री कृष्ण ने नरकासुर का वध करके कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन उन सभी राजकन्याओ को बंधन से छुटकारा दिलाया। कैद से मुक्त हुई उन सभी राजकन्याओ को द्वारिका में लाया गया और कार्तिक कृष्णा अमावस्या को द्वारिका मे दीपक जलाकर हर्षोल्लास प्रकट करते हुए महोत्सव मनाया गया। जो आज दीपोत्सव या ज्योति पर्व के रूप मे प्रचलित है।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन नरकासुर का वध हुआ। अत इस चतुर्दशी को ''नरक-चतुर्दशी'' कहा जाने लगा। लेकिन आज हम इसे जो ''रूप-चतुर्दशी'' के नाम से पुकारते है, कारण आज के दिन अधिकाश

व्यक्ति दवातों की, बहीखातो की सफाई-सज्जा करके उन वस्तुओं का रूप बदलते हैं अत· इसे ''रूप-चौदस'' कहते हैं। आजकल तो यह परम्परा मात्र ही रह गई है, क्योकि पैन से लिखने का प्रचलन है। पहले रूप-चौदस के दिन दवातें धोकर साफ की जाती थी, उसमे नई स्याही भिगोते थे, नये बही खाते सज्जित करके दवाते एव नये बहीखातो को दीवाली के दिन लक्ष्मी पूजन के समय रखते थे। दीपावली के साथ दवाते-बहीखातों के पूजन की परम्परा कैसे जुडी ? यह बात भी विचारणीय है। कहीं-कहीं तो इसी दिन नये वर्ष का शुभारभ माना जाता है। जहॉ नये साल का शुभारभ नहीं मानते है, वहॉ भी बहीखातो की पूजा होती है। इसके लिए कहा जाता है कि–''राजा विक्रमादित्य ने देश को ऋण मुक्त किया था। विक्रमादित्य असाधारण नरपति हुआ है। उसके पौरुष की अनेक गौरव-गाथाएँ प्रचलित है। वह जितना न्यायी था, उतना ही साहसी भी था। वीर विक्रमादित्य के पराक्रम एव न्यायवादिता के दो उदाहरण बहुत प्रसिद्ध है–

वीर विक्रमादित्य की राजधानी मे दो सेठ रहते थे। दोनों मे परस्पर प्रगाढ मैत्री थी तथा एक-दूसरे को अपना अभिन्न अंग मानते थे। एक बार वार्तालाप के प्रसग से प्रश्न उठा कि ''हमारी मैत्री चिर स्थाई कैसे रह सकती है ? कोई ऐसा उपाय करना चाहिए ताकि हमारी सतानों के बीच यह सौहार्द तथा प्रेम की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रहे।''

उस समय दोनो की पत्नियां गर्भवती थी। दोनो ने आपस मे वादा किया कि एक के पुत्र हुआ और एक के पुत्री हुई, तो दोनो का यथासमय परस्पर विवाह करेगे, जिससे हमारी पारिवारिक स्नेह-श्रृंखला इसी तरह चलती रहेगी। दोनो मित्रो ने इस वादे को सुदृढ बनाने के लिये यथाविधि लिखा-पढी करली। उसमें सारा विवरण लिखा और नगर के पांच प्रमुख व्यक्तियो की साख भी डलवा दी। इस प्रकार जन्म से पूर्व ही बचो की सगाई तयकर दी गई। संयोग भी ऐसा उपस्थित हुआ कि एक के पुत्र हुआ और एक के पुत्री हुई। दोनो परिवार मे हर्ष का पारावार नहीं रहा। उनकी मनोकामना पूर्ण हो गई।

विधि का विधान बडा विचित्र है। मनुष्य नाना प्रकार की आशाएं सजोता है, पर अदृश्य के चक्र में कब क्या घटित होना है, उसकी कल्पना पूर्व मे अल्पज्ञ को कहॉं हो सकती है ? जब पुत्र दो-तीन साल का हुआ। उसका पिता अचानक चल बसा। मॉ पर दु.ख का पहाड टूट पड़ा। सब कुछ

पति पर ही निर्भर था। उसका देहावसान होते ही सारी स्थिति डगमगा गई। व्यापार चौपट हो गया। परिणामस्वरूप आर्थिक-स्थिति बहुत नाजुक हो गई। दूसरी ओर दिवगत सेठ का परम मित्र तथा कन्या का पिता व्यावसायिक क्षेत्र मे उत्तरोत्तर उन्नति करता गया तथा उसकी गणना नगर के करोडपतियो मे होने लगी।

इधर पुत्र व पुत्री दोनो अपने भाग्यानुसार बडे होते जा रहे थे। धीरे-धीरे दोनो विवाह योग्य हो गए। करोडपति सेठ भलीभाति जानता था कि "कन्या की सगाई पहले से तय है, पर मित्र की मृत्यु के पश्चात् घटित स्थितियो को देखते हुए, उसकी बुद्धि मे फर्क आ गया। उसे यह अह था कि "मै धनकुबेर और कहॉ वह गरीब ? उस लडके के साथ मेरी पुत्री का विवाह सर्वथा अनुचित, असगत और अनुपयुक्त है।"

सेठ ने अपनी पुत्री का सबध अन्य के साथ करने का निश्चय कर लिया। परन्तु फिर भी उसके मन मे भय था कि समय पर कोई अडचन पैदा न हो जाय, क्योकि सारा शहर इस बात से परिचित था, कि दोनो का संबध पूर्व निश्चित है। इस सकट से बचने के लिए धनाढ्य सेठ ने अपनी पुत्री की सगाई वीर विक्रमादित्य के साथ कर दी। उसने सोचा कि–"राजा के साथ वैवाहिक सबंध जुडने के बाद कोई कुछ बोल नहीं सकेगा और मेरी पुत्री राजरानी बन जाएगी। राजा के साथ सगाई हो गई, विवाह का मुहूर्त्त निकाला गया। देखते ही देखते विवाह का दिन आ गया। पूरे शहर मे मगल-गीत गाये जाने लगे, शहर को सजाया गया, तोरण द्वार बनाए गए। यो सारा शहर आनद-उत्सव मे निमग्न था, पर उस गरीब पुत्र की मा घर मे बैठी आसू बहा रही थी। पुत्र अचानक घर आया। मा को शोकाकुल देखकर हैरान रह गया। उसने मा से पूछा–मा ! आज महाराजा का विवाह हो रहा है, सारे शहर मे धूमधाम मची हुई है। राजा की आरती उतारी जा रही है, बाजे बज रहे है, गीत गाये जा रहे है, इस अवसर पर तुम क्यो रो रही हो ? मा ! बताओ न तुम इतनी उदास और खिन्न क्यो हो ?

रोती हुई मा कहती है–बेटा ! यही तो दु ख का कारण है।

बेटे ने कहा–मां ! इसमे दु ख की क्या बात है। मै कुछ भी नहीं समझा। मा ने कहा–बेटा ! राजा का जिस कन्या से विवाह होने जा रहा है, वह तेरी माग है। तुम दोनो के जन्म से पहले ही तुम्हारी सगाई इस कन्या से तय हो चुकी थी। आज तेरे पिताजी के जीवित न रहने से एव अपनी गरीदी

के कारण यह विवाह राजा के साथ हो रहा है।

बेटे ने पूछा—मा ! इस बात का प्रमाण क्या है ?

मां ने कहा—बेटा ! इसका पुष्ट प्रमाण है मेरे पास। पर उसे कौन सुने ? राजा के कानो मे यह बात पहुचे कैसे ? हम निर्धन है, हमारा साथ कौन देगा ?

पुत्र ने कहा—मै वह प्रमाण देखना चाहता हूँ। तब यत्न से सम्हाल कर रखा हुआ वह लिखा-पढी का कागज मा ने पुत्र को दिखाया। दिवंगत सेठ का पुत्र उम्र मे छोटा था पर बहुत बुद्धिमान था। उसने उस कागज पर लिखित वृत्तान्त ध्यान से पढा। साक्षी रूप में जिन पांच प्रतिष्ठित सेठो के हस्ताक्षर भी ध्यान से देखे और मा को सान्त्वना देते हुए पुत्र ने कहा—मां ! प्रयत्न करता हूं। सम्भव है पासा पलट जाय, क्योकि महाराज विक्रमादित्य न्यायप्रिय एव सत्यनिष्ठ है। यदि विवाह से पूर्व यह पत्र राजा के हाथ में पहुच जाय तो वह अवश्य न्याय करेगा।''

सेठ का पुत्र वह कागज हाथ मे लेकर घर से चल पडा। बहुत सोच-समझकर वह एक ऐसे छज्जे के कौने पर जा बैठा, जिसके पास होकर राजा की वर-यात्रा निकलने वाली थी।

ज्योहि राजा का हाथी समीप आया। बालक ने खडे होकर जोर से पुकारा—''अन्नदाता ! मेरी एक विनम्र अभ्यर्थना है और अति आवश्यक है, जिसके साथ मेरा भविष्य जुडा हुआ है, आप इस नादान बालक पर दया करे। एक क्षण भर के लिए कृपा करके मेरी तरफ निहारे।'' हाथी पर आसीन महाराज विक्रमादित्य ने बालक की आवाज सुन ली। आस-पास अंगरक्षक उसको डांटने लगे, पर न्यायी शासक विक्रमादित्य ने सोचा—यदि इसी समय सुनने की बात होगी तो समय निकलने के बाद उसका क्या इतजाम होगा ? प्रजावत्सल राजा ने अपना हाथ फैलाया और छज्जे के कौने पर खडे उस बालक को अपनी गोद में बिठा लिया। प्रेम से उसके सिर पर हाथ फैरकर उससे पूछा—बोल बेटा ! तेरी क्या अभ्यर्थना है ?

बालक ने वह पत्र राजा के सन्मुख कर दिया। महाराज विक्रमादित्य ने उस पत्र को पढा। पढते ही वे स्तब्ध रह गये। उफ ! यह क्या ? मै जिसका पाणिग्रहण करने जा रहा हूँ, वह तो इसकी मांग है। इनकी सगाई तो जन्म से पूर्व ही निश्चित हो चुकी थी, फिर यह मुझे क्यों ब्याही जा रही है ?

न्यायनिष्ठ नरपति ने विवाह मण्डप मे जाने से पूर्व पुत्री के पिता को बुलाया और वह पत्र उसके सामने रखकर पूछा—यह पत्र किसका है ? किसके हाथ से तथा कब लिखा गया है ? इसमे जो साखे है वे सची है या झूठी है ?

तेजस्वी महाराज विक्रमादित्य के सन्मुख वह सेठ असत्य नहीं बोल सका। कापते हुए सेठ ने कहा—राजन् ! कागज तो मेरे ही हाथ का है और ये साक्षी रूप हस्ताक्षर भी सत्य रूप है।

राजा ने क्रोधावेश मे आकर कहा—फिर ऐसा धोखा क्यो ? मेरे साथ दुबारा संबध जोडने का क्या कारण है ? सेठ ने दबे स्वर मे कहा—वह बिल्कुल गरीब हो चुका है। मेरी पुत्री ऐसे गरीब, अकिचन के घर मे जाए, यह कैसे सभव होता ?

महाराजा विक्रमादित्य ने कहा—"यह अनुचित है, अन्याय है। इस लडके का पिता मै बनता हूँ। तुम हर्ष एवं उत्साहपूर्वक अपनी पुत्री का विवाह इसके साथ करो।"

ऐसा कहकर राजा ने उस लडके को दूल्हे की पौशाक पहना दी, सेहरा बांध दिया और स्वयं उसका पिता बनकर बैठ गया। बड़ी धूमधाम से विवाह सम्पन्न हुआ। पूरे शहर मे राजा विक्रमादित्य की न्यायप्रियता एव महानता की गाथा गूजने लगी।

कहा जाता है कि इस घटना के बाद महाराज विक्रमादित्य ने वर्ण-वरण की व्यवस्था की। यानी जो व्यक्ति जिस वर्ण का हो, उसी वर्ण मे उसका विवाह सबध हो। ब्राह्मण की पुत्री ब्राह्मण को ही दी जाय और वैश्य की वैश्य को। इससे पहले यह व्यवस्था नहीं थी। भिन्न-भिन्न वर्णो मे परस्पर विवाह संबध होते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि "स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि" अर्थात् स्त्री-रत्न यदि निम्न कुल की हो तो भी ग्राह्य है। महाराज विक्रमादित्य ने इस व्यवस्था को नया मोड दिया जो उन्हे आत्मीयता, वर्णानुगत पारस्परिकता आदि के निर्वाह की दृष्टि से उचित प्रतीत हुआ।

विक्रमादित्य के नाम से सवत् प्रारम्भ हुआ, उसके पीछे भी एक घटना है।

महाराज विक्रमादित्य के शासनकाल मे एक बार ऐसी स्थिति आई कि आम जनता ऋण भार से बहुत दब गई थी। ब्याज का ब्याज, फिर ब्याज

का ब्याज, यह व्यवस्था क्रम जनता मे अत्यधिक फैल चुका था। सम्पन्न और अधिक सम्पन्न होते जा रहे थे तथा गरीब और अधिक गरीब होते जा रहे है। राजा के मन मे आया कि–''यह तो बडा अन्याय है। समाज का दारुण रोग है। इसे कैसे समाप्त किया जाय ? दूसरी ओर यह भी उचित नहीं है कि ''जो कोई दूसरे से रुपये मांगता हो, उसे इन्कार कर दिया जाय। उचित यह है कि एक बार पूरे देश का, सभी कर्जदारो का कर्जा चुकाकर नये बही खाते डलवा दिये जाये, पूरी प्रजा का ऋण चुकाना बडा गुरुतम कार्य था तथा किसी के बलबूते की बात नहीं थी। इतना धन कहॉ से आये और कौन रुपये चुकाये ? राजा इस विषय मे सोच ही रहा था कि इतने मे एक विचित्र घटना घटित हुई।

विक्रमादित्य की राजधानी मे ही एक सेठ ने बहुत बडा महल बनवाया, जिस पर भारी खर्च हुआ। लम्बे समय तक काम चला। निर्माण कार्य पूर्णतया सम्पन्न होने पर उसने वास्तु-मुहूर्त्त किया तथा प्रीतिभोज दिया। रात को सेठ उस महल मे गया। बडे आनद से सेठ ने एक विशाल प्रकोष्ठ के बीच अपना पलग लगाया। सेठ नींद मे सोया है। रात के 12 बजे के समय एक आवाज आई–''गिरता हूँ।'

सेठ चौककर उठ बैठा। इधर-उधर देखा तो कोई दिखाई नहीं दिया। सेठ पुन सो गया, फिर आवाज आई–''सेठ सुन रहा है या नहीं ? गिर रहा हूँ।'' सेठ के तो होश उड गए, फिर भी कुछ साहस बटोरकर बैठा रहा। इतने मे तीसरी बार फिर आवाज सुनकर सेठ की सुध-बुध गुम हो गई। वह तो अपना बिस्तर लेकर वहॉ से भाग निकला और पुराने घर मे आकर सांस ली। पूरी रात सेठ को नींद नहीं आई। मन मे बडी दुविधा हो गई कि–''अब क्या करूं ? हवेली पर इतना अधिक खर्चा किया और आज पहले ही दिन वहॉ गिरने की सूचना मिल रही है।'' अत्यन्त भयभीत एवं दुःखी मन से सेठ राजा विक्रमादित्य की सभा मे उपस्थित हुआ। सेठ को राजसभा मे आसन प्राप्त था। उदास मन से अपने आसन पर जा बैठा।

राजा ने पूछा–''सेठ ! क्या बात है, आज इतने चिन्तातुर क्यों दिखाई दे रहे हो ?''

सेठ ने कहा–''राजन् ! क्या कहूँ ? मै तो मारा गया। मेरे साथ तो ऐसी अनहोनी घटना हुई है कि कुछ समझ नहीं आ रहा है। राजा ने सान्त्वना

के स्वर मे पूछा—कुछ बतलाओ तो सही।''

सेठ ने कहा—गरीबपरवर ! मैने भारी व्यय एव श्रम से एक हवेली बनवाई है। कल उसमें प्रवेश किया। रात्रि को सोया तो आवाज आई—''गिरता हूँ'' एक बार, दो बार, तीन बार यही आवाज आई। राजन् ! इससे बुरी बात और क्या हो सकती है ? मेरे लाखो रुपयो पर पानी फिर गया। मै वहॉ से डरकर हवेली छोडकर भाग आया। मेरे तो वह महल किसी काम का नहीं रहा।

राजा ने कहा—बस, इतनी सी बात ? चलो, तुम्हारी वह हवेली हम खरीद लेते है। उस हवेली में जितना धन व्यय हुआ, नि सकोच बतादो, अभी राजकोष से तुम्हे अपनी लागत मिल जायेगी।

सेठ को तो मानो नया जीवन मिल गया। सेठ ने अपनी लगी हुई रकम बतला दी। राजा ने तुरन्त भंडारी को आज्ञा दी और हाथो हाथ सेठ को नकद राशि प्राप्त हो गई। सेठ का मन हल्का हो गया। वह राजा की प्रशस्ति करता हुआ घर लौट गया। वह नवनिर्मित महल राजा के अधीन हो गया।

राजा ने निश्चय किया कि ''आज रात्रि मे मै स्वय उसी भवन मे शयन करु और देखू कि वह गिरने वाली बला कौन है ? निर्भीक हृदय राजा ने रात्रि के समय अपना पर्यक उसी प्रकोष्ठ मे लगवाया, जहॉ पिछली रात को सेठ सोया था। मध्य रात्रि मे उसी प्रकार आवाज आई कि ''गिरता हूँ।'' राजा ने सजग होकर कहा—''गिर जाओ।'' फिर आवाज आई कि ''सावधान, गिरता हूँ।'' राजा ने कहा—नि शक होकर गिर जाओ। तीसरी बार फिर आवाज आई—''सम्हल जाओ, गिरता हूँ।'' हिम्मत कर राजा ने कहा—''नि.संकोच गिर जाओ।'' राजा के इतना कहते ही एक ''स्वर्ण-पुरुष'' (सोने का पोरसा) राजा के आगे आ गिरा।

प्राचीन जनश्रुति है कि ''स्वर्ण-पुरुष को बड़ी कठोर साधना द्वारा साधा जाता है। सिद्ध हो जाने के बाद वह आदमकद स्वर्ण-मूर्ति के रूप मे साक्षात् प्रकट हो जाता है। उस मनुष्याकार प्रतिमा का नियम यह होता है कि उसे पैरो की तरफ से यानी नाभि से नीचे-नीचे काटते जाए, पुन रात्रि व्यतीत होने पर वह मूल स्वरूप मे आ जाती है। अर्थात् स्वर्ण काट ले, दूसरे दिन प्रात वह मूर्ति पुन. अपने पूर्ण अविच्छिन्न उसी रूप मे प्रतिछित हो जाती है। इस दिव्य शक्ति को देख राजा को बहुत प्रसन्नता हुई।

उस सेठ को जब इस बात का पता चला तो उसे बहुत दुःख हुआ। मुह लटकाये राजसभा में पहुंचा। राजा ने पूछा–सेठ ! क्या बात है, आज फिर उदास क्यो हो ?''

सेठ ने कहा–''राजन् ! ''स्वर्ण-पुरुष'' मेरे भाग्य मे नहीं था। कहावत है–हिम्मत की कीमत होती है। मैं इतनी हिम्मत नहीं कर पाया।''

सेठ के दुःख पूर्ण नि.श्वास से विक्रमादित्य का हृदय पिघल गया और बोला–''सेठ ! दु.खित मत होओ, तुम चाहो तो अपना भवन एवं स्वर्ण-पुरुष वापिस ले सकते हो।''

राजा के इन वचनो को सुनकर सेठ राजा का आभार मानता है और कहता है–''राजन् ! यह तो आपके ही प्रबल पुण्य का प्रताप है, आप ही उपयोग करे।''

कहते है–महाराज विक्रमादित्य ने उसी स्वर्ण-पुरुष से प्राप्त सुवर्ण का प्रजा को ऋण-मुक्त करने में उपयोग किया। पूरे देश को ऋण के भार से मुक्त कर नये बहीखाते डलवाये। यह इतिहास का अविस्मरणीय प्रसंग है। अब तक किसी राजा ने ऐसा उपकार नहीं किया। जिस दिन नये बहीखाते डाले गये, वह दीपावली का दूसरा दिन था। इसलिए बहीखातो की पूजा का संबध दीपावली के साथ जुड गया।

कहते है कि दिवाली के दिन राजा बलि पाताल गया था। इसी दिन कालिकासुर का वध हुआ था। सिक्ख मानते हैं कि कार्तिक अमावस्या के दिन उनके छट्ठे गुरु हरगोविन्दसिह जी की जेल से मुक्ति हुई थी।

गुरुनानक का जन्म भी इसी दिन माना जाता है। स्वामी दयानंद को समाधि प्राप्त भी दीपावली के दिन हुई थी। आचार्य वज्रस्वामी एवं कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य का जन्म भी दीपमालिका के दिन मानते हैं।

इस प्रकार दीपावली के साथ इतिहास के अनेक वृत्त जुडे हुए है। यह बाहर का आलोक, आन्तरिक आलोक का हेतु बने, इसी मे हमारा उत्थान एवं अभ्युदय है।

***

11

स्वप्न-विज्ञान

प्रभु महावीर ने स्वप्न के पॉच प्रकार बताये है—

1. यथा तथ्य-स्वप्न 2 प्रतान-स्वप्न 3 चिन्ता-स्वप्न 4 तद्विपरीत-स्वप्न 5 अव्यक्त-स्वप्न।

1. यथा तथ्य-स्वप्न–जैसा स्वप्न देखे, वैसा ही फल मिले। यह स्वप्न सत्य एव शुभ फल को देने वाला होता है।

2. प्रतान-स्वप्न–विस्तार वाला स्वप्न। यह यथा तथ्य भी होता है और अयथातथ्य (मिथ्या) भी होता है।

3. चिन्ता-स्वप्न–जागृत अवस्था मे जिन पदार्थो का विचार किया है, उनको स्वप्न में देखना।

4 तद्विपरीत स्वप्न–स्वप्न मे जिन-पदार्थो को देखा है, जागृतावस्था मे उनसे विपरीत पदार्थो की प्राप्ति होना। इस स्वप्न से विपरीत पदार्थो की प्राप्ति होवे।

5 अव्यक्त-स्वप्न–स्वप्न मे अस्पष्ट अर्थ को देखना। आलजजाल देखना। ये स्वप्न व्यक्ति की उन दलित इच्छाओ कामनाओ को प्रकट करते है, जो कि पूरी नहीं हो पाती।

गौतम स्वामी ने प्रभु से प्रश्न किया–प्रभो ! स्वप्न सोते हुए को आता है, जागते हुए को आता है या सोते-जागते को आता है ?

हे गौतम ! सोते हुए को स्वप्न नहीं आता है, जागते हुए को स्वप्न नहीं आता है, किन्तु सोते-जागते को स्वप्न आता है। स्वप्नावस्था मे इन्द्रिया सोयी हुई रहती है और मन जागता रहता है। उस समय नींद गहरी नहीं होने से मन घूमता रहता है।

वैज्ञानिकों ने ''रैम'' (Rem) नामक मशीन बनाई है, जो बता देती है कि व्यक्ति स्वप्न देख रहा है या पूरी गहरी नींद मे सो रहा है। ''रैम'' यानि

''रैपिड आई मूवमेन्ट'' (Rapid Eye Movement) इस मशीन की क्रियाविधि हमारी शारीरिक क्रियाओ पर आधारित है। जब हम गहरी नींद मे सोते है, तो उस समय हमारी बद आंखो के ऊपर पलको की झिल्ली एकदम स्थिर रहती है और जब नींद मे सपना चलता है तब वह पलको की झिल्ली कम्पित-प्रकम्पित होती है। यह छोटा सा यत्र पलको के नीचे ढकी पुतलियो का हलन-चलन रिकार्ड करके स्वप्न के प्रकार का भी निर्णय कर देता है– यानि कि स्वप्न डरावना है, सुन्दर है या दु:खभरा है–यह सारी खबर ''रैम'' के द्वारा लग जाती है। वैज्ञानिक यह सर्वे कर चुके है कि लगभग 95% व्यक्ति सोते एव जागते हुए भी सपने देखते है।

स्वप्न-विज्ञान कहता है कि हम जो स्वप्न देखते है, उसके अनेक कारण होते है–

1. पहले देखी हुई वस्तुए स्वप्न का कारण बनती है।

2. पहले अनुभव की हुई वस्तुए स्वप्न का कारण बनती है।

3 पहले सुनी हुई बाते स्वप्न का कारण बनती है।

4 वात-पित्त-कफ आदि की न्यूनता-अधिकता स्वप्न का कारण बनती है।

5. मल-मूत्र का वेग रोकने से भी स्वप्न का कारण बनता है।

6 चिन्ता अर्थात् पहले सोची हुई वस्तु स्वप्न मे दिखाई देती है। इन छ. कारणो से आये हुए स्वप्न निष्फल हो जाते है। उनका शुभाशुभ फल नहीं होता है।

7. देवता के अनुष्ठान या सानिध्य से स्वप्न आता है।

8 धर्म-ध्यान मे जागरूक रहने वाले प्राणी के अधिक धर्म-भावित होने से, पुण्य बहुलता के योग से शुभ स्वप्न दिखाई देता है।

9 पाप-बहुलता के कारण पापोदय से अशुभ स्वप्न दिखाई देता है।

उपर्युक्त पिछले तीन कारणो से आये हुए स्वप्न शुभाशुभ फल देते है, ऐसे स्वप्न यथासम्भव वृथा नहीं जाते है।

जो व्यक्ति स्थिर-चित्त, जितेन्द्रिय, शात-मुद्रा, धर्मात्मा, धर्मानुरागी, प्रामाणिक, सत्यवादी, दयालु, श्रद्धालु और गृहस्थोचित गुणो

वाला होता है, उसे स्वप्न आता है, वह प्राय निष्फल कम ही होता है। अच्छा-बुरा फल अपने कर्मानुसार यथासमय जरूर देता है।

सार्थक स्वप्न–स्वप्न विचार के अनुसार यदि स्वप्न मे वृषभ, हाथी, महल, पर्वत या टीलो पर अपने को चढा हुआ देखे तो बडप्पन का लाभ प्राप्त होता है। विष्ठा से लिपटा हुआ शरीर देखे तो निरोगता पाता है। स्वप्न मे रोने पर हर्ष का संयोग मिलता है। राजा, हाथी, घोडा, बैल, गाय, स्वर्ण अपने कुटुम्बादि का स्वप्न देखे तो कुलवृद्धि का योग बनता है। प्रासाद के ऊपर चढकर भोजन करना, समुद्र मे तैरना आदि देखे तो निम्न कुल मे जन्मा व्यक्ति भी राजा बनता है।

स्वप्न मे दीपक, मास, फल, कन्या, पदम, छत्र और ध्वजा आदि देखे तो विजय प्राप्त होती है तथा पूर्वजो की आकृति दिखे तो आयु वृद्धि का कारण बनता है तथा यश, कीर्ति एव धन-वृद्धि होती है। कपास, भस्म, अस्थि, मथी हुई छाछ इन चार वस्तुओ को छोडकर श्वेत रग सबधित स्वप्न शुभ होते है। हाथी, देवता, घोडा और राजा के अतिरिक्त कृष्ण वर्ण सबधित स्वप्न अशुभ होते है।

स्वप्न मे कोई गाना गाये तो रोने का प्रसंग बनता है। स्वप्न मे नाचने पर बदी खाना भोगता है। हंसे तो शोकातुर होता है। स्वप्न मे पढे तो कलह या विग्रह होता है।

देवता, राजा, साधु, ब्राह्मण, अपना पूर्वज, वृषभ ये आकर कुछ बात करे या कहे तो वह सत्य रूप से प्राप्त होती है। सफेद सर्प भुजा पर डसे तो स्वर्ण-लाभ होता है।

गधा, ऊंट, भैस पर चढकर अपने को दक्षिण मे जाता देखे तो मृत्यु का योग बनता है।

शास्त्र मे 72 प्रकार के स्वप्नो का उल्लेख आता है। जिनमे 42 सामान्य स्वप्न हैं, जो सामान्य फल देने वाले है और 30 महास्वप्न है, जो महाफल देने वाले है।

42 सामान्य स्वप्न–गधर्व, राक्षस, भूत, पिशाच, बुक्कस, महिष, सर्प, बन्दर, कटक वृक्ष, नदी, खजूर, श्मशान, ऊट, गधा, बिल्ली, कुत्ता, सगीत, अग्नि-परीक्षा, भस्म-अस्थि, वमन, तम, कुरुपा स्त्री, चर्म, खून,

अश्म, वामन, कलह, विविक्त दृष्टि, जल, शोष, भूकम्प, गृहयुद्ध, निर्वाण, भग, भूमज्जन, तारा टूटना, सूर्य चन्द्र-स्फोट, महावायु महाताप, विस्फोट, दुर्वाक्य- ये 42 स्वप्न अशुभ सूचक माने गये है।

30 महास्वप्न–अरिहन्त, बुद्ध, कृष्ण, शम्भू, नृप, ब्रह्मा, स्कन्द, गणेश, गौरी, लक्ष्मी, हाथी, गौ, वृषभ, चन्द्र, सूर्य, विमान, भवन, अग्नि, समुद्र, सरोवर, सिंह, रत्नों का ढेर, पर्वत, ध्वजा, जलपूर्ण घट, पुरीष, मांस, मत्स्य, कल्पद्रुम, संत ये 30 महास्वप्न महाफल देने वाले है। तीर्थकर का जीव जब माता के गर्भ मे आता है तब तीर्थकर की माता इन 30 महास्वप्न मे से निम्न 14 महास्वप्न देखती है–1 हाथी 2 वृषभ 3 सिंह 4 लक्ष्मी 5. फूलों की माला 6 चन्द्रमा 7 सूर्य 8. महेन्द्र ध्वजा 9. कुम्भकलश 10. पद्म सरोवर 11 क्षीर-समुद्र 12. भवन या विमान 13. रत्न राशि और 14 अग्निशिखा।

जब चक्रवर्ती की आत्मा गर्भ मे आती है, तब चक्रवर्ती की माता भी इन 14 महास्वप्नो को देखती है, किन्तु कुछ अस्पष्ट देखती है। जब वासुदेव का जीव गर्भ मे आता है तो वासुदेव की माता इन 14 महास्वप्नो मे से सात स्वप्न देखती है। जब बलदेव का जीव गर्भ मे आता है तब बलदेव की माता इन 14 महास्वप्नो मे से कोई 4 स्वप्न देखती है। जब मांडलिक राजा या भवितात्मा अणगार का जीव गर्भ मे आता है, तब इनकी माताएं इन 14 महास्वप्नों मे से कोई 1 स्वप्न देखती है। इनके अतिरिक्त भी स्वप्न असख्य प्रकार के हो सकते हैं।

लोकधारणा के अनुसार कहा जाता है, स्वप्न सद्गति और दुर्गति का सकेत भी देते हैं। भगवती-सूत्र में मोक्षगामी जीव की पहिचान तक स्वप्नो द्वारा बताई गई है।

भन्ते ! स्वप्न कौन देखता है ? प्रश्न पूछने पर भगवान ने समाधान दिया कि–''स्वप्न संवृत, असंवृत एवं संवृतासंवृत तीनो देखते है। परन्तु जो संवृत होता है वह यथातथ्य स्वप्न ही देखता है।

भगवती सूत्र में 14 ऐसे स्वप्नों का उल्लेख है उन्हें देखने वाला उसी भव मे या दूसरे भव मे मोक्ष जाता है।

1. कोई व्यक्ति स्वप्न में हाथी, घोडे, वृषभ पर अपने आपको आरूढ देखे और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव में मोक्ष जाता है।

2. स्वप्न मे एक रस्सी को, जो समुद्र के पूर्व-पश्चिम तक लम्बी हो, उसे अपने हाथो से समेटता हुआ देखे और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

3. स्वप्न मे लोकान्त तक पूर्व-पश्चिम लम्बी रस्सी को उसने काट डाला है और उसी क्षण जाग जायें तो उसी भव में मोक्ष जाता है।

4 स्वप्न मे पांच रगो के उलझे सूत को सुलझा देवें और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

5 स्वप्न मे सोना चांदी रत्नो एव हीरो के ढेर पर चढ जाय और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

6 स्वप्न मे लोहा, ताम्बा, कथीर और सीसे की राशि पर चढ जाय और उसी क्षण जाग जाये तो दूसरे भव मे मोक्ष जाता है।

7. स्वप्न मे घास का ढेर या कचरे के ढेर को बिखेर कर फैक दे और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

8. स्वप्न मे शर-स्तम्भ, वीरण-स्तम्भ, वशीमूल स्तम्भ या वल्लिमूल स्तम्भ को जड से उखाड़ कर फैक देवे और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

9. स्वप्न मे दूध के घडे, दही के घडे, घी के घडे तथा मधु के घडे को उठा ले और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

10. स्वप्न मे मदिरा के घड़े, सौवीर (मदिरा विशेष) के घडे, तेल के घडे और वसा (चर्बी) के घडे को उठा ले और उसी क्षण जाग जाये तो दूसरे भव में मोक्ष जाता है।

11 स्वप्न मे चारो तरफ से फूलो से सुशोभित पद्मसरोवर मे प्रवेश करे और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

12 स्वप्न में विशाल, अनेक तरगो से युक्त समुद्र को तैर कर पार पहुच जाय और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

13. स्वप्न मे श्रेष्ठ रत्नो से बने भवन मे प्रवेश करे और उसी क्षण जाग जाये तो उसी भव मे मोक्ष जाता है।

14 स्वप्न में श्रेष्ठ रत्नो से बने विमान पर चढ जाय और उसी क्षण

जाग जाये तो उसी भव में मोक्ष जाता है।

व्यक्ति सामान्य हो या असामान्य, सभी स्वप्न देखते है। स्वप्नो के साथ मनुष्य का मनोविज्ञान जुडा है, बिमारियां, भविष्यवाणिया जुडी हुई है। जिनकी चेतना शुद्ध अविकारी तथा धर्म-आराधना से संयुक्त है, उन्हे स्वप्न कम आते है, आते तब शुभ एव यथातथ्य आते है।

अयथातथ्य स्वप्न आने के मुख्य कारण निम्न बताएं जाते है–

1 अधिक स्वप्नो का दबाव 2. अति बुढापा है 3 अति बचपन 4 अति कमजोरी 5 अति भूख प्यास 6 मल-मूत्र की बाधा 7. तीव्र क्रोध 8 तीव्र लोभ 9. देवमाया।

लोक धारणा है कि–''अशुभ स्वप्न आने पर पुन सो जाना चाहिए और अच्छा स्वप्न आने पर पुन नहीं सोना चाहिए। बुरा स्वप्न यदि प्रात उठने के समय मे आया है तो उठते ही चार लोगस्स का ध्यान अथवा महामंत्र का जाप कर लेना चाहिए। शुभ स्वप्न आने पर अवशेष रात्रि को धर्म जागरणा करनी चाहिए। शुभ स्वप्न की चर्चा नहीं करनी चाहिए अन्यथा उसका फल न्यून हो जाता है।

स्वप्न फल कब मिलता है–

रात्रि के प्रथम प्रहर मे स्वप्न आये तो—एक वर्ष मे फल मिलता है। रात्रि के द्वितीय पहर मे स्वप्न आये तो–छ महिने मे फल मिलता है। रात्रि के तृतीय प्रहर मे स्वप्न आये तो–तीन महीने मे फल मिलता है। रात्रि के चतुर्थ प्रहर मे स्वप्न आये तो–एक महिने मे फल मिलता है। दो घडी शेष रहने पर स्वप्न आये तो–दस दिन मे फल मिलता है। सूर्योदय के समय स्वप्न आये तो–तत्काल फल मिलता है।

पहले शुभ स्वप्न आये और उसके बाद अशुभ स्वप्न आ जाय तो अशुभ स्वप्न का ही प्रभाव स्थिर रहता है। अशुभ स्वप्न देखे तो किसी को नहीं कहना या उसे यथासभव भूल जाने का प्रयत्न किया जाये तो उसका फल नहीं मिलता है। शुभ स्वप्न योग्य को कहने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है। योग्य नहीं मिले तो मन मे ही रखना चाहिए।

(स्वप्न सार समुच्चय से उद्धृत)

मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने और चुग ने मनुष्यो द्वारा देखे गये स्वप्नो का बहुत गहराई से अध्ययन और विश्लेषण किया। उन्होने दमित वासना और दमित मनोविकार को ही स्वप्नो का कारण बताया है। हो सकता है कुछ स्वप्न दमित मनोभावनाओ से भी सबध रखने वाले हो, किन्तु शास्त्रकार कहते हैं कि कुछ स्वप्न देवता भी दे जाते है और कुछ भविष्य के सकेत रूप भी होते है और कुछ पूर्वभव के किसी सबधी द्वारा भला-बुरा कर देने वाले भी होते है। कुछ स्वप्न अवचेतन मन मे सस्कार रह जाने से भी आते है और कुछ दूर दृष्टि का भी परिचय देते है।

स्वप्न-विज्ञान वर्तमान मे बहुत प्रगति पर है। मनोवैज्ञानिक तो स्वप्नो के माध्यम से व्यक्ति के रोग भी जान लेते है।

भगवान् महावीर स्वामी ने छद्मस्थ अवस्था की अतिम रात्रि के अतिम प्रहर मे दो घडी द्रव्य नींद ली उसमे दस स्वप्न देखकर जागृत हुए। वे सभी यथातथ्य रूप से सिद्ध हुए।

पहले स्वप्न मे भगवान् ने देखा कि—"एक भयकर अति विशाल शरीर वाले और तेजस्वी रूप वाले तथा ताड वृक्ष के समान लम्बे पिशाच को पराजित किया। इसका फल यह हुआ कि भगवान् महावीर ने मोहनीय कर्म को समूल नष्ट किया।

दूसरे स्वप्न मे सफेद पख वाले पुंस्कोकिल को देखा। जिसके प्रतिफल स्वरूप भगवान् महावीर शीघ्र शुक्ल ध्यान के तीसरे चरण को प्राप्त हुए।

तीसरे स्वप्न मे विचित्र रगो के पख वाली कोयल को देखा। जिसके प्रतिफल स्वरूप भगवान् महावीर ने विचित्र (विविध विचारयुक्त) स्व-सिद्धान्त को बतलाने वाली द्वादशागी वाणी प्ररूपी।

चौथे स्वप्न मे सर्वरत्नमय माला युगल को देखा। इसका फल यह हुआ कि भगवान् महावीर ने आगार एव अणगार यह दो प्रकार का धर्म फरमाया।

पाचवे स्वप्न मे भगवान् ने सफेद गायो के एक विशाल झुड को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् ने चतुर्विध सघ की स्थापना की।

छठे स्वप्न में भगवान् महावीर ने चारो तरफ से खिले हुए फूलो वाले

पद्मसरोवर को देखा, जिसका फल यह हुआ कि चार जाति के देवो को प्रतिबोध दिया।

सातवे स्वप्न में भगवान् महावीर ने अगाध समुद्र को अपनी भुजाओं से तैर कर पार पहुचे देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् ने संसार-समुद्र को पार कर मोक्ष प्राप्त किया।

आठवे स्वप्न मे अति तेजयुक्त सूर्य को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् को अनत अनुत्तर निरावरण समग्र और प्रतिपूर्ण केवलज्ञान-केवलदर्शन की प्राप्ति हुई।

नवमे स्वप्न मे भगवान् ने मानुषोत्तर पर्वत को नील वैडूर्य मणि के समान अपनी आतों से चारो तरफ से आवेष्टित-परिवेष्टित देखा। इसका फल यह हुआ कि तीनो लोको मे भगवान् की यश कीर्ति फैली।

दसवे स्वप्न मे भगवान् ने अपने आपको मेरुपर्वत की चूलिका पर श्रेष्ठ सिहासन पर बैठे हुए देखा। जिसके फलस्वरूप भगवान् महावीर स्वामी ने केवलज्ञानी होकर बारह प्रकार की परिषद् मे बैठकर धर्मोपदेश फरमाया।

पाटलीपुत्र नरेश चन्द्रगुप्त जो धर्मनिष्ठ था। एक दिन पौषधोपवास मे रात्रि में अर्द्धनिद्रितावस्था मे 16 स्वप्न देखकर जागृत हुए, जो यथातथ्य थे, जिनका फलार्थ 14 पूर्वधारी भद्रबाहुस्वामी द्वारा बताया गया। उसका उल्लेख ''व्यवहार-चूलिका'' मे वर्णित है, वह इस प्रकार है–

1. प्रथम स्वप्न–कल्पवृक्ष की शाखा टूटी हुई देखी।

अर्थ–राजा लोग संयम नहीं लेगे।

2. दूसरा स्वप्न–असमय मे सूर्य अस्त होते देखा ?

अर्थ–पंचम आरे में जन्म लेने वालों को केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी।

3 तीसरा स्वप्न–चन्द्रमा चालनी बन गया।

अर्थ–जैन शासन विभिन्न सम्प्रदायो तथा समाचारियो मे विभाजित हो जायेगा।

4 चौथा स्वप्न–अट्टहास करते भूत-भूतनी को नाचते देखा।

अर्थ–स्वच्छन्दाचारी व ढोंगी साधुओ का सम्मान बढेगा।

5. पाचवा स्वप्न–बारह फन वाला काला सर्प देखा।

अर्थ–बारह वर्ष का दुष्काल पडेगा। साधुओ को आहार मिलना दुष्प्राप्य हो जायेगा। ऐसी स्थिति मे स्वाध्याय के अभाव से ज्ञान विलुप्त हो जायेगा।

6. छठा स्वप्न–देवताओ का विमान लोटते देखा।

अर्थ–विशिष्ट लब्धिया विलुप्त हो जायेगी।

7. सातवां स्वप्न–कचरे के ढेर पर कमल खिला हुआ देखा।

अर्थ–जैन शासन की बागडोर ऐसे व्यक्तियो के हाथ मे आ जायेगी, जो उसमे सौदेबाजी चलायेगे।

8. आठवा स्वप्न–पतगो को उद्योत करते देखा।

अर्थ–धर्म आडम्बरो मे ही शेष रह जायेगा।

9. नवा स्वप्न–तीन दिशाओ मे समुद्र सुखा हुआ है। केवल दक्षिण दिशा मे थोडा सा जल है वह भी मटमैला सा।

अर्थ–तीर्थकरो का विहार हुआ है, वहॉ प्राय धर्म का ह्रास एव दक्षिण मे धर्म का प्रचार हुआ।

10 दसवां स्वप्न–सोने के थाल मे कुत्ता खीर खा रहा था।

अर्थ–उत्तम श्री हीन होगे। पापाचारी आनद करेगे।

11 ग्यारहवां स्वप्न–हाथी पर बदर बैठा देखा।

अर्थ–लौकिक और लोकोत्तर पक्षो मे अधर्मी और आचारहीन व्यक्तियो को सम्मान व उच्च पद मिलेगा।

12 बारहवां स्वप्न–समुद्र मर्यादा छोड़कर भागा जा रहा था।

अर्थ–उत्तम व्यक्ति भी पेट पालने के लिए मर्यादाहीन हो जायेगे।

13 तेरहवा स्वप्न–एक विशाल रथ मे छोटे छोटे बछडे जुते हुए थे।

अर्थ–छोटे-छोटे बालक संयम के रथ को खींचेगे।

14. चौदहवां स्वप्न–महामूल्य रत्न को तेजहीन देखा।

अर्थ–साधुओ का परस्पर कलह, अविनय आदि के कारण चारित्र

का तेज घट जायेगा।

15. पन्द्रहवां स्वप्न–राजकुमार को बैल की पीठ पर चढा देखा।

अर्थ–क्षत्रिय आदि विशिष्ट वर्ग जिन धर्म को छोड कर मिथ्यात्व के पीछे लगेगे, दुर्जनो का विश्वास करेगे।

16 सोलहवां स्वप्न–दो काले हाथियो को लडते देखा।

अर्थ–पिता-पुत्र और गुरु-शिष्य परस्पर विग्रह करेगे। अतिवृष्टि और अनावृष्टि होगी।

इससे पूर्व भी जब प्रभु महावीर का अतिम चातुर्मास पावापुरी मे हस्तिपाल नरेश की रज्जुक सभा मे हुआ था तथा जहाँ इन्हीं दिनों में आत्मा को जागृत बनाने वाले पवित्र उपदेशो का क्रम चल रहा था। उस चरम चातुर्मास की वजह गणमान्य श्रावक-श्राविकाएं तथा राजा-महाराजा प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन हेतु आ रहे थे। सत एव सतीवृन्द भी उपस्थित थे क्योंकि सभी को यह ज्ञात हो गया था कि प्रभु की चरम स्थिति समीप है अत. आत्मकल्याण का अतिम सदेश प्रभु के चरणों मे बैठकर ग्रहण कर लेना चाहिए। इसी समय हस्तिपाल नरेश भी आत्म शुद्धि के कार्य में निमग्न थे। अन्त करण की निर्मल अवस्था मे उन्होने आठ स्वप्न देखे और उन्होने उन स्वप्नो को भगवान् सन्मुख प्रकट किए। प्रभु महावीर ने उन स्वप्नो के आधार पर पंचम काल के भविष्य का कथन किया।

आचार्य श्री नानेश फरमाते थे–''जिनकी आन्तरिक शुद्धि होती है और हृदय पवित्र होता है, उसकी सरलता के साथ धर्म की प्रतिष्ठा तो होती ही है, किन्तु उसके मानस मे भविष्य का विचित्र ढंग से चित्रण भी हो जाया करता है।''' निम्न कविता के माध्यम से आचार्य भगवान् उन स्वप्नो की स्थिति बहुत सुन्दर ढग से विवेचित करते थे–

हस्तिपाल का स्वप्न अर्थ, वीर बताविया जी
अंतिम धर्म देशना देकर मोक्ष पधारिया जी॥टेर॥
पावापुरी में प्रभु जी खास, हस्तिपाल कचहरी आवास
गौतमादि संग चरम चौमास
देके धर्म देशना प्रभु जी, भविजन तारिया जी॥1॥

प्रभु मैं देख्या सपना आठ

करि कपि क्षीर तरु का काठ

वायस सिंह कमल का ठाठ

बीज और कुंभ आठवां देखी भय मन पामिया जी

अंतिम धर्मदेशना देकर मोक्ष पधारिया जी ॥2॥

जिन आठ-स्वप्नो को हस्तिपाल नरेश ने भगवान् के समक्ष फलार्थ जानने के लिए निवेदित किये, वे इस प्रकार थे–

हस्तिपाल राजा के स्वप्न और उनका फल

अपापापुरी मे भगवान का अन्तिम चातुर्मास था। हस्तिपाल राजा की रज्जुकसभा (लेखनशाला) मे भगवान विराज रहे थे। वहॉ के राजा हस्तिपाल को एक रात्रि मे आठ स्वप्न आए। उन्होने भगवान से अपने स्वप्नो का फल बतलाने का निवेदन किया। वे स्वप्न इस प्रकार थे–

1 **कीचड में धंसा हाथी–**'भगवान पहले स्वप्न मे मैने एक हाथी को देखा, जो बहुत ही सुन्दर और श्रेष्ठ था, किन्तु मैने उसे गहरे कीचड मे धसा हुआ देखा, इस स्वप्न का अर्थ मै नहीं समझा।'

2 **उच्छृंखल कपि–**'भगवन् दूसरे स्वप्न मे मैने एक पुष्ट शरीर वाले बन्दर को देखा अपने स्वभाव के अनुसार वह बन्दर उद्यान को नष्ट कर रहा था। इधर से उधर दौडता हुआ और फल-फूलो को रौदता हुआ शाखाओं को तोड कर रमणीय उद्यान को अरमणीय बना रहा था।'

3 **क्षीर वृक्ष के जहरीले जन्तु–**'भगवन्, तीसरा स्वप्न एक क्षीर के वृक्ष का था जिसके चारो ओर जहरीले जन्तु व्याप्त थे। इन जन्तुओ की वजह से कोई प्राणी उस वृक्ष का लाभ नही उठा पा रहे थे।'

4 **काक पक्षी और उनका अशुचि भक्षण–**'भगवन् चौथे स्वप्न मे मैने एक कौए को देखा जो विचित्र ढंग से चुग रहा था। वह अच्छे-अच्छे पदार्थो को छोड़कर अशुचि भरे पदार्थो पर झपट कर पहले दौडता था।'

5 **सिंह की गर्जना और कृमि पीड़ा–**'भगवन्, पाचवां स्वप्न एक विकराल सिह का था, जिसकी भीषण गर्जना सुन कर सारे वन के जीव-जन्तु स्तब्ध रह जाते थे। किन्तु ऐसे पराक्रमी सिह की दशा बडी विचित्र थी।

उसके शरीर में कीड़े पडे हुए है, जो बुलबुला रहे हैं, उन कीडों की वजह से वह सिंह भी व्याकुल सा दिखाई देता था।'

6. **गन्दगी पर उगा हुआ कमल**–'भगवन्, छठे स्वप्न में मैने एक कमल देखा। उस कमल का विचित्र हाल था कि वह सरोवर के बजाय उकरड़ी (गन्दगी डालने की जगह) पर उगा हुआ था। ऐसी जगह कमल उगता नहीं, फिर यह कैसा स्वप्न था।'

7. **बीज बोने की विचित्र प्रवृत्ति**–'भगवन्, सातवे स्वप्न मे मैने कुछ किसानो को बीज बोते हुए देखा। आश्चर्य की बात यह थी कि वे बीज वहीं बो रहे थे, जहॉ ऊसर जमीन थी, जहॉ अंकुर भी नहीं निकल सके, वहॉ बीज बोये जा रहे थे। दूसरी तरफ उपजाई भूमि पर ऐसे बीज बोये जा रहे थे, जिनमें उगने की योग्यता ही नहीं थी, कारण उनकी नोकें टूटी हुई थी।'

8 **उपेक्षित कुंभ कलश**–'भगवन्, आठवां स्वप्न एक कुभ-कलश का था। कुंभ कलश तो मांगलिक व मनोरथ पूर्ण करने वाला समझा जाता है किन्तु यह कुंभ-कलश विचित्र ढग से एक कोने मे पडा हुआ था।'

महावीर स्वामी द्वारा स्वप्नों के फल का कथन–

(1) कीचड़ में धंसा हाथी

महावीर प्रभु ने तब हस्तिपाल के स्वप्नो का फल बताते हुए संकेत दिया . राजा ! तुमने कीचड मे फंसा हुआ जो हाथी स्वप्न मे देखा है, उसका अर्थ यह है कि आने वाले पंचम काल में हाथी के समान कई प्राणी सांसारिक वैभव से युक्त, धार्मिक व निष्ठावान भी होगे किन्तु क्षणिक सुख में इस तरह मदमस्त हो जायेंगे कि आध्यात्मिक मार्ग को छोड़ कर विषय कषाय के कीचड मे फंसते रहेंगे। पांचों इन्द्रियों के भोग में वे अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर देंगे। कदाचित् कोई सत्संग के प्रसंग से संसार के विषय कषाय रूपी कीचड से बाहर निकल कर दीक्षित भी बनेगे तो कई बाद मे कुसंगति के कारण आन्तरिक रूप से महाव्रतो को तोड देंगे और फिर भी बाहर से साधु कहलाते रहेंगे। इस तरह उत्तम कुल के प्राणी कुसंगति के कारण संयमी जीवन की दशा को विकारपूर्ण बना देंगे। हाथी उत्तमता का प्रतीक होता है किन्तु उसके कीचड मे फसे होने का अर्थ है कि उत्तम कुल के प्राणी अधिकांशत. अपने सुचरित्र से पतित बनेंगे अत: पंचम काल में जीवन की विचार एव

आचारगत पवित्रता को बनाए रखने के लिए सदा कठिन प्रयास किए जाते रहने चाहिए।

(2) उच्छृंखल कपि

उच्छृखल कपि के दूसरे स्वप्न का अर्थ महावीर प्रभु ने इस प्रकार बताया कि इस पंचम काल में कई विचित्र दृश्य दिखाई देगे। इसमे मेरे गच्छ का नाम लेकर मेरे शासन की छाया मे रहते हुए भी अनेक व्यक्ति बाहर की दृष्टि से सयम को अगीकार करेंगे और उसके बाद गच्छ के नायक या स्वामी बन जाएगे, किन्तु वे नायक या स्वामी स्वप्न के इस बन्दर की तरह बनेगे।

जैसे उच्छृंखल कपि हरे-भरे रमणीय उद्यान मे तोड़-फोड व उखाड-पछाड करके उसकी सारी शोभा को नष्ट कर देता है, वैसे ही ये नायक गच्छनायक या स्वामी भीतर ही भीतर सघ की शोभा को विकृत बनाते रहेगे। ये रूपान्तरों को धारण करेगे। जनमानस मे ऐसी विकृत विचार धारा बिठाई जाएगी कि निश्छल धर्मधारियों को धर्म से दूर समझा जाने लगेगा। यह स्वप्न जीवन के आन्तरिक विचार और व्यवहार के खोखलेपन को बताने वाला है, ऐसा जीवन पचमकाल मे दिखाई देगा। मेरे शासन मे लोग धर्म, समृद्धि मे तत्पर बनेंगे, किन्तु दीक्षा मे पीछे रहेगे। पद पाने की कामना प्रबल होगी और कोई विरले ही होंगे जो पद से दूर रहकर अपना सच्चा आत्म-कल्याण करना चाहेगे। इसके अनुसार प्रदर्शन से दूर रहकर धर्म को हृदयगम करे तथा व्रतो का हार्दिकता से पालन करे।

(3) क्षीर वृक्ष के जहरीले जन्तु

राजन्! क्षीर वृक्ष के समान पंचम काल मे ऐसे दानी और वीर श्रावक भी होगे, जो मेरे शासन में निष्ठा रखने वाले तथा आध्यात्मिकता के साथ अपने जीवन की पवित्रता के साथ चलने वाले होगे किन्तु कुछ श्रावक ऐसे लिगधारी याने कि अपना गलत वर्चस्व रखने वाले भी होगे जो इधर-उधर की बाते बनाकर साधुओ को अपने सही मार्ग से भ्रमित करेगे तथा उन्हे अन्य साधुओं के साथ नहीं बैठने देंगे। वे जहरीले जन्तुओं की भांति होगे और अपनी स्वार्थ पूर्ति मे लगे रहेगे। इस प्रकार के जन्तु साधुवेश को लेकर चलेंगे तब भी अपनी दुर्भावनाओं को लेकर संसार में परिभ्रमण करेगे। ऐसे लिगधारी श्रावक, सुश्रावको को भी अपने रास्ते से फिसलाने की चेष्टाएं करेंगे। ऐसे जहरीले जन्तुओ के समान श्रावक पच महाव्रत धारण करके साधु भी बन

जाएंगे। ये उन मुनियो को जो सिंह के समान पुरुषार्थ करने वाले होंगे, नाना प्रकार से तंग करेगे तथा उनकी अपकीर्ति करेगे। जहॉ-जहॉ वे मुनि विहार करेगे, ये पार्श्वस्थ उनके लिए वहॉ-वहॉ शूल का काम करेगे और कहेगे कि ये आधुनिक युग से पिछ्डे हुए है और जमाने को न समझ कर अपने आपको बदलते नहीं हैं। उन्हें वे परेशान करते रहेगे और कई प्रकार के उपद्रव करेंगे। इस प्रकार यथार्थ और ढोंग के बीच मे बराबर सघर्ष चलते रहेंगे।

(4) काक पक्षी और उसका अशुचि भक्षण

चौथा स्वप्न जो काक पक्षी का देखा, उसका फल इस प्रकार है–

कौआ अच्छा भोजन सामने रहते हुए भी अशुचि भक्षण की ओर चला गया–इसका अर्थ यह है कि इस पंचमकाल मे मुनि स्वच्छन्द अधिक होंगे। कमल के समान मुनि अच्छे सरोवर को प्राप्त करेगे किन्तु अच्छे गच्छ में अच्छे संतों के पास दीक्षित होकर भी वे भ्रष्ट स्वभावी बन कर अपनी क्षीण बुद्धि से स्वच्छन्दता ग्रहण कर लेगे। इस तरह कई स्वच्छन्द सम्प्रदाय बन जाएंगे तथा उन सम्प्रदायों मे रहकर वे अच्छे मुनियो को भी अपनी ओर यह कर आकर्षित करेंगे कि वहॉ तो नियमो का कठोरता से पालन कराया जाता है किन्तु हमारे यहॉ नियमो का सुविधा से तथा प्रदर्शन मात्र के लिए पालन कराया जाएगा। उन्हे वे उस मुनि जीवन को भी आनन्द-भोग का साधन बताएगे। ऐसे कह कर भद्र स्वभावी मुनियो को वे मृग-तृष्णा का लोभ देकर अपनी ओर खींचेगे।

कौए का यह रूपक भ्रष्ट स्वभावी मुनियों का है, जो मुनिधर्म रूपी श्रेष्ठ भोजन को छोडकर संसार की विषय भोग रूपी अशुचि पर लिपटते रहेगे और अन्य अच्छे मुनियों को भी पथ विचलित करते रहेगे।

(5) सिंह गर्जना और कृमि पीडा

राजन् पांचवे स्वप्न का अर्थ इस प्रकार है–यह जिनधर्म वीरों का, सिहों का धर्म है। इस धर्म की तात्विक दृष्टि, सिद्धान्तो के जगत मे अलौकिक मानी गई है। स्याद्वाद रूपी गर्जना से मनघडन्त सिद्धान्तो के हरिण झाडियो मे घुस कर अपने को छिपा लेंगे, स्वप्न मे गर्जना करता हुआ सिंह देखा है, लेकिन उसके शरीर मे कीडा लगता हुआ भी देखा है–इसका अर्थ है कि भरत क्षेत्र में जैन धर्म सिंह के समान रहेगा, परन्तु उसमें इन कीडों की तरह कुछ

व्यक्ति होगे जो नाम से तो अपने आप को जैन कहेगे लेकिन असल मे वे धर्म को भीतर से खोखला बनाने की चेष्टाएं करते रहेगे।

(6) गन्दगी में उगा हुआ कमल

राजन् ! यह छठा स्वप्न जो इस रूप मे दिखाई दिया है कि सरोवर के बजाय गन्दगी पर कमल उगा हुआ है, जिसका अर्थ है कि धर्म का कमल सामान्यतया उत्तम कुल मे खिलता है, किन्तु इस पचम काल में धर्म के सच्चे आराधक रूप से धार्मिक वृत्तियो का ह्रास होगा और नीच जाति के कहलाने वाले व्यक्तियो मे धर्म के कमल खिलेंगे।

पचम काल मे पिछड़ी जातियों के लोगो मे से कई धर्म पर आरूढ होकर अपनी आत्मा का उत्थान करेगे तथा अधिकाशत उत्तम कुल के लोग धर्म के धरातल से भ्रष्ट होकर अपने आचरण की गिरावट मे कहीं-से-कहीं पहुच जाएगे। जाति की दृष्टि से वे भले ही ऊचे कहलावे, किन्तु कर्म से वे वास्तव मे शुद्रो एवं अशुचिमय लोगो मे पहुंच जाएगे।

(7) बीज बोने की विचित्र प्रवृत्ति

राजन् ! पचम काल मे यह स्वप्न सत्य निकलेगा कि अधिकाश लोग ऊसर भूमि मे बीज डालेंगे और उपजाऊ भूमि मे बीज डालने वाले बहुत कम दिखाई देंगे। इसी प्रकार विवेक विकल श्रावक कुपात्र को रुचिपूर्वक ज्ञान देगे और सुपात्र की अवहेलना करेगे।

(8) कोने में पडा उपेक्षित कुंभ-कलश

राजन् ! आठवे स्वप्न मे कोने मे पडे उपेक्षित कुभ-कलश से यह अर्थ लिया जाना चाहिए कि जलभरित और कमल पुष्पो से आच्छादित कुभ, एक ओर उपेक्षित पडे रहने के समान क्षमादि उत्तम गुणो से परिपूर्ण महात्मा विरले एव बहुजन उपेक्षित से रहेगे और मलपूरित कुभ के समान दुराचारी वेशधारी सर्वत्र दिखाई देंगे। वे कुशीलिये शुद्धाचारी मुनियो की निन्दा करेगे और उन्हे कष्ट देने को तत्पर होगे। वेश से दुराचारी और सदाचारी समान दिखाई देने के कारण अनसमझ सामान्य जनता दोनो को समान मानेगी।

इस पर एक कथा इस प्रकार है–'पृथ्वीपुर मे 'पूर्ण' नाम का राजा था। 'सबुद्धि' उसका मंत्री था। वह बुद्धिमान तथा योग्य था। सुखपूर्वक काल व्यतीत हो रहा था। मंत्री को एक भविष्यवेत्ता ने कहा–'एक मास पश्चात् वर्षा

घर-घर संदेश सुना करके, जिनधर्म के तत्त्व बता करके,

इस तरह प्रभु से केवल प्रेम निभाओ ॥5॥

पुन भाई प्रत्युत्तर देता है–

तर्ज–जब तुम्हीं .. .

महावीर भगवान, हुए निर्वाण, कहाँ से लाऊं ?

अब कैसे भोजन खाऊं ? ॥टेर।

मेरे तो एक ही भाई था, सज्जन आदर्श सुखदाई था,

ऐसे भाई को कैसे, बता भुलाऊं ॥1॥

तू ससुराल गई ब्याव किया, वह भाई भी घर छोड दिया,

मन को समझाया, जब चाहे मिल जाऊं ॥2॥

पर आज जगत को छोड गया, भाई का नाता तोड गया,

अब क्या समझाकर, अपना मन बहलाऊं ॥3॥

कल्याण के मार्ग को बताया है, वह मेरे मन को भाया है,

सेवाव्रत ले जीवन सफल बनाऊं ॥4॥

तेरे कहने को नहीं टालू, तूं कहती है तो लो खालूं,

'केवल मुनि' तेरा प्रेम नहीं ठुकराऊं ॥5॥

बहिन भाई को समझाती है–क्या वह जैसा तुम्हारा भाई था, वैसा मेरा भाई नहीं था ? उठो भैया ! कुछ खाओ, देखो, तुम्हारे साथ बच्चे भाभी सब रो रहे है, इन सब को क्यो रूलाते हो ? हालाकि बहिन का दिल भी रो रहा था, पर हिम्मत रखकर भाई को मना रही है। रोता बिलखता भाई नन्दीवर्धन कहता है–बहिन ! तू कह रही, सो ठीक है, पर मेरे तो एक ही भाई था, वह मुझे छोडकर चला गया। जब तक वह दुनियां में था, मुझे संतोष था। नन्दीवर्धन राजा के यहाँ कुछ भी कमी नहीं थी। विपुल ऐश्वर्य, हरा भरा सम्पन्न परिवार, पर भाई का अभाव ....। आज कहाँ है भाइयो में परस्पर स्नेह ?

आज कई ऐसे उदाहरण सन्मुख हैं कि भाई-भाई का मुंह नहीं देखना चाहते है, इन पैसो के इन पुद्‌गलों के पीछे मोहांध बनकर। भीनासर में श्रीमान झुमरमलजी सा और श्री जीवराजजी सा. सेठिया दो भाई, दोनों

करोडपति सेठ पर दोनो एक दूसरे का मुह नहीं देखना चाहते थे। एक दिन आचार्य श्री नानेश के व्याख्यान मे दोनो भाई प्रवचन सुनने आये, आचार्य श्री जी ने प्रवचन मे भ्रात-प्रेम का महत्त्व बताते हुए फरमाया कि " एक भाई का एक भाई को कितना बडा सहारा होता है याद करो, राम-लक्ष्मण को। अभागे है, जो भाई-बहिन का मुह देखना नही चाहते है।" उन महापुरुष की वाणी का ऐसा प्रभाव पडा कि दोनो भाई व्याख्यान उठने के बाद एक-दूसरे के घर जाने के लिए सकल्प कर एक-दूसरे के घर की तरफ अपने चरण बढा लेते है । परस्पर मिलने के लिए बेताब है, दोनो के हृदय परिवर्तित हो चुके है। बीच मार्ग मे ही दोनो एक दूसरे के आमने-सामने मिल जाते है। परस्पर एक दूसरे को बाहो मे भर लेते है । दोनो ने एक थाली मे बैठकर भोजन किया, उन दोनो में इतना घनिष्ठ स्नेह हो गया कि उसके बाद जब भी आचार्य श्री जी की सेवा मे पहुचते तो दोनो साथ-साथ ही जाते थे। खून का रिश्ता आखिर खून का रिश्ता ही होता है। आखिर वह बहिन सुदर्शना अपने भाई नन्दीवर्धन को मना लेती है और उसे भोजन कराती है। तभी से इस दूज को भैया-दूज के नाम से पुकारा जाने लगा। आज उसी परम्परा से बहिने भाई को अपने घर बुलाती है और भोजन कराती हैं। सबधो के जगत मे आपसी व्यवहार बहुत महत्त्व रखते है। सबंधो को मधुर बनाये रखने के लिए समझ की जरूरत होती है। नासमझी से सबधो मे कटुता फैल जाती हैं। दुनिया की राहो मे फूलो से अधिक काटे है पर आश्चर्य की बात तो यह है कि काटो से ज्यादा फूलो के घाव दु खदायी होते है। दूसरो की अपेक्षा अपनो की उपेक्षा असह्य होती है। इसलिए कहा जाता है, सबध बनाये रखना चाहिए। कौनसा सबध कब उपयोगी होगा, कहना कठिन है।

ससार के समस्त संबधो मे नि स्वार्थ और पवित्र सबध अगर कोई है तो भाई-बहिन का सबध है। भाई के लिए बहिन और बहिन के लिए भाई स्नेह के छलकते सरोवर होते है। एक सुखी परिवार मे जन्मे भाई और बहिन की कहानी इस बात को चरितार्थ कर रही है। बहिन बडी थी, भाई छोटा था। भाई-बहिन का परस्पर प्रेम दूध-मिश्रीवत् था। माता-पिता ने सुखी परिवार मे अपनी पुत्री का परिणय करवाया, तत्पश्चात् भाई का भी विवाह हुआ। बेटी पराये घर चली गई और घर मे बहू आ गई। उसके बाद माता-पिता स्वर्गवासी हो गए। भाई-बहिन का प्रेम सबंध बहुत प्रगाढ था। परन्तु

संसार के स्नेह संबंधों के बंधन कब, कहाँ और कैसे टूट जाते है–समझना मुश्किल है। समग्र ससार स्वार्थ की श्रृंखला से बंधा हुआ है। बहन और भाई पुण्योदय की वजह सुखी थे लेकिन समय सदा एक सा नहीं रहता है। अचानक बहिन के जीवन मे तूफान आया। उसके पतिदेव का व्यापार जो जोर-शोर से चल रहा था, अनायास ही इतना अधिक घाटा लगा, सारा धंधा बैठ गया। आज की दुनिया मे पैसा ही सर्वस्व है, पैसे की हानि से आदमी को जो आघात किंवा सद्मा लगता है, उससे वह टूटसा जाता है। इस बाह्य जगत मे जिधर देखे उधर धन का मान-सम्मान है। जब तक पैसा पास है, तब तक सभी आपके संबधी है, पर पैसा पास नहीं है, तो सगे संबधी भी किनारा कर लेते है।

अनुभवियों ने कहा है कि–

''वसु बिन नर पशु''

वसु यानी धन है, तो नर है, नहीं तो वह पशु तुल्य है। लेकिन ज्ञानीजन कहते हैं–

''धर्मेण हीना पशुभिः समाना''

इन्सान के पास चाहे कितना भी धन-वैभव हो, पर जीवन में यदि धर्म नहीं है, तो वे पशु के समान है। इस प्रकार ज्ञानियों की गणित कुछ ओर ही होती है। उनका तो कहना है–धर्मरहित चक्रवर्ती भी दया का पात्र है। फिर भी दुनिया तो पैसे की ही पुजारी है। यहाँ ऐसा ही हुआ। बहिन के यहाँ पापकर्म के उदय से धन, घर-बार आदि सभी नष्ट हो गये और इस आघात को सहन नहीं कर सकने के कारण पति भी थोड़ी सी बिमारी को झेलकर परलोकवासी बन गया। पैसा गया, पति गये और जेठ-जेठानी ने घर से भी बेघर कर दिया। अब दुःखियारी बहिन अपने पुत्र-पुत्री के साथ घर के पास एक छोटी झोंपडी बनाकर रहने लगी।

कर्म इन्सान को कैसे-कैसे खेल दिखाता है ? पुण्य समाप्त होता है, तो इंसान कहाँ से कहाँ पहुच जाता है। जिस बहिन के पास अपार संपत्ति थी, आज उसी के सिर पर भयंकर दु खो का बोझा आ पड़ा था। बिल्कुल निराधार होकर फूट-फूट कर रो रही है। रोटी के टुकडे तक के लिए आज मोहताज हो गई है। उसका भाई तो बहुत ही सुखी और सम्पन्न था। बहनोई

की मृत्यु की भी उसे जानकारी थी, पर बाद मे उसकी क्या दशा बनी, उसकी जानकारी उसे नहीं थी। कारण मर्यादा मे जीने वाली स्वाभिमानी बहिन ने कभी अन्दरूनी स्थितियो की जानकारी भाई को नहीं दी थी। नन्हे फूल से मासूम बच्चे भूख से पीडित होकर माता से खाना मागते तो माता के आखो से अश्रुधारा बहने लगती। निरूपाय हो एक दिन बहिन ने सोचा– ''मेरा भाई तो हर तरह से समृद्ध है, उसे पत्र लिखकर सहायता मागू।'' यह सोच बहिन ने भाई को पत्र लिखा–''मेरे प्यारे भैया ! मेरे अशुभ कर्मो का उदय, आज तेरे भाणजे-भाणजी रोटी के लिए तरस रहे है। तू उदार दिल, गरीबो का सहायक, दु.खियो के आसु पौछने वाला है, आज तेरी बहिन निराधार बन गयी है। तू अपनी दु खियारी बहिन की मदद के लिए शीघ्र आ। तेरे सिवाय अब दुनिया मे मेरा कोई आधार नहीं है।''

इस प्रकार पत्र लिखकर भाई को भेजा, पर वह पत्र भाई के हाथ मे न पहुच कर भाभी के हाथ मे पहुच गया। भाभी ने पत्र पढकर उसे फाडकर कचरे के डिब्बे मे फैक दिया। भाई को कुछ भी पता नहीं चलने दिया। इधर भाई की तरफ से कोई जवाब नहीं आया तो बहिन ने दूसरा पत्र ओर लिखा पर दुर्भाग्य से वह पत्र भी भाभी के हाथ लगा और भाभी ने फाडकर फैक दिया। भाग्य रूठा हुआ है। भाई को कुछ भी पता नहीं है। इधर बच्चो के स्कूल की छुट्टिया हुई तो वे अपनी माता से कहते है–मा ! हमारे स्कूल के बच्चे छुट्टियो मे मामा के घर जा रहे है क्या हम लोग भी मामा के घर जायेगे ? माता बेचारी क्या जवाब देती, उसके आखो से अश्रु टपक रहे है। सोच रही है–''मैने तो भैया को दो पत्र लिखे, पर भाई ने उत्तर तक नहीं दिया।'' इधर उसकी जैठानी बच्चो की बात सुनकर उन्हे कह रही है कि ''तुम्हारे मामा-मामी की तुम आश ही मत रखना, उन्होने इतना लम्बा समय हो गया, कभी बुलाया क्या तुम्हे ? जब उस रोती हुई बहिन ने ये शब्द अपनी जेठानी के मुह से सुने, तो उसे बहुत बुरा लगा। अपने भाई के प्रति उसे बहुत प्रेम था। भाई के विषय मे कोई कुछ कहे, उसे बर्दाश्त नहीं होता था। वह जेठानी से बोली–''भाभी ! आप मेरे भैया के लिए ऐसे शब्दो का प्रयोग नहीं करे। मेरा भाई बहुत दयालु एव उदार है। वह हमे जरूर बुलायेगा, अपने भानजो की देखभाल करेगा।''

जेठानी के वचनो से उसे बहुत आघात लगा। वह भाई को तीसरा

पत्र लिखती है–

''मेरे प्यारे भैया ! तुम्हे दो पत्र लिखे पर उत्तर नहीं मिला, मुझे तुमसे कुछ भी धन सम्पत्ति नहीं चाहिए, सिर्फ तुम्हारा प्रेम चाहिए। मेरी जेठानी ताने कसती है, मुझसे सहन नहीं होता है। मै तुम्हारे लिए कुछ भी सुन नहीं सकती हूं, कर्मो का तूफान, मेरा भाग्य मुझसे रूठ गया है। बच्चे मामा के घर जाने की हठ कर रहे है अत तुम पत्र पाकर जरूर हमे बुलावा भेजना।''

बहिन का पत्र इस बार सीधा भाई के हाथ में पहुच गया। पत्र पढने पर भाई के आखो से अश्रु धारा बह चली। अहो ! मै कितना हतभागी हूं। जब बहिन सुखी और समृद्ध थी, तब कितनी बार उसके पास गया था और आज बहनोई के गुजरने के बाद बहिन की दुर्दशा हो जाने पर भी मैने कभी संभाल नहीं ली। ऐसा सोचता हुआ भाई तुरन्त बहिन के यहॉ जाने की तैयारी करने लगा तो भाभी ने पूछा–कहॉ जाने की तैयारी कर रहे हो ? भाई ने कहा–बहिन को लेने जाने की तैयारी कर रहा हूं। उसका पत्र आया है, वे बहुत दु खी हैं। भाणजे भी अपने घर आने के लिए मचले हुए है। भाभी तडक कर बोलती है–किसकी अनुमति से जा रहे हो ? भाई कहता है–मुझे किसी की आज्ञा की आवश्यकता नहीं है। भाभी कहती है–घर की मालकिन मैं हूं। मेरे घर मे मेरी इजाजत के बिना कोई नहीं आ सकता है। भाई कहता है–याद करो वे दिन जब बहिन सुखी और समृद्ध थी, तब उसने हमे सदा ही उपकृत किया था । भाभी कहती है–उस पुण्यहीना बहिन को घर में लाकर इस घर को बरबाद नहीं करना है।

पत्नी का आदेश जारी हुआ। बेचारे भाई साहब तो वहीं खड़े रह गये। पुन कुछ भी नहीं बोल पाये। बाजार मे चले गयें। आसू बहा रहे हैं। मन मे दु.खी हैं, कुछ भी नहीं कर सकते।

इधर बहिन, बच्चे मामा के यहॉ जाने के लिए रो रहे है। जिद्द कर रहे है। मा से बार-बार कह रहे है–सभी मामा के घर जा रहे हैं, हमे भी मामा के घर ले चलो। आखिर बच्चो को लेकर स्वयं ही भाई के घर जाने के लिए रवाना हुई। ज्योही भाभी ने दूर से बच्चो के साथ नंनद को आते देखा तो अपने घर का दरवाजा बंद कर लिया। दरवाजा बंद करते देख बहिन की आंखो मे अश्रु टपकने लगे। अहो ! कर्मराजा ! कैसा खेल दिखाया है तूनें, मुझे। सुख के समय में प्रेम से स्वागत करने वाली भाभी ने आज मुझे देखते

ही दरवाजा बंद कर दिया। बच्चो से मा कह रही है–बेटा ! तुम्हारी मामी की इच्छा नहीं हैं, अत· हम वापिस अपने घर चलते है। रोते हुए बालको को लेकर माता अपनी झौपडी मे लौट आई और स्वय अपनी विवशता पर फूट-फूटकर रो रही है।

समय निकलते कोई देरी नही लगती है। जब सुख नहीं टिका तो दु ख भी कब तक टिकेगा ? सुख के बाद दु ख और दु ख के बाद सुख आता ही है। हर इन्सान को अपने कृत्य का फल भोगना ही होता है। कुछ समय पश्चात् ही भाई के कर्म की दशा बदली। इसलिए कहते है, कभी धन का गुमान मत करो, पैसे के मद मे गरीबो की आह मत लो। धूप-छाव सभी के जीवन मे आता है।

भाई दुकान मे बैठा है कि व्यापार मे भारी नुकसान का पत्र मिलता है। भाई यह पत्र लेकर घर आता है और पत्नी से कहता है–देख, तूने मेरी बहिन और भाणजो को खाली हाथ लौटाया अब उसका फल मिल गया है। व्यापार मे भारी नुकसान लग गया है। भुगतान करने के लिए कुछ भी नही बचा है। किसी के हृदय को जलाओ तो अपना भी जलता है। बहिन की आह लगी हैं। इतना कहते-कहते भाई बेहोश होकर धरती पर गिर पडा। पत्नी उसे होश मे ला रही है।

इधर बहिन भाई से बिना मिले ही लौट आई। बच्चे मा से कहते है–मॉ ! मामा ने हमको घर भी प्रवेश करने नहीं दिया। हमे यो ही बाहर से लौट आना पडा। बडी मॉ सही कहती थी। लेकिन वह बहिन बच्चो का इस तरह बोलना भी सहन नहीं कर पाती है। कहती है–ऐसी बात नहीं है, तुम्हारा मामा बडा दयालु है, उसने बहुत कुछ दिया है। मैने उसे जमीन में गाडकर रख दिया है। यह कहकर वह अपनी झौपडी के पास जमीन खोदती है, तो आश्चर्य ! वहाँ से धन एव जवाहरातो का भरा घडा निकलता है। जब पुण्य का उदय होने वाला होता है तो यो अनायास ही धन मिल जाता है। वह बच्चो से कहती है–''देखो ! तुम्हारा मामा ने कितना धन दिया है।'' जबकि हकीकत मे यह मामा का दिया हुआ नहीं था। लेकिन भाई के प्रति कितना गर्व। ऐसी स्थिति मे भी भाई को कभी नीचा नहीं दिखाया। इधर भाई को उसकी पत्नी होश में लाती है। होश मे आने के बाद वह पश्चाताप के आसू बहा रहा है। पत्नी से कहता है–अब तो जहर खाने के अतिरिक्त कोई दूसरा

उपाय नहीं है। अभी लेनदार पैसे मांगते हुए आयेगे, उन्हें मैं अपना क्या मुंह दिखाऊंगा ? 24 घंटों में अगर कहीं से कुछ आशा भरे समाचार मिले तो ठीक नहीं तो जहर खाकर इस जीवन का अंत करना पडेगा। यह समाचार हवा की तरह चहुं और फैलते हुए बहिन के पास भी पहुंच गये। ज्योहि बहिन ने सुना एक क्षण भी रुके बिना वह सम्पत्ति से भरा घडा कपड़े में लपेट कर भाई के घर चल पड़ी ज्योहि बहिन घर पहुंचती है। भैया की हालत देखती है। भाई बहिन को देखकर फूट-फूटकर रो पडा। कहता है–मेरी प्यारी बहिन ! तेरा यह भाई हत भागी और पुण्यहीन है। मेरी लाखो की सम्पत्ति पल मे खाक हो गई है। अब जीवन का अन्त करने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। बहिन ! मैने तुम्हारी कोई मदद नहीं की है। अब मैं दुनियां से विदा लेता हूं, तू सुखी रहना। इतना कहकर ज्योंहि जहर का प्याला पीने के लिए मुंह से लगाता है कि बहिन तेजी से बढकर उसके हाथ से प्याला छीन लेती है और अपने साथ लाये हुए धन एवं जवाहरतो से भरे घडे को भाई के सामने रख देती है। भाई से कहती है–लो भैया ! इसे स्वीकारो और अपनी डुबती मर्यादा को बचाओ। तुम्हारी बहिन जब तक जीवित है, तुम्हे इस तरह अपमानित होकर मरने नहीं देंगी।

भाई पूछता है–बहिन ! यह क्या है ? बहिन कहती है–यह पुण्य का उदय है। मै बच्चो को बहला रही थी कि तुम्हारे मामा बहुत दयालु हैं। उन्होने अपने को बहुत सारा गुप्त रूप से धन दिया है। वह मैने जमीन में गाड रखा है और ज्योहि मैने झोंपडी के पास की जमीन खोदी, तो यह घडा निकला है। हो सकता है तुम्हारे बहनोई ने जमीन में गाडकर सुरक्षित रखा हो। इस दशा के समाचार जैसे ही मिले और मैं यह लेकर तुम्हारे पास हूं। इसे तुम स्वीकारो और अपनी इज्जत बचाओ। भाई को यह सब बहुत दु.ख होता है, देखो कहाँ मैं ? और कहाँ मेरी बहिन ? मैं पत्नी गुलाम, बहिन को दु.ख के दिनो मे चाहते हुए भी कुछ भी सहयोग नहीं सका और मेरी बहिन ने कितना बडा आदर्श रखा है। जिस बहिन और जे-भाणजी के लिए घर के दरवाजे बद कर दिये गये थे, वही बहिन उन बातो को आंख मिचौनी कर समय पर मुझे कितना बडा सहयोग दे रही है। पूरा अपना खजाना ही मुझे सौंप रही है और दिन भी कैसा भाई-दूज । उस दिन संयोग से भाई-दूज थी। धन्य है उस बहिन को। भाई ने वहिन

की मदद से अपनी इज्जत बचा ली और पत्नी से बोला–देखा, मेरी बहिन को ? बहिन हो तो ऐसी हो। भाभी पश्चाताप के आसू बहाती हुई ननद के चरणो मे गिर पडती है और अपने अपराधो की क्षमा मागती है। बहिन-भाई के सच्चे प्रेम के प्रति नत मस्तक हो जाती है।

***

13

ज्ञान-पंचमी

ज्ञानाराधना का पावन पर्व ''ज्ञान-पंचमी'' किंवा कार्तिक शुक्ला पचमी तिथि का जैन-परम्परा मे विशिष्ट महत्त्व है। ज्योतिष के अनुसार पचमी पूर्णा तिथि है। पूर्णातिथि को कोई भी शुभकार्य प्रारंभ किया जाता है तो वह सानंदपूर्ण होता है। इतिहासकारो की धारणा है कि प्रभु महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी आचार्य सुधर्मास्वामी द्वारा इस कार्तिक शुक्ला पचमी को ही श्रुतज्ञान का जो पावन प्रवाह प्रवाहित हुआ, वह आज तक प्रवाहित हो रहा है। ज्ञान-प्रवाह प्रवाहित होने के कारण ही इस पचमी को श्रुत-पचमी या ज्ञान पंचमी नाम दिया गया है। यही कारण है कि आज भी गुरु अपने शिष्यो को नया शास्त्र ज्ञान, स्वाध्याय आदि की वाचनी देते है, अथवा कुछ नया ज्ञान कंठस्थ करने की प्रेरणा करते है।

इतिहासकार दूसरी बात यह भी बताते है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के 980 वर्ष पश्चात् उन्हीं के 27वें पट्टधर आर्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन कंठस्थ चली आ रही श्रुतज्ञान की परम्परा को लिपीबद्ध कर पुस्तकाकार रूप देने का साहसिक एव दूरदर्शी कार्य प्रारभ किया। इसके पहले वह सम्पूर्ण द्वादशांगी ज्ञान भंडार साधको के उर्वर मस्तिष्क मे सुरक्षित रहता था। गुरु के मुख से शिष्य सुनते थे और उसे अपने स्मृतिकोष मे सुरक्षित रखते थे। सुरक्षित उस श्रुतज्ञान की बार-बार आवृत्ति करते रहते, अपने शिष्यो को वाचना देते रहते, बार-बार उस ज्ञान के संबंध मे चर्चा-विचारणा करते रहते, कभी-कभी गंभीर चिन्तन भी करते थे और श्रोताओ के सन्मुख उस पर व्याख्यान भी करते थे। इस प्रकार स्वाध्याय द्वारा उस श्रुतज्ञान की विशिष्ट आराधना करके परम्परागत ज्ञान की सुरक्षा करते थे, उनके मस्तिप्क में इतना विशाल श्रुत का क्षीरसागर इसलिए सुरक्षित रह सका कि वे वाह्य झंझावातो से अप्रभावित रहते थे, और

पीढी दर पीढी वह विशाल ज्ञान एक दूसरे से प्राप्त होता रहा। अचानक समय ने पलटा खाया द्वादशवर्षीय दुष्काल की मार ने साधको की ज्ञान साधना फीकी कर दी, जो साधक पहले नियमित रूप से शास्त्रो का स्वाध्याय करते थे, वे अब दुष्काल के प्रभाव से शरीर बल और मनोबल क्षीण हो जाने से स्वाध्याय मे गडबडाने लगे। उनकी स्मृति-धारणा भी काल की चपेट के कारण धुधली पडने लगी। जिससे 14 पूर्व का जो विशाल आगम ज्ञान था, वह विस्मृत होता-होता क्षीण धारा जैसा रह गया। जब 1 पूर्व का ही ज्ञान अवशेष रह गया। तब एक पूर्वधारी आचार्य श्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के जीवन मे अचानक एक घटना घटी। एक दिन गृहस्थ के यहॉ से औषधि के रूप मे एक सूठ का गाठिया लाये थे। जरूरत के अनुसार उसका उपयोग करने के बाद उस बचे हुए गाठिये को कान मे लगा दिया, यह सोचकर कि पडिहारी लाये है, सूर्यास्त से पूर्व गृहस्थ को वापिस लौटा देगे। कितु सन्ध्या को गृहस्थ के यहॉ लौटना भूल गये। जब सायकालीन देवसी प्रतिक्रमण कर रहे थे तभी अचानक वह सूठ का गाठियां कान मे से नीचे गिरा, आचार्य श्री जी की दृष्टि, ज्योहि उस गाठिये पर गिरी, पश्चात्तापूर्वक विचार किया– 'ओह, मै तो पुन. लौटाना ही भूल गया।' इस छोटी सी घटना ने उनके गभीर हृदय मे मथन जागृत कर दिया–'काल का प्रभाव स्मृति को दुर्बल करता जा रहा है। जब कान मे स्वयं अपने हाथो से सूठ का गाठियां रखकर भी मै भूल गया तो जो आज तक 1 पूर्व का विशाल शास्त्र ज्ञान अपने मस्तिष्क जमा रख पाया हूँ, उसका अब क्या हाल होगा ? मैं देख रहा हूँ दीर्घकालीन दुष्काल की चपेट में आकर हमारे साधकों की श्रुतज्ञान को धारण करने की शक्ति मद होती जा रही है और इस घटना ने तो मुझे सावधान कर दिया है। यदि समय रहते इस विशाल श्रुत ज्ञान मे से जितना भी कुछ स्मृति मे सुरक्षित है, उसे सुरक्षित रखने हेतु अन्य कोई प्रयत्न नहीं करेगे तो आने वाली पीढी हमे कृतघ्न कहेगी। यही नहीं आगम ज्ञान यदि लुप्त हो गया तो शुद्ध श्रमणाचार का पालन कैसे होगा ? आगम का दीपक जलता रहेगा तो आचार की शुद्ध परम्परा का दर्शन भी होता रहेगा। आचार्य श्री जी ने गहराई से चिन्तन किया और एक साहसिक निर्णय लिया कि 'अब बिना विलम्ब किये आगम ज्ञान को लिपिबद्ध कर लेना चाहिए। विशाल ज्ञानराशि को सुरक्षित रखने हेतु दूर-दूर से तत्कालीन महान् शास्त्रज्ञ मुनिवरो को आचार्य

श्री जी ने पाटलीपुत्र में एकत्रित होने के लिए निमंत्रित किया। इस महान् कार्य मे श्रावक-श्राविकाओं का भी सहयोग लिया। जब सब श्रुतधर मुनिराज एकत्रित हो गये तो आचार्य श्री ने सभी श्रुतधरों के साथ शास्त्रीय पाठो के संबंध में विचार-विनिमय करने के बाद कागज पर लिखना प्रारंभ किया। कहते है—शास्त्रों का लेखन कार्य जिस दिन प्रारंभ हुआ, वह कार्तिक शुक्ला पंचमी का दिन था। श्रुतज्ञान लेखन का यह आदि चरण होने से भी इस तिथि को ज्ञान पंचमी व श्रुतपंचमी के रूप में पुकारा जाने लगा। आज जैन धर्म को जैन-तत्त्वज्ञान को एक पूर्ण वैज्ञानिक और तर्क संगत तत्त्वज्ञान होने का जो गौरव मिला, इसका सम्पूर्ण श्रेय आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के सत्प्रयत्नो को है। जैन संघ का अस्तित्व जब तक भूमण्डल पर रहेगा, तब तक इस दिन को विस्मृत नहीं किया जायेगा। ज्ञान पंचमी मनाने का मुख्य उद्देश्य हमारा यही होना चाहिए कि जिन महान श्रुतधर आचार्यो एवं मुनिवरों ने अपने अथक पुरुषार्थ से जिस श्रुतज्ञान को लिपिबद्ध कर सुरक्षित रखा और परम्परा से हम तक पहुंचाया उस श्रुतनिधि को सम्पूर्ण चतुर्विध संघ अपना कर्त्तव्य समझ कर सहेज कर सुरक्षित रखें। श्रुत सेवा का संकल्प लेवें। श्रुत की अधिकाधिक आराधना करे, जो भी ज्ञान प्राप्त करे, उसे आचरण में लायें।

आगम मे बताया है कि पॉच ज्ञानों मे श्रुतज्ञान ही स्व पर प्रकाशक है। मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान ये चारो ज्ञान स्वयं के विषय में भी स्वयं कुछ नहीं कह सकते हैं। ये चारो ज्ञान अपने-अपने विषय का ज्ञान कर सकते हैं, पर उस विषय को अभिव्यक्ति देना, प्रकट करना, प्रवचन करना यह सब श्रुतज्ञान का विषय है। चार ज्ञान मूक है, श्रुतज्ञान ही मुखर है। श्रुतज्ञान के सहारे ही हम दूसरों का ज्ञान ग्रहण कर सकते हैं और दूसरो तक अपना ज्ञान पहुँचा सकते हैं। हम जो बोलते हैं, लिखते हैं, उपदेश देते हैं, वह सब श्रुतज्ञान ही है। केवली भगवान भी जो उपदेश देते हैं, वह वर्णमाला के सहयोग से ही देते हैं और वह वर्णमाला श्रुतज्ञान का विषय है। इसलिए संसार में सबसे ज्यादा उपकार करने वाला श्रुतज्ञान है।

उत्तराध्ययन सूत्र में प्रश्न किया है कि—सुयस्स आराहणयाए णं **भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?**

–श्रुत की आराधना करने से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

भगवान ने उत्तर देते हुए फरमाया–**सुयस्स आराहणयाए णं अन्नाणं खवेइ न य संकिलिस्सइ।**

–उत्तरा. 29/25

श्रुत की आराधना करने वाला अज्ञान को नष्ट करता है, जीवन मे कभी संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है।

श्रुत की आराधना तभी संभव है जब ज्ञान के कालाचार, विनयाचार, बहुमानाचार आदि आठ आचारो का पालन किया जाय और ज्ञान एवं ज्ञानी की आशातना से बचा जाय। ज्ञान पर कभी अरुचि या द्वेष भावना नहीं रखे। किसी को ज्ञान प्राप्ति मे अन्तराय नहीं दे। ज्ञान एवं ज्ञानदाता का नाम कभी नहीं छिपायें, ज्ञानीजनो से शत्रुता भाव नहीं रखे और ज्ञानियों का अवर्णवाद नहीं करें।

प्राचीन जैन कथाओं मे वरदत्त एवं गुणमंजरी की कथा प्रसिद्ध है।

पद्मपुर नामक नगर का राजा अजितसेन था, उसका सुपुत्र राजकुमार वरदत्त मंद बुद्धि था, पढता भी नहीं था और नहीं कुछ समझता था। शरीर भी कुष्ट रोग से पीडित था, बहुत उपचार कराने पर भी कुछ लाभ नहीं मिला।

एक दिन नगर मे धर्माचार्य का पदार्पण हुआ। आचार्य श्री ने ज्ञान-विराधना के कटु-फलों पर प्रभावशाली प्रवचन दिया। जिसे श्रवणकर महाराज अजितसेन ने आचार्य श्री जी से पूछा–'भगवन्! मेरा पुत्र वरदत्त ने पूर्वजन्म मे ऐसे क्या पाप किया जिससे यह मद बुद्धि एवं कुष्ठ रोग से पीड़ित है।'

आचार्य श्री ने वरदत्त के पूर्व जन्म की घटना सुनाते हुए कहा–वसु नामक श्रेष्ठि के दो पुत्र थे–वसुसार और वसुदेव। दोनो पुत्रो ने जैन श्रामणी दीक्षा अगीकार की। छोटा भाई वसुदेव तीक्ष्ण मेधा सम्पन्न था। उसने अनेक शास्त्रो का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया। प्रतिदिन वह 100 साधुओ को पढाता था। दिन-भर मस्तिष्क का विशेष श्रम होने से वह थक जाता था। एक रात्रि को थककर गहरी नींद मे सोया था कि एक साधु ने उसे जगाकर

कहा कि–'मुझे अमुक पाठ का अर्थ समझाइये। मुनि वसुदेव झुंझला उठे और बोले–'चले जाओ यहाँ से, मैं तुम्हे नहीं पढाऊगा। मुझे नींद लेने दो।' फिर मन ही मन सोचने लगे–''मैंने पढाने का झझट व्यर्थ ही अपने जिम्मे लिया है, न तो आराम से सो सकता हूँ, न ही पूरी नींद ले सकता हूँ। इससे तो मेरा बडा भाई वसुसार मंद बुद्धि है तो अच्छा है, आराम से रहता है, निश्चिंत होकर सोता है, कोई तकलीफ नहीं है उसे। अब मै भी किसी को नहीं पढाऊंगा।'' इस प्रकार वसुदेव मुनि ने ज्ञान की आशातना, निन्दा की, दूसरों को ज्ञानदान देना बंद कर दिया। जिससे ज्ञानावरणीय कर्म का उत्कृष्ट बन्धन कर वहॉ मृत्यु से प्राप्त कर यहॉ वरदत्त बना है और ज्ञान की आशातना के दुष्फल रूप मे यह मंद बुद्धि हुआ है और कुष्ट रोग से पीडित है।

वरदत्त भी वहीं बैठा हुआ था, उसने अपना पूर्वजन्म सुना तो उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उसे बडा पश्चात्ताप हुआ। राजा अजितसेन ने पूछा–''गुरुदेव ! अब क्या किया जाये, जिससे इसका प्रगाढ ज्ञानावरणीय कर्म हल्का पडे, उसकी बुद्धि तीव्र बने एवं कुष्ट रोग से मुक्त होवे।''

आचार्य श्री ने कहा–कार्तिक शुक्ला पंचमी का दिवस ज्ञान पंचमी का दिवस है, उस दिन से ज्ञान की आराधना प्रारंभ करो। महिने की प्रत्येक शुक्ल पंचमी को चौविहार उपवास करे 'णमो णाणस्स' इस ज्ञान-पद की 21 माला फेरना, सुपात्र दान, ज्ञान-दान देने से ज्ञानावरणीय कर्म का बंधन हल्का हो सकता है एवं सारे कष्ट दूर हो सकते हैं। यह तप 5 वर्ष 5 मास पर्यन्त करना होता है।

आचार्य श्री की उस प्रवचन सभा मे उसी नगर का सिंहदास सेठ भी सपरिवार उपस्थित था। उसके गुणमंजरी नामक एक पुत्री थी। वह जन्म से ही गूंगी और रोगी थी। सेठ ने बहुत चिकित्सा करवाई परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। सेठ-सेठानी पुत्री की इस हालत पर अतीव दुखी रहते थे।

आचार्य श्री से सेठ सिंहदास ने भी पुत्री के गूंगापन एवं रोग का कारण जानना चाहा तो आचार्य श्री ने उसके भी पूर्वजन्म की घटना सुनाते हुए कहा कि– प्राचीनकाल मे भरत क्षेत्र के एक गॉव में जिनदेव नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी थी सुन्दरी। सेठ के पॉच पुत्र थे। बड़े होने पर सेठ ने पॉचों पुत्रों को पाठशाला भेजा। बच्चे आलसी एवं मंद-बुद्धि थे। पढाई नहीं करते थे, जब समझाने पर नहीं समझे तो अध्यापक ने उनको मार लगाई।

बच्चे रोते-रोते घर आये। अपनी मॉ को शिकायत की–''अध्यापक हमें मारता है। मॉ ने उनको उल्टी पट्टी पढाई कि अध्यापक तुम्हारी पिटाई करता है तो तुम पॉचो मिलकर अध्यापक को पीट डालो।'' दूसरे दिन बचो ने मिलकर अध्यापक की पिटाई कर दी और दौडकर घर पर आ गये। माता ने उन्हे शाबासी दी और उनकी पुस्तके, कॉपी, पट्टी इत्यादि पढाई की सामग्री जला दी। सेठ ने पुत्रो को पढने के लिए कहा तो सेठानी बोली–''मुझे पुत्रो को नहीं पढाना है।''

पुत्र बडे हुए तो उनके विवाह की समस्या आ गई। सेठ ने अपनी पत्नी से कहा–''देखो, अब इन मूर्खो को कोई भी अपनी लडकी देने को तैयार नहीं है। यह सब तुम्हारे ही कारण हुआ। इस प्रकार सेठ सेठानी मे झगडा होता रहा। कुछ समय बाद वह सेठानी मरकर यहॉ पर गुणमजरी के रूप मे उत्पन्न हुई है।

गुणमजरी को भी अपने पूर्व जन्म की कहानी सुनकर जाति स्मरण ज्ञान हो गया। वह अपने कृत पर बहुत पश्चात्ताप करने लगी। आचार्य श्री को बताये अनुसार वह भी ज्ञान-पचमी की आराधना करने लगी।

इस प्रकार ज्ञान-पंचमी की शुद्ध आराधना करने से वरदत्त और गुणमंजरी दोनो का उद्धार हो गया।

इस कहानी से यही शिक्षा मिलती है कि हमे कभी भी ज्ञान, ज्ञान के साधनो एवं ज्ञानी जनो की आशातना नहीं करनी चाहिए। वर्तमान समय मे छात्र किस कदर अध्यापको की पिटाई करते है, स्कूलो की तोड-फोड करते है, पुस्तके फाड देते हैं, ये सब हरकते उन्हे विद्याध्ययन एव ज्ञान-प्राप्ति से वचित कर रही है।

श्रुत-सेवा ज्ञानावरणीय कर्म तोडने का एक श्रेष्ठतम उपाय है। जैन-परम्परा का इतिहास साक्ष्य है कि जैनाचार्यो ने उनकी प्रेरणा से बडे-बडे श्रीमन्तो व राजाओ ने श्रुतज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए भागीरथ प्रयत्न किये है।

कहा जाता है–वस्तुपाल मत्री ने आचार्य के श्रीमुख से श्रुतज्ञान के प्रसार की महिमा सुनी, उससे प्रेरित होकर 18 करोड स्वर्ण मुद्राएँ खर्च करके तीन बड़े-बड़े विशाल ज्ञान भंडार बनवाये। जहॉ पर हजारो आगम

ग्रंथ सुरक्षित रखे गये। आचार्य हरिभद्र सूरि के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उन्होने, 1,444 ग्रंथो की रचना की। उन्होंने जब यह संकल्प किया तब उनके सामने एक समस्या आई कि "स्वल्प तथायु· बहृश्च विघ्ना.। आयुष्यकाल तो बहुत परिमित है, उसमे भी विघ्न बाधाएं आती रहती है अत: यदि मै पूरे दिन भर भी ग्रंथ लिखता रहूं तब भी इतने ग्रंथ कैसे लिख पाऊंगा। यदि रात्रि मे निरवद्य प्रकाश का प्रबन्ध हो जाय तो यह कार्य संभव हो सकता है।

तब एक धनाढ्य लल्लिग नामक श्रावक जो बडा उदार एवं गुरुभक्त था। उसने ऐसा मणि रत्न उपलब्ध करवाया जिसके अचित्त प्रकाश मे रात्रि में ग्रथ रचना प्रारभ की और कुछ ही समय मे विविध विषयों पर 1,444 ग्रंथो की रचना कर डाली।

इस प्रकार ज्ञान-प्रसार मे सहयोगी बनने वाले महानुभावों के प्रयत्नो से ही आज जैन-साहित्य की श्री-समृद्धि सुरक्षित रही है और सदा विस्तार पाती रही है।

थराद (गुजरात) के आभु सिघवी ने तीन करोड़ रुपया खर्च करके हजारों शास्त्र लिखाये। कई शास्त्र स्वर्णाक्षरों में तथा बाकी शास्त्र स्याही से लिखवाकर ज्ञान भंडारों में सुरक्षित किये।

महाराज कुमारपाल के विषय मे कहा जाता है कि उन्होने 700 लिपिकारो को वेतन पर रखा। जिन्हें राजकोष से पूर्ण आजीविका और भत्ता मिलता था। उनसे आगमों की छह लाख छत्तीस हजार प्रतियॉ लिखवाई। आचार्य श्री हेमचन्द्र जी द्वारा रचित साढे तीन करोड़ श्लोको की 21 प्रतियॉं करवाई और अलग-अलग नगरों मे 21 ज्ञान भंडार बनाये जिन्हें वहॉ पर सुरक्षित रखा गया। स्वयं कुमारपाल ने 60 वर्ष की उम्र मे संस्कृत व्याकरण सीखी।

इतिहास के पृष्ठ साक्षी हैं कि श्रद्धालु श्रावकगण सद्‌गुरुओ के मुख से व्याख्याप्रज्ञप्ति आगम को सुनते थे तो श्रद्धाभाव से विभोर हो एक-एक प्रश्न पर एक-एक स्वर्णमुद्रा निकालकर ज्ञान-खाते में ज्ञान-वृद्धि हेतु दान मे प्रदान करते थे। इस प्रकार 36000 स्वर्ण मुद्राएं समर्पित कर व्याख्या प्रज्ञप्ति को श्रद्धालुओं ने सुना है। श्रद्धा के कारण ही व्याख्या प्रज्ञप्ति के पूर्व "भगवती" विशेषण प्रयुक्त होने लगा और शताधिक वर्षों से तो भगवती

विशेषण न रहकर स्वतंत्र नाम हो गया है।

कहते है–इन छत्तीस हजार स्वर्ण मुद्राओं से पुन आगम लिखवाये गये और योग्य स्थानो पर सात ज्ञान भंडार बनाकर वहॉ उन आगमो को सुरक्षित रखा।

इतिहास मे इस प्रकार अनेक ऐसी घटनाएँ है, जिनसे यह जाना जा सकता है कि उस समय शास्त्र लिखाना परम पवित्र श्रुत सेवा मानी जाती थी।

वर्तमान मे भी आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म सा ने 32 सूत्रो का हिन्दी अनुवाद किया, आचार्य श्री आत्माराम जी म सा ने भी अथक् परिश्रम करके जैन-आगमो पर हिन्दी के भाष्य लिखे, टीकाएं लिखीं। आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म सा. के अक्षर मोती सदृश सुन्दर थे, उन्होने अपने सुन्दर हस्त लेख से उन्नीस शास्त्र लिखे। इस प्रकार श्रुत सेवा करके जिन-जिन महापुरुषो ने जिनशासन की गरिमा एवं महिमा को अक्षुण्ण रखा, उन सभी का हमारे पर महान् उपकार है, जिन्होने नष्ट होते हुए श्रुतज्ञान की रक्षा मे अपना तन-मन-धन अर्पित कर दिया।

आज ज्ञान पंचमी के दिन हम स्वय सकल्प करे कि हम ज्यादा से ज्यादा स्वाध्याय करके ज्ञानी बनें, ज्ञान की आराधना, ज्ञान के साधन शास्त्र, ज्ञानदाता गुरु के प्रति आदर सम्मान-बहुमान का भाव रखे। ज्ञान-प्राप्ति के लिए सदैव जिज्ञासु एवं विनयशील बने। ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने, दूसरो को ज्ञान सिखाने मे उदार दिल रखे। ये सब आत्मा मे विद्यमान ज्ञान को प्रगट करने के उपाय हैं।

प्रभु महावीर ने फरमाया है कि–"**पढमं नाणं तओ दया**" पहले ज्ञान प्राप्त करो फिर तदनुसार आचरण करो। ज्ञान आत्मा स्वाभाविक गुण है परन्तु क्रिया आत्मा का गुण नहीं है। मूल गुण ज्ञान है। ज्ञान प्राप्त होने पर क्रिया की शुद्धता, क्रिया मे पुरुषार्थ स्वय आता है। हजारो सूर्य के प्रकाश से अधिक ज्ञान का सूर्य महा तेजस्वी है। सूर्य का प्रकाश तो दिन मे होता है जबकि ज्ञान तो रात-दिन सदाकाल प्रकाशित रहता है। सूर्य तो ऑख वालो को ही प्रकाश देता है, जबकि ज्ञान ऑखहीन अंधे को भी प्रकाश देता है। ऑख के अधे को तो सारा संसार देख सकता है किंतु ज्ञान के अन्धेपन को तो ज्ञानी ही देख सकता है। अज्ञानान्धकार को नष्ट करने मे एक मात्र

समर्थ ज्ञान ही है। विभाव मे भटकने वाली आत्मा को स्वभाव में स्थिर करने वाला कोई है तो वह है ज्ञान। शास्त्र मे ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा है।

सुयं तइयं चक्खु।

श्रुतज्ञान तीसरा नेत्र है। श्रुतज्ञान के द्वारा जीव संसार के स्वरूप को समझ सकता है। शुभाशुभ कर्मो का बंधन कैसे होता है और वे बंधन किस प्रकार टूटते है, यह बात भी ज्ञान द्वारा ही समझी जा सकती है। ज्ञान के द्वारा ही आत्मा मे स्व-पर का विवेक जागृत होता है। ज्ञान हीन जीवन वीरान् जंगल है और ज्ञान सहित जीवन फलो से झुके वृक्षो के जंगल जैसा हरियाला है। व्यवहार चूलिका मे कहा गया है–"**सव्व जगुज्जोयकरं नाणं, नाणेण नज्जए चरणं**'–समस्त संसार मे उद्योत करने वाला ज्ञान परम सूर्य है। इसी के प्रकाश में मनुष्य गति कर सकता है, चरण आगे बढा सकता है। ज्ञान से चरण का बोध होता है। यहाँ चारित्र को चरण कहा है। जीवन मे ज्ञान की आवश्यकता दिखाने के लिए उत्तराध्ययन सूत्र के 28वें अध्ययन मे प्रभु ने फरमाया कि–"**नाणेणं विणा न हुंति चरणगुणा**"–ज्ञान बिना चारित्र नहीं होता है तथा दूसरी बात–"**जहा सूई सुसत्ता पडिया ण विणस्सइ तहा जीवे सुसत्ते संसार ण विणस्सइ।**" (उत्तराध्ययन सूत्र 29वां अध्ययन)

जिस प्रकार धागे मे पिरोई सूई हाथ से गिर जाने पर गुम नहीं होती है। उसी प्रकार सम्यक् ज्ञान रूपी धागे में पिरोई आत्मा चतुर्गति रूपी ससार मे नहीं भटकती है।

गीता में कहा है–"**ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुते क्षणात्**" ज्ञान रूपी अग्नि कर्म रूपी ईधन को क्षण भर मे भस्म कर देती है। और भी "**नाण संपन्नयाएणं जीवे सव्व भावाहिगमं जणयइ।**"– ज्ञान सम्पन्नता से सभी पदार्थो का ज्ञान होता है।

जड़-चेतन का सच्चा ज्ञान इसान को मृत्युंजय बना सकता है। सच्चा ज्ञान समुद्र के बिना प्राप्त अमृत है। औषध हीन रसायन है। किसी की अपेक्षा नहीं रखने वाला ऐश्वर्य है। ज्ञानामृत का पान करने वाला अमर वन जाता है। ज्ञान अनमोल रसायन है। अनेक औषध का मिश्रण करे, तव रसायन बनता है। वह रसायन रोग का नाश करे या न करे मगर ज्ञान जो औषधहीन रसायन है, इस रसायन को आत्मसात् करनेवालों के तो भव रोगों

का नाश हो जाता है। ज्ञान का रसायन पीने से कायर से वीर और वीर से महावीर बन सकते है। ज्ञान ऐसा ऐश्वर्य है कि जिसे किसी की अपेक्षा नहीं है। ज्ञानियो को कोई भय नहीं रहता है न ज्ञान को कोई चोर लूटेरे लूट सकते है। ज्ञान तो जितना-जितना खर्च करेगे उतना-उतना बढता जायेगा।

भगवान् महावीर से पूछा गया कि—"ज्ञान कैसे मिलता है ? ज्ञान प्राप्ति का उपाय क्या है ?"

तब प्रभु ने फरमाया कि ज्ञान-प्राप्ति तीन तरह से हो सकती है—

सह सममइयाए

पर वागरणेणं

अन्नेसिं वा अंतिए सुच्चा

—आचारांग सूत्र

किसी को स्वत. चिन्तन-मनन करने से, अपने सहज क्षयोपशम या बौद्धिक स्फुरणा से ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। कुछ बालक बचपन से ही इतने प्रतिभाशाली बुद्धिमान होते हैं कि उनकी प्रखर बुद्धि बडी चमत्कारी आश्चर्यजनक लगती है। उनका ज्ञान स्वत भीतर से जागृत होता है। जैसे भूमि के भीतर से जल स्रोत से पानी का प्रवाह फूटकर बाहर आता है वैसे ही उनके अन्तर हृदय से ज्ञान स्वत प्रकट होता है। वह ज्ञान है स्व सममति अर्थात् अपनी सम बुद्धि शात व स्थिर मन रहने से स्वत· बुद्धि का विकास होता है।

दूसरा प्रकार है—"**पर वागरणेणं**"—दूसरो की वाणी सुनकर। तीर्थकर या ज्ञानी के वचन से उनकी वाणी सुनने से ज्ञान स्फुरित होता है।

तीसरा प्रकार है—"**अन्नेसिं वा अंतिए सुच्चा।**"—अन्यो के समीप से सुनकर ज्ञान होना।

ज्ञान हमे कभी विरासत मे नहीं मिलता है, स्वयं की साधना से, क्षयोपशम से प्राप्त होता है। विनय से फलीभूत होता है। जिज्ञासा और विनय ही ज्ञान की जननी है। जिज्ञासु हमेशा ज्ञान प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है, सत्य को पाने की चेष्टा करता है। केवल पुस्तकीय ज्ञान ही ज्ञान नहीं है। पुस्तकीय ज्ञान अक्षर-ज्ञान है। अक्षर ज्ञान से मनुष्य साक्षर बनता है। साक्षर व्यक्ति में यदि आत्म-बोध न हो, विवेक विनय न हो तो वह साक्षर

का उलटा राक्षस भी बन सकता है। किंतु जो ज्ञान आत्मा के भीतर से प्रकट होता है वही ज्ञान सच्चा एवं आनंददायी होता है।

एक संत जिन्हे 12 वर्ष तक ''धम्मो-मगल'' मुक्किट्टं'' एक गाथा याद नहीं हुई। एक चरण याद होता और आगे का चरण याद करते, जितने पिछला चरण भूल जाते। लगन थी, पुरुषार्ष था, पर प्रबल ज्ञानावरणीय कर्म का उदय। कुछ भी याद नहीं होता। गुरु चरणो अर्ज करता है, गुरुदेव ! मुझे ज्ञान नहीं चढता, कोई उपाय बताईये। गुरु कहते है–शिष्य, तुम्हे याद नहीं होता है, तो तुम जो ज्ञान-ध्यान करने वाले संत है, उन्हे सहयोग करो, उनकी आहार-पानी, वस्त्र-प्रक्षालन आदि से वैयावच्च कर उन्हें ज्ञान-ध्यान के लिए ज्यादा से ज्यादा समय दो। तुम्हारे कर्म क्षय हो जायेंगे तो फिर तुम्हें भी ज्ञान कठस्थ होने लग जायेगा। विनयपूर्वक वह शिष्य गुरु वचनों को स्वीकार कर आचरण मे लाता है। ज्ञानी सतो की सेवा मे लग जाता है। जब भी अवकाश मिलता तो उसे यह जिज्ञासा होती कि अब मेरे भी कुछ कर्म क्षय हुए होगे, अत अब मुझे भी कुछ ज्ञान कंठस्थ हो जायेगा, ऐसा विचार कर याद करने की चेष्टा करता। एक बार वह याद करने का प्रयास कर रहा था किन्हीं संतो ने हंस दिया–''अरे इतने वर्ष हो गये, अभी तक एक भी गाथा याद नहीं हुई तो अब क्या होगी ?'' बस इतना सा वाक्य उस संत के लिए कर्म-काष्ट को जलाने मे चिनगारी का कार्य कर गया। उसे इतनी अधिक आत्म-ग्लानि हुई, आत्म-पश्चाताप हुआ, स्वय के कर्मो का निरीक्षण, अनुप्रेक्षा इतनी गहराती गई कि किताब तो हाथ मे ही रह गई और भीतर मे केवल-ज्ञान की ज्योति जगमगा गई। उधर से संयोगवशात् गुरु का पधारना हुआ। पूछा–क्यो गाथा याद हो गई ? शिष्य ने कहा–''गुरुदेव याद हो गई। अगली गाथा की वांचनी दे दूं।'' ''गुरुदेव ! दे दीजिए।''

ज्योंहि गुरु ने आगे की गाथा की वांचनी दी। शिष्य ने कहा– ''गुरुदेव ! याद हो गई, सुन लीजिए।''

गुरु को आश्चर्य। अरे एक गाथा इतने वर्षो में याद नहीं हुई और यह गाथा अभी वांचनी दी और सिर्फ वांचनी सुनकर ही याद हो गई। कहा– सुनाओ।

शिष्य ने एकदम शुद्ध उच्चारण से बिना स्खलित हुए सुना दी।

तब गुरु ने पूछा–आपको कुछ ज्ञान हो गया क्या ?

भंते ! आपकी कृपा।

पडिवाई हुआ या अपडिवाई ? ''भते ! आपकी कृपा, फिर पडिवाई का क्या काम ?'' गुरु स्वय प्रबुद्ध थे।

उन्हे ज्ञात हो गया कि शिष्य को केवलज्ञान हो गया है। वे तुरन्त शिष्य के चरणो मे झुक गये। शिष्य अरिहत पद का अधिकारी बन गया। यह है–भीतर का ज्ञान जो विनय, जिज्ञासा, गुरु एव ज्ञानीजनो के सम्मान विनय वैयावच्च करने से प्राप्त होता है। ज्ञानपचमी के शुभ-दिवस पर हम भी हमारे भीतर के ज्ञान को प्रकट करने हेतु कृत-सकल्पित बने। आत्म-गुणो की ज्योति प्रज्वलित करे, जिससे हमारे भीतर केवलज्ञान की ज्योति प्रगट हो जाये।

***

14

धर्मवीर क्रांतिकारी लोकाशाह

अमावस्या के बाद पूर्णिमा आती है। ठीक वैसे ही वीर प्रभु की जन्म राशि पर लगे भस्मग्रह की परिसमाप्ति पर वीर लोकाशाह का अवतरण हुआ। वीर निर्वाण सातवीं शताब्दी के उत्तरवर्ती समय मे 12 वर्ष का भयानक दुष्काल पडा। ऐसा विकट समय आ गया था कि जवाहरात देने के बदले भी सेर जुवार नहीं मिलती थी। साधु संतों को निर्दोष आहार मिलना मुश्किल हो गया। ऐसी स्थिति में संयम को प्राणो से अधिक महत्त्व देने वाले 748 सतों ने प्राणो की बाजी लगा दी अर्थात् संथारा ग्रहण कर देह की कुर्बानी दे दी। जिन साधुओ का आत्म-बल इतना विकसित नहीं था, उन्होंने देशकाल की परिस्थिति के अनुसार अपने नियमो मे परिवर्तन कर लिया।

धीरे-धीरे आचार धर्म की मर्यादाएँ शिथिल पड गई। जहाँ एक कमजोरी घुस जाती है वहाँ दूसरी कमजोरियो को स्थान मिल जाता है। धीरे-धीरे साधु संघ में अनेक विकृतियाँ आ गई। मठ बनने लगे। चैत्यवाद का श्री गणेश हो गया। स्मारक, छत्रियाँ, पगलिये बनने लगे। जड पूजा को स्थान मिला, चढावा लिया जाने लगा। मंत्र, तंत्र, जादू, टोना और चमत्कारो का आश्रय लिया जाने लगा। यतियो ने जायदाद रखना प्रारंभ कर दिया। राजसभाओ मे जाकर चमत्कार बताकर पालखी और अन्य राज्य सम्मान प्राप्त किये जाने लगे। धर्म के नाम पर व्यक्तिगत पूजा और पाखंड तथा आडम्बर अत्यधिक फैल गया। धर्म गुरु खूब मनमानी करने लगे। शिथिलाचार चरम सीमा पर पहुच गया। धर्म का प्रकाश पाखड के पर्दे से मंद हो गया। ऐसे अंधकार के समय मे जव पाखंड और आडम्बर रूपी अमावस्या ने शुद्ध सनातन जैन धर्म के चन्द्र को ग्रस लिया था तव अंधकार में प्रकाश करने वाले वि सं 1472 कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि में गगन मंडल में चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण क्लाओ से उद्योत कर रहा था, इधर सिरोही जिले के अरहट्वाडा ग्राम में, गंगा के समान पवित्र माता गंगादेवी की कुक्षी से एक नवीन

चन्द्र का उदय हुआ। जैसे पूर्णिमा का चन्द्र रात्रि के स्थूल अधकार को नष्ट कर रहा था। वैसे ही उदीयमान लोकचन्द्र का उदय भी धर्म के क्षेत्र मे फैले अंधकार को नष्ट करने के लिए हुआ था।

पिता हेमाशाह एवं जिनकी माता गगा देवी यथानाम तथागुण सम्पन्न हो तो उस बालक की विशेषता, विलक्षणता और विचक्षणता के सबध मे कहने की आवश्यकता नहीं रहती। योग्य माता-पिता की सतति प्राय सुयोग्य ही होती है। यह लोकचन्द्र वस्तुत. लोक के लिए चन्द्र रूप ही सिद्ध हुआ। माता-पिता ने नाम रखा–लोकाशाह । कितना विराट रूप है इस नाम का। लोक का शाह। सचमुच वह किसी स्थान विशेष का शाह न होकर समस्त ससार का शाह बन कर आया। वे आत्मक्राति एवं मानवोद्धार की उदात्त भावना के साज-बाज के साथ आये।

लोकाशाह बावडी, तालाब, कुऑ बनकर नहीं आये, परन्तु मेघ बनकर आये। मेघ लाते है पानी और ये लेकर आये भगवद् वाणी।

लोकाशाह के हम क्या गुण गाये ? उनका जितना उपकार माने उतना थोडा है। कोई रणवीर बनकर आते है, कोई कर्मवीर बनकर आते हैं, पर लोकाशाह आये धर्मवीर बनकर। आये धर्मवीर, लाये शुद्ध श्रद्धा का नीर। जिन तथाकथित गुरुओं के हृदयो पर विषय-वासना का जग चढा हुआ था उसे भंग करने के लिए लोकाशाह आये। जो जनसमुदाय जड-उपासना मे चैतन्य को भूल रहा था उन्हे चैतन्य-उपासना की सच्ची राह बताने के लिए लोकाशाह अवतरित हुए।

अन्य धर्मावलम्बियो के महापुरुष पापियो का सहार करने के लिए आते है, परन्तु हमारे महापुरुष सहार के लिए नही अपितु उद्धार के लिए आते है। वे मारने के लिए नहीं अपितु तारने के लिए आते है। लोकाशाह एक कुशल वैद्य बनकर आये। वे बीमारी मारने आये और बीमार को तारने आये।

लोकाशाह के जन्म से माता पिता को अपार हर्ष हुआ। चारो ओर से बधाइयॉ आने लगी। खुशियां मनाई गई। यथासमय पढने के लिए पाठशाला मे प्रविष्ट हुए। विद्याध्ययन समय से ही आपमे तीन विशिष्ट गुण विद्यमान थे–

1. तीव्र स्मरण शक्ति 2 अद्‌भुत विवेचन अभिव्यक्ति 3 सुन्दर मुक्ता सी झिलमिलाती लिपी।

योग्य अवस्था आने पर आपने अपना पैतृक व्यवसाय संभाला। योग्य व्यक्ति जिस किसी क्षेत्र मे उतरता है उसमे सफलता हासिल करता है। थोडे ही समय मे लोकाशाह की गिनती प्रसिद्ध जौहरियो में होने लगी। आपकी पत्नी का नाम सुदर्शना था तथा पुत्र का नाम पूर्णचन्द्र था। सिरोही राज्य मे अकाल पडने एवं राज्य व्यवस्था बिगड जाने पर आप अहमदाबाद आ गए और मुहम्मद शाह के दरबार मे अपनी योग्यता से दरबारी जौहरी बन गए।

किसी समय मुहम्मदशाह के पास सूरत के दो जौहरी आये। वे दो मोती लाये। उनका मूल्य लाख-लाख रुपया बताया। बादशाह ने जौहरियो को बुलाकर परीक्षा करवाना चाहा। शाही दरबार लगा। जौहरियो ने मोतियो को देखकर लाख-लाख का मूल्य ठहराया। लोकाशाह ने मोतियो को देखा। परीक्षा करके उन्होने कहा—जहॉपनाह ! इसमे एक मोती तो सचमुच अमोल है, परन्तु दूसरा कोड़ी का भी नहीं है। इसमे पानी नहीं है। पानी से ही मोती की, जिन्दगी की और कुएँ की कीमत है। जिस कुएँ मे पानी नहीं, जिस जिन्दगी मे पानी (इज्जत) नहीं और जिस मोती मे पानी (आब) नहीं, वह किसी काम का नहीं। बादशाह ने दूरबीन से जांच करवाई तो लोकाशाह की परीक्षा सत्य प्रतीत हुई। लोकाशाह के प्रति बादशाह का आदर-भाव विशेष बढ गया। उनको विशेष रूप से सम्मानित किया गया।

अभी तक लोकाशाह पत्थरों के परीक्षक रहे पर उस समय कौन जानता था कि यह रत्नो का पारखी आगे चलकर इंसानों के भी परीक्षक बन जाएगा ?

बादशाह के साथ नजदीक का सम्पर्क होने से राजपरिवार की समस्त घटनाओं का हाल लोकाशाह को विदित रहता था। कालान्तर में ऐसी घटना घटी जिसने लोकाशाह के जीवन की दिशा बदल दी। दुनियॉ में धन और सत्ता ऐसी बुरी बला है कि इनके कारण अनेकों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। सत्ता और धन के लोभ में आकर इन्सान अपना कर्त्तव्य अकर्त्तव्य सब भूल जाता है। न वह स्वजन की परवाह करता है न ही नीति और अनीति की। राज्य के लिए पुत्र के द्वारा पिता की हत्या कोई नई बात नहीं थी, मुहम्मदशाह के पुत्र कुतुबशाह ने जब अपने पिता की हत्या कर दी तो लोकाशाह को बहुत झटका लगा। दुनियादारी से उनका चित्त एकदम खिन्न हो गया। दुनियाई रिश्तों की कैसी मिथ्या भ्रमणा है, कितनी स्वार्थ पूर्ण है यह रिश्तेदारी।

राजस्थान पत्रिका मे बड़े-बडे अक्षरो में लिखा मिला-''**कौन रखे, "माँ" को, इसलिए मार डाला।**'' दृष्टि गिरी पढा कि बाडमेर-11 मार्च 2006। जिस मां ने सात बेटो को पाल पोस कर बडा किया और खुद कष्ट सहकर उनको सुखी बनाया, उसे क्या मालूम था कि एक दिन बेटे केवल इसलिए उसे मौत के घाट उतार देंगे कि इस 'बुढिया' को साथ रखे कौन ? जिले के बायतु क्षेत्र मे कलयुगी औलादो द्वारा मा को मौत के घाट उतारने का मामला उजागर हुआ।

मानवीय संवेदनाओ को बींधने वाली यह घटना एक माह पूर्व हुई। 70 वर्षीय इस महिला के सात बेटे और बहुएँ है। गत लम्बे समय से परिवार मे इस बात की लडाई चल रही थी कि 'मॉ' को साथ कौन रखे ? कलह इस कदर बढ गया कि एक दिन बेटो और बहुओ ने मॉ का गला घोट दिया। बुजुर्ग महिला के मरने पर किसी ने संदेह नहीं किया और सामान्य मृत्यु समझकर अतिम सस्कार कर दिया। इसके बाद पुन· परिवार मे कलह शुरु हो गया कि ''मॉ'' का बारह-दिन यानी मृत्युभोज कौन करेगा ? बहुएँ इस कदर लडी कि गाव मे बात फैल गई। हत्या की बात चर्चा मे आते ही गाव के लोगो ने इस परिवार के यहॉ आना-जाना बंद कर दिया। तथा समाज से, उन्हे बाहर कर दिया। मामला बढता देख वे कलयुगी बेटे गाव के मुखिया के सामने नतमस्तक हो गये और कबूल कर लिया कि ''उन्होने मॉ को मारा है।'' गाव ने इस घिनोने कृत्य पर पूरे परिवार पर सामाजिक जुर्माना किया। हालाकि गांव की पचायती गांव मे ही निपट गई, पुलिस को कोई भनक ही नहीं लगी।''

जब ऐसी-ऐसी रोमांचक घिनौनी घटनाएँ आए दिन सुनते रहते है तो भी सामान्य इन्सान सांसारिकता मे ही आकठ डुबा रहता है। जबकि भव्य आत्माओ को तो एक निमित्त ही विरक्ति के लिए पर्याप्त होता है।

लोकाशाह एक ऐसी ही महान् विभूति थी, बस इस एक दर्दनाक घटना से ही उन्हे ऐसा मार्मिक आघात पहुचा कि वे अपना सब कारोबार समेट कर अहमदाबाद से पाटण चले आये, वहॉ पर निवृत्ति का जीवन व्यतीत करने लगे। वे किसी एक अवसर की प्रतिक्षा मे थे कि जिसे हस्तगत कर मानव सेवा के कार्य मे जुट सके। संयोगवश ऐसा अवसर सहज ही प्राप्त हो गया।

एक बार लोकाशाह कुछ लेखन कार्य कर रहे थे उस समय यति ज्ञानसुंदर जी आपके यहॉ पधारे, आपके मोती सरीखे अक्षर देखकर कहा-

''मेरे पास जीर्ण-शीर्ण शास्त्र की प्रतिया हैं, उन्हें तुम तुम्हारे मोती जैसे अक्षरो मे लिपीबद्ध करदो तो भारी श्रुत सेवा होगी।'' लोकाशाह ने स्वीकृति देकर लेखन कार्य करना शुरू कर लिया। यति जी से शास्त्र लाते और उसका लेखन करते। कहते है कि ''दवाई देते कम्पाउन्डर भी डॉक्टर के समान अनुभवी हो जाते है।'' ठीक वैसे ही शास्त्रो का लेखन करते-करते विचक्षण बुद्धि वाले लोकाशाह को शास्त्रो का मर्म समझ में आने लगा। दशवैकालिक का आलेखन करते समय साधु के आचार-मर्यादाओं का वर्णन उनके पढने में आया। उन्होने विचार किया—कहॉ तो साधु मुनिराजो के लिए शास्त्र में बताई गई, आचार मर्यादाऍ और कहॉ वर्तमान में इन साधुओ का आचरण ? दोनो मे आकाश-पाताल का अन्तर है। अहो ! शुद्ध चारित्र धर्म का लोप हो रहा है। यह नितान्त अवांछनीय है। प्रभु महावीर का शुद्ध सनातन धर्म, मिथ्या आडम्बरो एवं पाखंड से दूषित किया जा रहा है। धर्म की रक्षा करने की बागडोर जिनके हाथ में है वे ही गुमराह हो रहे हैं और दूसरों को गुमराह कर रहे है। सर्वत्र जडवाद, आडम्बर, व्यक्तिगत पूजा-प्रतिष्ठा, मठ, जायदाद आदि का बोलबाला है। वैराग्य, आध्यात्म एवं आत्म-साधना की इनमे झलक भी नहीं है। मेरा सौभाग्य है कि—मुझे जिनवाणी पढने और उसके मर्म को समझने का यह भव्य प्रसंग प्राप्त हुआ। उन्होंने प्रत्येक शास्त्र की दो-दो लिपियॉ तैयार कर 1-1 प्रति यतिजी को दे दी और एक-एक अतिरिक्त नकल अपने पास रखली। उस पर चिन्तन-मनन करने से उनमें एक जागृति का भाव पैदा हुआ। उन्होंने सोचा—मेरा यह नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि मै जनता के सामने शास्त्रोक्त वास्तविकता प्रकट करूँ। गलत मार्ग पर जाती हुई जनता को शुद्ध आचार-मर्यादाओं की जानकारी दूँ।

निस्संदेह यह कार्य कठिन है। विशाल जनसमूह की रूढिगत परम्परा के विरूद्ध बोलना साधारण बात नहीं है। इसमें अनेक कठिनाईयॉ हैं। परन्तु कुछ भी हो, मुझे जो सत्य-दर्शन हुआ है, वह जनता के सामने रखना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। इस शुद्ध श्रद्धा प्ररूपणा में मुझे भले ही बलिदान हो जाना पडे, मै यह अवश्य करूंगा। लोकाशाह ने दृढ संकल्प कर लिया। विरोध कठिनाई और निराशा से व्याकुल न होते हुए उस निर्भीक शेर ने सत्य धर्म का सिहनाद करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने यह स्पष्ट उद्घोषणा की कि— ''यह जडोपासना आत्मा का उद्धार करने वाली नहीं है। चैतन्य-उपासना से

ही आत्म-कल्याण संभवित है। आप सभी धर्म के मर्म को समझो। बाह्य क्रियाकाड मात्र से धर्म की आराधना नहीं हो जाती। इस सिंहनाद से चैत्यवाद, जडवाद की नींव हिल गई। मन्दिरो और मठो के सत्ताधीशो के आसन डोल गये। परम्परागत धारणाओ को आघात लगा। धर्म की ओट मे पेट भरने वाले और दुकानदारी चलाने वाले लोगो की दाल गलने मे बाधा पहुँची। वे सभी बौखला उठे। लोकाशाह को नास्तिक मिथ्यात्वी और निह्नव कहने लगे। उस शेर ने कभी इसकी परवाह नहीं की और अपने दृढ संकल्प के अनुसार शुद्ध धर्म की प्ररूपणा और प्रचार मे लीन रहे।

लोकाशाह के शास्त्र सम्मत जिन धर्म के प्रचार-प्रसार से लोगो पर यथोचित प्रभाव पडा। उनके समर्थक बढते गये। पाटणसघ के बडे नेता तथा सिरोही सूरत के सघाधिपतियो ने भी आपसे सत्यधर्म को समझकर स्वीकार कर लिया। अब तो सम्पूर्ण जैन समाज मे खलबली मच गई। तब लोकाशाह स्वय अनेक करोडपति जौहरी साथियो के साथ साधु बनकर विचरण करने लगे। अनेक भव्यों ने आपसे जैनागमो का वास्तविक विवेचन श्रवण कर साधुमार्ग मे भागवती दीक्षा अंगीकार की और 22 विभागो (सगाटको) मे विभक्त होकर अलग-अलग क्षेत्रो मे विचरण हुआ। एक दूसरे सगाटको का आवागमन की कठिनाई के कारण विशेष सम्पर्क नहीं हो पाने से लम्बे समय तक अमुक क्षेत्र विशेष मे ही विचरण करने से अलग-अलग दीक्षाए होते रहने से वे ही सगाटक बावीस सम्प्रदाय अथवा बावीस टोला के नाम से प्रचलित हुए। तत्कालीन यति समाज की ओर से उनको काफी उपसर्ग भी आये। एक बार ठहरने योग्य मकान उपलब्ध नहीं होने से टूटे-फूटे मकान मे ठहरे, जिसे तत्कालीन भाषा मे ''ढूढा'' कहा जाता था उस ढूढे मे ठहरने से स्थानकवासी संतो को ''ढूंढिया'' कहकर भी पुकारा जाने लगा।

लोकाशाह की मान्यतानुसार चलने वाले सत, श्रावक-श्राविका अपने आपको लोकागच्छ के बताने लगे। इनके सानिध्य मे चार सौ से अधिक सत-सती व लाखों की संख्या मे श्रावक-श्राविका हो गए थे।

सच्चाई, तर्क, युक्ति के बल पर लोकाशाह ने धर्म की ओट मे परम्परा से निर्मित हुए पाखंड और आडम्बर के महल को कुछ ही दिनो मे धराशायी कर दिया। सत्य की अन्तत. विजय होती है। लोकाशाह का प्रभाव उत्तरोत्तर बढता गया। लोकाशाह को अपने कार्य मे सफलता मिलती गई। उस

आध्यात्मिक वैद्य ने गांव-गांव, नगर-नगर घूमकर मिथ्यात्व के रोगियों को दवाई दी। हजारों लाखों रोगियों के रोग को दूर कर शुद्ध श्रद्धा रूप आरोग्य प्रदान किया।

लोकाशाह को मिली सफलता, उनके विरोधियो की आंखो की किरकीरी बन रही थी। जगह-जगह लोकागच्छ के विरूद्ध वे अनर्गल प्रलाप करने लगे। गच्छ के श्रमणो को अनेक जगह गोचरी भी नहीं मिल पाती थी। जब दिल्ली के अनेक श्री पूज्यों को भी आपने सत्य धर्म में दीक्षित कर लिया तब तो यतिवर्ग ईर्ष्या से जल ही उठा और मौका पाकर अलवर में तेले के पारणे मे इस धर्मप्राण धर्मवीर लोकाशाह को गोचरी में विषाक्त भोजन बहराया गया, जिसे खाने से वे धर्मवीर क्रांतिकारी लोकाशाह शहीद हो गए। विरोधी यह समझते हैं कि वे ऐसे धर्मवीरों के शरीर को नष्ट कर उनका नामोनिशान मिटा देगे, परन्तु वे भयंकर भूल में हैं। शहीदों के बलिदान कभी निष्फल नहीं होते। वे देह से नष्ट हो जाते हैं परन्तु उनका कार्य उससे और अधिक चमक उठता है। उनके सिद्धान्तो और कार्यो को अधिक बल मिलता है। कुर्बानी के बाद दुनियॉ उन्हे विशेष आदर के साथ याद करती है।

धर्म प्राण लोकाशाह चले गये किन्तु अनेक शताब्दियॉ बीत जाने पर भी लाखो व्यक्ति उनको श्रद्धा के साथ स्मरण करते है और प्रतिवर्ष श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। उस महान् विभूति का अतीव उपकार है, जो आज हम भगवान के उपदिष्ट सत्यधर्म को अंगीकार कर यथाशक्ति उसका पालन करने के लिए कटिबद्ध हैं। ऐसे क्रांतिकारी धर्मवीरो से ही प्रभु महावीर का शासन 21000 वर्ष तक निराबाध चलता रहेगा।

***

15

मौन एकादशी की महिमा

पर्व पवित्रता एव श्रेष्ठता का सूचक है। जैन ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक पक्ष की पाच तिथिया पर्व एव तिथि कहलाती है। द्वितीया, पचमी, अष्टमी, एकादशी तथा चतुर्दशी एव पूर्णिमा। प्रज्ञापना सूत्र मे बतलाया गया है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि का प्रभाव भी कर्मो के उदय, क्षयोपशम भाव मे, उनके तीव्र-मद फल देने मे निमित्त बनता है। जैसे अमुक नक्षत्र मे की गई ज्ञान-आराधना, ध्यान-साधना शीघ्र लाभदायी होती है। इन्हीं पर्व तिथियो में मिगसर सुदी एकादशी एक विशेष पर्व है।

एकादशी मे 1 का अंक दो बार लिखा जाता है। गणित मे 1 से 9 तक के अक है। इसमे 1 का अंक कुछ विशेष महत्त्व रखता है। 1 यह एकाकी शक्ति है। यदि इसके पास दूसरा 1 अक रख दिया तो एका 1+1 मिलकर ग्यारह (11) हो गये। दो एक मिलते ही एक की शक्ति दस गुणी बढ गई। आध्यात्म शास्त्र मे पहला 1 अक ज्ञान का प्रतीक है। दूसरा 1 अंक आचरण का प्रतीक है। अगर अकेला ज्ञान है तो वह एक के अंक का मूल्य रखता है कितु यदि ज्ञान के साथ आचरण भी जुड़ गया तो उस ज्ञान की शक्ति दस गुणी बढ जाती है।

प्राचीन जैन साहित्य मे मार्गशीर्ष मास की एकादशी का महत्त्व बताते हुए इतिहासकारो ने लिखा है–

अस्यां चक्रीपदं हित्वा, ग्रहीदरजिनो व्रतम्।

जन्म-दीक्षा च सज्ज्ञानं, मल्ली ज्ञानं नमीश्वर:॥

मिगसर सुदी एकादशी के दिन 18वे तीर्थकर अरनाथ भगवान् ने चक्रवर्ती सम्राट का अपार वैभव त्यागकर मुनि दीक्षा ग्रहण की। 19वे तीर्थंकर मल्लीनाथ भगवान् का जन्म, दीक्षा एवं केवलज्ञान ये तीनो कल्याणक इसी एकादशी के दिन हुए तथा 21वे तीर्थकर श्री नेमीनाथ भगवान् को केवलज्ञान भी एकादशी के दिन हुआ। इस प्रकार इस

अवसर्पिणीकाल के तीन तीर्थकरों के पांच कल्याणक इस मार्गशीर्ष एकादशी को सम्पन्न हुए। आचार्य श्री हेमचन्द्र ने लिखा है कि–

''नारकाऽपि मोदन्ते यस्य कल्याण पर्वसु।''

तीर्थकर भगवान् के कल्याणक के पवित्र क्षणो मे समूचे संसार में हर्ष की लहर दौड जाती है। अतीव दुःखी नरक के जीव भी उस पवित्र क्षणो में अत्यन्त आनद और हर्ष की अनुभूति करते है। सघन अंधकारमय स्थानों में भी प्रकाश की आभा फूटती है और ऐसा महसूस होता है कि संसार मे कोई दिव्य प्रकाश फैल रहा है, झुलसती गर्मी मे कोई शीतल हवा का झौका आ रहा है। यह दिव्य प्रभाव होता है–तीर्थकरों के कल्याणक का। स्थानांग, समवायांग आदि सूत्र भी इस बात के साक्षी है कि तीर्थकरों के कल्याणक का क्षण संसार के लिए अद्वितीय, अनिर्वचनीय आनंद उल्लास एवं प्रकाश का क्षण होता है क्योंकि तीर्थकर भगवान् असीम पुण्यों के पुंज होते है। उनका अतिशय अद्वितीय होता है, इसी कारण उनके कल्याणक का महत्त्व है। कल्याणक का अर्थ ही है कल्याणकारी।

मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन जैसे तीन तीर्थकरो के पांच कल्याणक भरत क्षेत्र मे इस अवसर्पिणीकाल मे हुए ठीक वैसे जैन ग्रंथकारो की यह मान्यता है कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे जिस दिन ये पांच कल्याणक हैं, उसी दिन ऐरावत क्षेत्र मे भी इस क्रम से कल्याणक होते हैं। इस प्रकार पांच कल्याणक भरत क्षेत्र मे और पांच कल्याणक ऐरावत क्षेत्र होने से 10 कल्याणक जम्बूद्वीप मे इस दिन हुए। घातकीखंड द्वीप में 2 भरत क्षेत्र हैं 2 ऐरावत क्षेत्र है और पुष्कराद्ध द्वीप में भी 2 भरत क्षेत्र हैं। 2 ऐरावत क्षेत्र है। इस प्रकार कुल 5 भरत एवं 5 ऐरावत क्षेत्र के 10×10=50 कल्याणक हुए। ये इस अवसर्पिणी काल के 50 कल्याणक, इसी प्रकार अतीतकाल की चौबीसी और अनागत काल की चौबीसी के 50+50 और जोड़ने पर कुल 150 कल्याणक तीनो काल में इस दिन सम्पन्न होते है। यही वजह है कि मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी का दिन वहुत ही शुभ, श्रेष्ठ एवं पवित्र माना जाता है। इस दिन तप (उपवास) जप (तीर्थकर नाम की माला रूप जाप) और मौन द्वारा 150 तीर्थकरों की आराधना, उपासना की जाती है। मन, वचन एवं काय त्रय योगों से मौन एकादशी पर्व की आराधना की जाती है। मन का तप-एकाग्रतापूर्वक जाप एवं ध्यान, वचन का तप-मौन और काया का तप-

इन्द्रिय संयम रूप उपवास।

जैन कथा साहित्य में उल्लेख आता है कि एक बार भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी मे पधारे। वासुदेव श्रीकृष्ण सम्पूर्ण राज-परिवार के साथ भगवान के दर्शन करने आये, दर्शन करके देशना सुनी। उसके पश्चात् भगवान से पूछा–''भगवन् ! मै रात-दिन राज-कार्यो मे व्यस्त रहता हूँ, इसलिए धर्माराधना का विशेष समय नहीं मिल पाता है। अत मुझे कोई ऐसा एक दिन बताइये जिस दिन समग्र राज-चिन्ताओ से मुक्त होकर निर्विकल्प भावपूर्वक धर्माराधना करने से मै विशेष उत्तम फल की प्राप्ति कर सकू।''

भगवान् नेमिनाथ ने कहा–''वासुदेव ! मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी का दिन बहुत ही श्रेष्ठ और उत्तम दिन है। जिस दिन मौनपूर्वक उपवास व्रत एव तीर्थकर देवों का स्मरण चिन्तन करने से महान् फल प्राप्त होता है।

श्रीकृष्ण वासुदेव ने पूछा–''प्रभो ! अतीतकाल मे इस व्रत की आराधना किसने की है ? उसका क्या महान् फल प्राप्त हुआ ?''

भगवान् नेमिनाथ ने फरमाया कि–''घातकी खण्ड मे 'विजय-पत्तन' नामक एक नगर था, उस नगर मे सरचंद नामक धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था। सभी व्यापारियों में अग्रसर एव धर्मनिष्ठ था। एक बार पिछली रात्रि को धर्म जागरणा करते हुए उसके मन मे विचार आया कि–''मैने पूर्वभव मे बहुत सुकृत किये होगे, जिसके परिणामस्वरूप आज मे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। परन्तु यदि इस जन्म मे धर्माराधना आदि श्रेष्ठ कार्य नहीं किया तो उसके बिना भविष्य अंधकारमय रहेगा।'' इन्हीं विचारो मे अवशेष रात्रि पूर्णकर प्रात जब वह सुख शय्या से उठा, तो उसने विचार किया–आज मुझे गुरुदेव के दर्शनार्थ अवश्य जाना चाहिए। स्नानादि से निवृत्त होकर वह आचार्यश्री श्री विजयसेन जी महाराज की सेवा मे पहुँचा। दर्शन कर देशना सुनी। फिर गुरुदेव से प्रश्न किया कि–

'हे गुरुदेव ! मै अहर्निश गृहकार्यो मे व्यस्त रहने वाला मानव हूँ, मुझमे इतनी शक्ति नहीं कि सदैव व्रत या उपवास कर सकूं, अत कृपा करके मुझे कोई ऐसा दिन बताइये कि उस दिन मै धर्माराधना करके अत्यधिक पुण्योपार्जन कर सकूं।'

आचार्यश्री जी ने फरमाया–''मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन

उपवासपूर्वक अष्ट प्रहर का पौषध करके मौन सहित तीर्थकर देवों का स्मरण करना चाहिए।'' यह मौन एकादशी व्रत 11 वर्ष 11 महिने तक करना चाहिए और पॉचो कल्याणको की 21-21 माला फेरनी चाहिए।

इस प्रकार ''एकादशी-व्रत'' की महिमा सुनकर सेठ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और श्रद्धा के वंदना करके उसने एकादशी तप की साधना अंगीकार की। सम्पूर्ण परिवार सहित उसने सम्यक् प्रकार से मौन एकादशी तप की आराधना की।

आराधना के पन्द्रह दिन बाद ही सेठ के उदर मे अकस्मात् शूल की पीड़ा उत्पन्न हुई, उस असह्य वेदना को समभाव से सहन करते हुए वह मृत्यु को प्राप्त हुआ एवं 11वें देवलोक में 21 सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त की। देवलोक से चवकर भरत क्षेत्र के सौरीपुरी नगर में सुव्रत नामक सेठ बना। पूर्व जन्म के संस्कारो से वहॉ भी देव गुरु धर्म की आराधना का अवसर मिला। श्रेष्ठि सुव्रत के पास 11 करोड़ स्वर्ण-मुद्राऍ थीं। दान-लोकोपकार के कार्य मे उनकी विशेष रुचि थी।

एक बार सौरीपुरी नगर में धर्मघोष नामक आचार्य पधारे। सुव्रत श्रेष्ठी आचार्य श्री के पधारने के शुभ संवाद को श्रवण कर अतीव हर्षित हो आचार्य श्री जी की सेवा में उपस्थित हुआ और दर्शन वंदन कर वीतराग-वाणी का श्रवण किया। उस अमृतमय वाणी के प्रवाह में इतना तन्मय बनें कि शुभ परिणामों से जाति स्मरण-ज्ञान की प्राप्ति हुई।

आचार्यश्री ने प्रश्न किया–सेठ जी ! कुछ उपलब्धि हुई ?

सेठ ने कहा–''हॉ भगवन् ! आपकी कृपा से बहुत कुछ प्राप्त हुआ। पहले भव मे मैने मौन एकादशी के व्रत का पालन किया था। उसके प्रभाव से मै 11वें देवलोक मे उत्पन्न हुआ, वहॉ से चवकर श्रेष्ठि कुल में जन्मा और 11 करोड़ स्वर्ण मुद्रा का स्वामी बना हूँ। भगवन् ! अव मैं कौनसा शुभ कार्य करूं जिससे कि उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर होता चला जाऊं ?''

आचार्य श्री ने कहा–जिस पथ पर चलने से तुम्हें अपूर्व सुख प्राप्त हुआ, उसी मार्ग की ओर कदम वढाओ।

विधिना मार्गशीर्षस्येकादशी धर्ममाचरेत्।
यदेकादशभिर्वर्षैरचिरात्स शिवं भजेत्॥

अर्थात्–''जो आत्मा मिगसर मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन विधि सहित 11 वर्ष 11 माह तप का समाचरण करता है, वह अल्पकाल मे ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।''

आचार्यश्री के श्रीमुख से पुन ''मौन एकादशी'' के व्रत पालन का आदेश प्राप्त होने पर हर्षित होकर उस श्रेष्ठि ने परिवार सहित मौन एकादशी व्रत चौविहार उपवास प्रतिपूर्ण पौषध सहित मौनपूर्वक करने का व्रत लिया।

एक बार मिगसर मास की शुक्ला एकादशी के दिन सुव्रत सेठ ने परिवार सहित अष्ट प्रहर का प्रतिपूर्ण-पौषध परिवार-सहित उपाश्रय मे किया हुआ था। जब तस्करों को मालूम हुआ कि सेठ समस्त परिवार सहित पौषधशाला मे है, घर मे कोई भी नहीं है, अत: ऐसा मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

यह सोचकर वे चोर सेठ के मकान पर पहुंच गये। उस समय सेठ जी अपने मकान के पास ही उपाश्रय मे 'लोगस्स' का ध्यान किये हुए खड़े थे। चोर धन की गठरियां बांधकर सिर पर रखकर जाने लगे। ज्यो ही सेठ जी का ध्यान पूर्ण हुआ तो उन्होने चोरो को धन की गठरियां ले जाते हुए देखा।

सेठ ने मन ही मन विचार किया कि ये जो धन जा रहा है, वह मेरा नहीं है, मेरा धन तो मेरे पास है। इसका कोई हरण नहीं कर सकता, इसे कोई बाट नहीं सकता। वह शाश्वत है, स्वाधीन है, अविच्छिन्न है, समता-शाति को देने वाला है। इस बाह्य धन से मेरी आभ्यन्तर सम्पत्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है। पर दुनियां आक्षेप करेगी कि ''धर्म करते धाड़ पडी।'' अत धर्म पर कोई आक्षेप नहीं आये, यही जिनेश्वर देव से प्रार्थना है।

ज्यों ही सेठ के मन मे यह विचार आया त्यो ही इन्द्र का आसन चलायमान हुआ। उसने अवधिज्ञान से सर्व वृत्तान्त देखा, फिर सोचा।

''सहधर्मी की व धर्म की रक्षा करना, कराना मेरा परम कर्त्तव्य है, अत. उसने लोकपाल को बुलाकर कहा–''जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में शौरीपुर नगर मे जाओ। वहां सुव्रत सेठ अपने परिवार-सहित मौनावलम्बी हो प्रतिपूर्ण पौषधव्रत किये हुए पौषधशाला मे बैठा है। चोर उसके घर से धन हरण कर ले जाने की तैयारी मे है, तुम शीघ्र जाकर उसके धन का संरक्षण करो।

इन्द्र का आदेश पाते ही लोकपाल ने शीघ्र आकर चोरो के पांव धरती के साथ चिपका दिये। अब वह प्रयत्न करने पर भी चल नहीं पा रहे थे।

सारे शहर में यह समाचार फैल गया। जब वहॉ के राजा ने भी यह सुना तो वह स्वयं वहां उपस्थित हुआ, लेकिन चोरों को चित्रवत् खड़े देखकर राजा के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। शनैः शनैः जब राजा को सम्पूर्ण रहस्य ज्ञात हुआ तो सपरिवार एवं मंत्री सहित उन्होने भी जैनधर्म अंगीकार कर लिया और चोरों को बन्धन मे डाल दिया।

सेठ ने अष्ट प्रहर का पौषधव्रत पूर्ण होने पर सोचा–''इन चोरो का जीवन बिगड़ जायेगा, इसलिए मै पहले जाकर इन्हें बन्धन से मुक्त करवाऊं, उसके पश्चात् पारणा करूंगा।''

वह सेठ बहुमूल्य रत्न लेकर राजा के पास गया। रत्न भेट करते हुए विनय-सहित नमस्कार करके बोला–''महाराज ! ये चोरे मेरे परम उपकारी है, इनके द्वारा ही मेरी धर्म-परीक्षा हुई कि मै धर्म-साधना मे कितना दृढ हूं ? परीक्षण का उपकार कैसे भूलाया जा सकता है ? अतः ये मेरे परम उपकारी है, इसलिए हे राजन् ! आप इन्हें बन्धन से मुक्त करिये।

सेठ ही इस उदात्त एवं उदार भावना को देखकर राजा ने अतीव प्रसन्न होकर चोरों को मुक्त कर दिया।

चोरो को बोध देते हुए राजा ने कहा–''तुम्हे बन्धन से मुक्त करने में सेठ की उदारता व दया-भावना ही निमित्त वनी है। तुम्हें सेठ का उपकार कभी नहीं भूलना चाहिए।

सेठ की दया व अनुकम्पा से चोर वहुत प्रभावित हुए और सेठ के श्रीचरणों मे नत-मस्तक होकर प्रतिज्ञा की कि ''आज से हम कभी भी चोरी नहीं करेंगे, हम समस्त व्यसनों का हृदय की साक्षी से त्याग करते हैं। आपने हमे इन बन्धनो से ही नहीं, वल्कि दुराचार के वन्धनों से भी मुक्त किया है। आपका उपकार हम कभी भूल नहीं सकते।''

सेठ के द्वारा किये गये इस प्रशस्त कार्य से राजा प्रजादि अति प्रभावित हुए और सबने सेठ को सम्मानपूर्वक घर पहुंचाया।

कुछ समय पश्चात् फिर ''मौन एकादशी व्रत'' समस्त परिवार के किया हुआ था। तव रात्रि को सारे शहर में आग लग गई। आस-पास के

सभी घर जल कर भस्म हो गये। नगर मे कोलाहल मच गया। जब आग बुझाने के सभी प्रयत्न विफल हुए तो जिसको जिधर सुरक्षा का मार्ग मिला, वह उधर ही भागने लगा।

कुछ शुभ-चितक व्यक्ति पौषधशाला मे सेठ के पास आकर बोले- "सेठ जी ! अग्नि बडा उग्र रूप ले रही है, अत आप सपरिवार यहा से चले जाइये। यह हम अवश्य जानते है कि आप पौषध व्रत मे है, पर प्रत्येक व्रतो मे -'सव्व समाहिवत्तियागारेणं' कह कर आगार रखा ही जाता है, अत आप निकलने मे विलम्ब मत करे।"

सेठ ने दृढता से कहा– "आगार तो कायरता का लक्षण है। मुझे तो आत्म-भाव मे रहना है। जो जलता है वह मेरा नहीं जलता। मेरा जो है वह न तो आग से जल सकता है और न पानी से गल सकता है।"

इस प्रकार धर्म की दृढ भावना मे आत्मा को लगाये वे निर्भीकता से पौषधशाला मे ही बैठे रहे।

सेठ की धर्म दृढता से उनके दुकानादि समुद्र के मध्य टापू की भाति सर्वथा सुरक्षित रहे।

पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभाव से सेठ जी बहुत आनन्द से समय व्यतीत करते रहे। ग्यारह पुत्र भी सेठ जी की बहुत विनय-भक्ति किया करते थे। नम्रता ही उनके जीवन का ध्येय था।

एक समय वृद्धावस्था के पदार्पण से सिर के श्वेत केश देखकर सुव्रत सेठ विचारने लगे।

– "अरे ! काल का संदेश आ गया है। अब सभलने की आवश्यकता है। अब भी यू ही अगर समय व्यतीत हो गया तो पश्चाताप ही पल्ले पडेगा। अत. अब परिवार को समस्त कार्य सौप कर सर्वारम्भ का परित्याग कर मेरे लिये सयमी बनना ही श्रेयस्कर है।"

मानव की दृढ निष्ठामयी भावना कभी विफल नहीं होती। सयोगवश उसी नगर मे श्री सुव्रताचार्य जी का पदार्पण हुआ। सेठ जी आचार्य श्री के शुभागमन का समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। मानो अन्धे को नेत्र, भूखे को भोजन, प्यासे को जल या भक्त को भगवान मिल गये हो।

धर्म-भावना की प्रेरणा से आकृष्ट हो, परिवार सहित सेठ जी

आचार्य श्री को वन्दन करने गये। आचार्य श्री ने धर्म देशना मे प्ररूपित किया–

"आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम दुल्लहा।"

(उत अ. 3 गाथा 9)

कदाचित् पुण्य के योग से शास्त्र-श्रवण करने का सुयोग मिल जाये, परन्तु उसमे श्रद्धा होना बहुत कठिन है। तत्त्व का पूरा निश्चय देव, गुरु और धर्म की सच्ची पहचान, सत्य मार्ग मे पूरी-पूरी रुचि और प्राणीमात्र के प्रति हार्दिक प्रेम ही श्रद्धा है। इसी श्रद्धा को बोधि कहते है। वह कर्म की लघुता के बिना प्राप्त नहीं होती। ज्ञानावरणीय आदि किसी भी कर्म की स्थिति एक कोडा-कोडी सागरोपम से अधिक न हो, किन्तु कुछ कम हो तब राग-द्वेष की मजबूत ग्रथि (गांठ) खुलती है। ग्रंथि-भेद होना कर्म की लघुता का ही चिन्ह है। ग्रंथि-भेद होने से बोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

बोधि का प्रभाव इतना अधिक है कि उसने जिसको पा लिया, उसका भव-भ्रमण अधिकांश मे रुक जाता है। बोधि प्राप्त होने के बाद यदि वह स्थित रहे, तो साधक को पन्द्रह भव मे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि वह उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती है तो भी अर्द्ध पुद्गल परावर्तन में मोक्ष अवश्य ही होता है। चारित्र का मूल भी यही बोधि है। इसके बिना की जाने वाली समस्त क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं, बिना अक के शून्यों के समान हो जाती हैं। पहले एक का अंक हो, तो शून्यो की कीमत है, एक का अंक न हो तो सब शून्य बेकार हैं। इसी प्रकार बोधि-सम्यक्त्व से ही चारित्र की सफलता है। मनुष्य-भव, आर्य-क्षेत्र, उत्तम-कुल, निरोगी शरीर, परिपूर्ण इन्द्रियां, लम्बी आयु, शास्त्र-श्रवण और श्रद्धा इन सभी को दुर्लभता बतलाने का आशय यह है कि ये बहुत मूल्यवान एव दुर्लभ हे।

जो वस्तुएं अधिक कीमती होती हैं, वही दुर्लभ होती हैं। जो वस्तुए अधिक कीमती होती हैं, उन्हें पाने के लिए मन ललचाता रहता है। वे मिल जाती हैं, तो कीमती समझ कर उनकी रक्षा बडी सावधानी से की जाती है, क्योकि यदि उनके मिलने का अवसर निकल गया तो फिर बार-बार ऐसा अवसर नहीं मिलता है। फिर तो अनन्त काल व्यतीत हो जाने पर भी भाग्य से ही ऐसा सुन्दर अवसर हाथ लग सकता है। अतएव प्राप्त न हो तो उसको प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए और प्राप्त होने पर उसकी रक्षा का

प्रयत्न करना चाहिये।''

आचार्यश्री के मुख से वैराग्यमयी देशना सुन कर सेठजी ने प्रतिबोध पाया, उन्होने अपनी ग्यारह स्त्रियो सहित बडी उमग के साथ चारित्र अगीकार किया। निरतिचार चारित्र का पालन करते हुए द्वादशागी का अध्ययन किया। वे एक छ मासी तप, चार चौमासी तप, सौ तेले, दो सौ बेले, आदि अनेक प्रकार की तपश्चर्याओ मे रमण करते हुए विचर रहे थे।

वैयावृत्य करना उनका मुख्य लक्ष्य था। एक समय 'सुव्रत सैन मुनि' 'मौन एकादशी' का व्रत किये हुए थे। उस दिन एक साधु के शरीर मे सहसा दाह-ज्वर की पीड़ा हो गई थी। रात्रि का समय था। एक मिथ्यात्वी देव ने सुव्रतसेन मुनि को साधना से विचलित करने के लिये उस रोगी साधु के शरीर मे प्रवेश किया। वेदना प्रबल होती चली गई।

उस रोगी साधु ने सुव्रतसेन मुनि से कहा-''तुम सेवाभावी सन्त कहलाते हो, पर मेरे शरीर मे भयकर दर्द होने पर भी क्या तुम्हे कुछ भान नहीं हो रहा है ? क्या तुम्हे दया नहीं आ रही है ? कहा है तुम्हारा सेवा-भाव ?''

यह सुनकर सुव्रत मुनि समझ गये कि यह मुनि तो साधु मर्यादा मे पूर्ण दृढ है, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके द्वारा कोई मिथ्यात्वी देव बोल रहा है।

सुव्रत मुनि ने शान्तिपूर्वक सकेत से निवेदन किया कि-''साधु-मर्यादा है कि वह रात्रि को कहीं न जाय।''

यह सुनकर रोगी मुनि के क्रोध की सीमा न रही। क्रोधावेश मे आकर रजोहरण द्वारा सुव्रत मुनि को खूब पीटा एव एक बडा पत्थर उठाकर उन पर दे मारा। लेकिन इतना होने पर भी सुव्रत मुनि मेरु के समान अडिग रहे। अपने ऊपर दैविक उपसर्ग आया जानकर ध्यानारूढ हो गये। अध्यवसायो की विशुद्धि बढती गई आखिर क्षपक-श्रेणी पर आरोहणकर उसी रात्रि मे केवल्य ज्योति को प्राप्त कर लिया।

जब सुव्रत मुनि अपनी साधु-मर्यादा मे दृढ रहे तो देवता ने अपनी हार मान ली और मुनि के शरीर से निकलकर सुव्रत केवली के चरणारविन्दो में नतमस्तक होकर बोला-

आचार्य श्री को वन्दन करने गये। आचार्य श्री ने धर्म देशना मे प्ररूपित किया–

"आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम दुल्लहा।"

(उत अ. 3 गाथा 9)

कदाचित् पुण्य के योग से शास्त्र-श्रवण करने का सुयोग मिल जाये, परन्तु उसमे श्रद्धा होना बहुत कठिन है। तत्त्व का पूरा निश्चय देव, गुरु और धर्म की सच्ची पहचान, सत्य मार्ग मे पूरी-पूरी रुचि और प्राणीमात्र के प्रति हार्दिक प्रेम ही श्रद्धा है। इसी श्रद्धा को बोधि कहते है। वह कर्म की लघुता के बिना प्राप्त नहीं होती। ज्ञानावरणीय आदि किसी भी कर्म की स्थिति एक कोडा-कोडी सागरोपम से अधिक न हो, किन्तु कुछ कम हो तब राग-द्वेष की मजबूत ग्रंथि (गांठ) खुलती है। ग्रंथि-भेद होना कर्म की लघुता का ही चिन्ह है। ग्रथि-भेद होने से बोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

बोधि का प्रभाव इतना अधिक है कि उसने जिसको पा लिया, उसका भव-भ्रमण अधिकांश मे रुक जाता है। बोधि प्राप्त होने के बाद यदि वह स्थित रहे, तो साधक को पन्द्रह भव मे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि वह उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती है तो भी अर्द्ध पुद्गल परावर्तन में मोक्ष अवश्य ही होता है। चारित्र का मूल भी यही बोधि है। इसके बिना की जाने वाली समस्त क्रियाए निष्फल हो जाती है, बिना अंक के शून्यों के समान हो जाती है। पहले एक का अंक हो, तो शून्यो की कीमत है, एक का अंक न हो तो सब शून्य बेकार है। इसी प्रकार बोधि-सम्यक्त्व से ही चारित्र की सफलता है। मनुष्य-भव, आर्य-क्षेत्र, उत्तम -कुल, निरोगी शरीर, परिपूर्ण इन्द्रियां, लम्बी आयु, शास्त्र-श्रवण और श्रद्धा इन सभी को दुर्लभता बतलाने का आशय यह है कि ये बहुत मूल्यवान एवं दुर्लभ हैं।

जो वस्तुएं अधिक कीमती होती है, वही दुर्लभ होती है। जो वस्तुएं अधिक कीमती होती है, उन्हे पाने के लिए मन ललचाता रहता है। वे मिल जाती है, तो कीमती समझ कर उनकी रक्षा बडी सावधानी से की जाती है, क्योंकि यदि उनके मिलने का अवसर निकल गया तो फिर बार-बार ऐसा अवसर नहीं मिलता है। फिर तो अनन्त काल व्यतीत हो जाने पर भी भाग्य से ही ऐसा सुन्दर अवसर हाथ लग सकता है। अतएव प्राप्त न हो तो उसको प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए और प्राप्त होने पर उसकी रक्षा का

प्रयत्न करना चाहिये।''

आचार्यश्री के मुख से वैराग्यमयी देशना सुन कर सेठजी ने प्रतिबोध पाया, उन्होने अपनी ग्यारह स्त्रियो सहित बडी उमग के साथ चारित्र अगीकार किया। निरतिचार चारित्र का पालन करते हुए द्वादशागी का अध्ययन किया। वे एक छ मासी तप, चार चौमासी तप, सौ तेले, दो सौ बेले, आदि अनेक प्रकार की तपश्चर्याओ मे रमण करते हुए विचर रहे थे।

वैयावृत्य करना उनका मुख्य लक्ष्य था। एक समय 'सुव्रत सैन मुनि' 'मौन एकादशी' का व्रत किये हुए थे। उस दिन एक साधु के शरीर में सहसा दाह-ज्वर की पीड़ा हो गई थी। रात्रि का समय था। एक मिथ्यात्वी देव ने सुव्रतसेन मुनि को साधना से विचलित करने के लिये उस रोगी साधु के शरीर मे प्रवेश किया। वेदना प्रबल होती चली गई।

उस रोगी साधु ने सुव्रतसेन मुनि से कहा-''तुम सेवाभावी सन्त कहलाते हो, पर मेरे शरीर मे भयकर दर्द होने पर भी क्या तुम्हे कुछ भान नहीं हो रहा है ? क्या तुम्हे दया नहीं आ रही है ? कहा है तुम्हारा सेवा-भाव ?''

यह सुनकर सुव्रत मुनि समझ गये कि यह मुनि तो साधु मर्यादा मे पूर्ण दृढ है, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके द्वारा कोई मिथ्यात्वी देव बोल रहा है।

सुव्रत मुनि ने शान्तिपूर्वक सकेत से निवेदन किया कि-''साधु-मर्यादा है कि वह रात्रि को कहीं न जाय।''

यह सुनकर रोगी मुनि के क्रोध की सीमा न रही। क्रोधावेश मे आकर रजोहरण द्वारा सुव्रत मुनि को खूब पीटा एव एक बडा पत्थर उठाकर उन पर दे मारा। लेकिन इतना होने पर भी सुव्रत मुनि मेरु के समान अडिग रहे। अपने ऊपर दैविक उपसर्ग आया जानकर ध्यानारूढ हो गये। अध्यवसायो की विशुद्धि बढती गई आखिर क्षपक-श्रेणी पर आरोहणकर उसी रात्रि मे केवल्य ज्योति को प्राप्त कर लिया।

जब सुव्रत मुनि अपनी साधु-मर्यादा मे दृढ रहे तो देवता ने अपनी हार मान ली और मुनि के शरीर से निकलकर सुव्रत केवली के चरणारविन्दो मे नतमस्तक होकर बोला-

''भगवन् ! इसमें मुनि का कोई दोष नहीं, अपितु मैने ही आपकी परीक्षा निमित्त यह सब कार्य किये है, यह मुनि तो बहुत ही दृढ एवं संयम-निष्ठ है।''

देवताओ द्वारा ''श्री सुव्रत केवली'' का केवलज्ञान प्राप्ति का शुभ महोत्सव मनाया गया। सुव्रत केवली ''मौन एकादशी'' के महत्त्व का प्ररूपण करते हुए मोक्ष पधारे।

भगवान् नेमिनाथ ने वासुदेव श्रीकृष्ण को मौन एकादशी की यह कहानी सुनाकर इस व्रत का महत्त्व बताया और कहा-''प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन मौनपूर्वक तप, जप और तीर्थकरो की आराधना करनी चाहिए।''

जैन परम्परा मे जो भी व्रत विधान है, पर्व-आराधना है उसके पीछे तप, जप और त्याग का उद्देश्य रहा है। मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के पीछे भी यही भावना है। हम वचन-व्यवहार हमेशा करते हैं, परन्तु वर्ष मे एक दिन तो सम्पूर्ण मौनव्रत धारण कर मौन का आनंद लेवें।

भारतीय मनीषियो ने वाणी को वाक्शक्ति बताया है। वाणी में असीम शक्ति है परन्तु मौन मे उससे भी प्रचंड शक्ति है, इसलिए जो साधक साधनाकाल मे वाणी पर संयम रखकर मौन साधना करते है, मौन के द्वारा उनकी आत्मा के भीतर की सुप्त शक्तियां प्रचंड बनती है। मौन व्यक्तित्व को अधिक प्रभावशाली और लोकप्रिय बनाती है। शक्ति को संचित करने का एक अपूर्व साधन है-मौन। मौन से न केवल विकेन्द्रित शक्ति संचित होती है, अपितु वाणी मे बल एवं तेज भी जागृत होता है। जो जितना कम बोलता है, उसकी वाणी उतनी ही अधिक प्रभावशाली होती है। मौनी साधक जब दीर्घकाल से मौन खोलते है तो उनका पहला शब्द, पहला मंगल पाठ, उनके मुख से निसृत प्रथमवाणी कुछ अलग ही प्रभावकारी होती है। जिसका लाभ सुनने वालों को मिलता है।

मौन एक रक्षा कवच है-ज्ञानियों का भी और मूर्खो का भी। ज्ञानी-मौन रहता है तो वह उसका गुण है, भूषण है, मौन से वह अपने सत्यव्रत की रक्षा करता है। आचारांग सूत्र मे कहा है-''मौन ही सच्चा मुनित्व है। सर्वप्रियता का अचूक साधन है। मूर्ख जब तक मौन रहता है, लोग उसे समझदार समझते हैं। मूर्खता का ढक्कन है-मौन।

मौन का अर्थ है–ऊर्जा के बिखराव को समेटना। अपनी भीतरी शक्ति को सग्रहीत कर उच्च स्तरीय पुरुषार्थ मे, आत्म-अभ्युदय के श्रेष्ठ मार्ग मे लगाना। एक घंटा बोलने से जितनी शक्ति नष्ट होती है, उसे वापस प्राप्त करने मे कई घंटा लग जाते है। जैसे शरीर को शक्तिमान् और बलवान बनाये रखने के लिए ब्रह्मचर्य की महिमा है, उसी प्रकार वाणी को प्रभावशाली बनाये रखने के लिए मौन-साधना का महत्त्व है। मौन रहने से मन को ताजगी मिलती है। जैसे एक-दो घटा नींद लेने से खोई हुई शक्ति वापिस मिल जाती है। ठीक वैसे ही मौन रहने से विचारो मे मन मे ताजगी भर जाती है। विवेक मे स्फूर्ति आ जाती है। वाणी मे जोश आ जाता है।

मौन कभी भी दूसरो को हानि नहीं पहुचाता है जबकि बोलने से कलह विग्रह विद्वेष आदि स्थितियॉ बन सकती है। संसार का इतिहास उठाकर देखलो, जितने भी अनर्थ हुए है, युद्ध हुए है, नरसहार हुए है, उनके पीछे सबसे बडा कारण यह वाणी रही है। बोलने से ही अनर्थ हुए है। द्रौपदी अगर एक कटुवचन नहीं बोलती तो महाभारत की विनाश लीला नहीं होती। दशरथ आदि कैकेयी को वचन नहीं देते तो न ही राम वनवास जाते और न रावण के साथ युद्ध होता। आज सास-बहु में कलह क्यो होता है ? अकेला व्यक्ति कलह नहीं कर सकता। दोनो मे एक भी यदि मौन धारले तो दूसरा अपने आप शांत हो जाय। कलह के प्रसग पर मौन शांति का उपाय है। विपत्ति के समय मौन धीरज बंधाता है। उसके लिए मौन मार्गदर्शक बनता है। विपत्ति से मुक्त होने का मार्ग दर्शाता है। महात्मा गाधी कहते थे कि– "जब-जब वे कठिन समस्याओ से घिर जाते थे, तब-तब एकात मे मौन करके बैठ जाते थे। अपने आप मे समाधान का रास्ता मिल जाता था। उन्होने अपनी आत्म कहानी मे लिखा कि–मुझे मौन से अपार शक्ति मिलती है। मौन एक सर्वोत्तम टॉनिक है। एक उत्कृष्ट भाषण है। हजार भाषणो से जो प्रभाव नहीं पडता, वह एक मौन से पड सकता है।

यहॉ पर एक बात ध्यान देने योग्य है–सभी तीर्थंकर अपने साधनाकाल मे मौन रहते है क्यो ? किसी ने कहा है–मौन के बिना आप विज्ञ तो बन सकते है कितु विशेषज्ञ नहीं। विशेषज्ञ बनने के लिए अन्तर जागरण आवश्यक है और अन्तर जागरण के लिए चाहिए–मौन।

मौन आत्मशक्ति का प्रतीक है। आप जितनी अधिक मौन रखेंगे,

उतनी ही आत्मशक्ति अधिक केन्द्रित होगी।

आज यह बात साइन्स ने सिद्ध की है–450 ग्राम दूध पीने से जितनी शक्ति प्राप्त होती है, उतनी एक शब्द उच्चारण मे खर्च हो जाती है।

एक पाश्चात्य विचारक बेकन का कथन है–"मौन निद्रा के समान है। जैसे स्वास्थ्य के लिए नींद जरूरी है, वैसे ही आध्यात्म उपलब्धि के लिए मौन जरूरी है।"

सभी तीर्थकर मौन साधना से शक्ति सम्पन्न बन फिर ... न
करते है। मौन साधना से उनकी समग्र चेतना केवलज्ञान ...
आत्म शक्तियों से सम्पूर्ण विकसित हो जाती है एवं ...
आत्माओं को दु ख मुक्ति हेतु उपदेश ... करते ...

स्थानांग सूत्र मे तीन आत्मर ...
जीवन यात्रा मे कहीं वाद-विवाद ...
उपस्थित हो तो इन तीन रक्षा ...

पहला–"धम्मियाए ...
सत्यपक्ष समझाओ। धर्म का ज्ञान ...
समझ ले तो बात वहीं समाप्त हो ज ...

यदि सामने वाला आपकी ब ...
ही हथियार बनाना चाहता है तो–
जाओ। चुप रहो। कहा भी ...
आत्मरक्षक है।

यदि मौन धारण करने पर ...
... ही झगड़े का क ...
... से ...

बार,
सच्चे ...

तो ...
है। जितने भी त ...
लिया। बिना मौन के ...
भी एक प्रकार का ...

हुआ भी मौनी है। जप में शब्दों का उच्चारण होता है, परन्तु वे शब्द पवित्र होते है। वाणी और विचारो को पवित्र करते है। इसलिए जाप को, ध्यान को, प्रभु स्मरण को भी हम मौन कह सकते है।

मौन एकादशी का दिन मन, वचन एवं काय योग से भी अरिहत प्रभु का स्मरण, तप एव जप करने का दिन है। इससे तन-सयम, मन-सयम और वचन-संयम सधता है। त्रय योग का सयम एवं शुभ योग मे प्रवर्तन ही पर्व की सफल आराधना है।

***

उतनी ही आत्मशक्ति अधिक केन्द्रित होगी।

आज यह बात साइन्स ने सिद्ध की है–450 ग्राम दूध पीने से जितनी शक्ति प्राप्त होँती है, उतनी एक शब्द उच्चारण मे खर्च हो जाती है।

एक पाश्चात्य विचारक बेकन का कथन है–"मौन निद्रा के समान है। जैसे स्वास्थ्य के लिए नींद जरूरी है, वैसे ही आध्यात्म उपलब्धि के लिए मौन जरूरी है।"

सभी तीर्थकर मौन साधना से शक्ति सम्पन्न बन फिर बोलना प्रारंभ करते है। मौन साधना से उनकी समग्र चेतना केवलज्ञान एवं केवलदर्शन की आत्म शक्तियो से सम्पूर्ण विकसित हो जाती है एवं सम्पूर्ण विश्व की आत्माओ को दु.ख मुक्ति हेतु उपदेश देना प्रारंभ करते है।

स्थानांग सूत्र मे तीन आत्मरक्षक बताये है। प्रभु ने कहा कि यदि जीवन यात्रा में कहीं वाद-विवाद कलह या किसी के साथ विग्रह का प्रसंग उपस्थित हो तो इन तीन रक्षा कवचों को प्रयोग करो।

पहला–"**धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोइत्ता भवइ**" उसे अपना सत्यपक्ष समझाओ। धर्म का ज्ञान दो, कलह के कटु परिणाम बताओ। वह समझ ले तो बात वहीं समाप्त हो जायेगी।

यदि सामने वाला आपकी बात नहीं सुनना चाहता है, उल्टा आपको ही हथियार बनाना चाहता है तो–"**तुसिणिओ वा सिया**" वहॉ मौन हो जाओ। चुप रहो। कहा भी है–"**एक चुप–सौ सुख।**" यह दूसरा आत्मरक्षक है।

यदि मौन धारण करने पर भी कलह की संभावना बनी रहे। आपकी उपस्थिति ही झगडे का कारण बनती है तो–"**उट्ठित्ता वा आया, एगंतमवक्कमेज्जा।**" वहॉ से उठकर एकान्त मे दूर चले जाओ। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। यह है–तीसरा आत्म-रक्षक। कितने सुन्दर और सच्चे रक्षा-कवच है ये।

तो मौन हमारा आत्म-रक्षक है। सिक्योरिटी गार्ड है, अमूल्य निधि है। जितने भी तपस्वी, योगी, सिद्ध पुरुष हुए है, उन्होंने मौन का अवलम्बन लिया। बिना मौन के किसी साधना की सिद्धि नहीं होती है। वचन का विवेक भी एक प्रकार का मौन है। कहा भी है–जिसे वाणी का विवेक है, वह बोलता

हुआ भी मौनी है। जप में शब्दों का उच्चारण होता है, परन्तु वे शब्द पवित्र होते है। वाणी और विचारो को पवित्र करते है। इसलिए जाप को, ध्यान को, प्रभु स्मरण को भी हम मौन कह सकते है।

मौन एकादशी का दिन मन, वचन एव काय योग से भी अरिहत प्रभु का स्मरण, तप एवं जप करने का दिन है। इससे तन-सयम, मन-सयम और वचन-सयम सधता है। त्रय योग का संयम एवं शुभ योग मे प्रवर्तन ही पर्व की सफल आराधना है।

***

16

पुरुषादानीय भगवान पार्श्वनाथ

भगवान पार्श्वनाथ का नाम क्षमा एवं करुणा के देवता के रूप मे सदा स्मरण किया जाता रहा है।

साधारण मान्यता है कि क्रोध से क्रोध बढता है, वैर की परम्परा बढती है और क्षमा के अमृत से क्रोध और वैर शांत हो जाता है। किंतु ऐसा भी होता है कि एक व्यक्ति स्वयं ही अपराध करे, सज्जन को सताये और सज्जन क्षमा करे, फिर भी वह वैर बांधे रहे।

लोकोक्ति है कि–''भाई से बडा शत्रु नहीं होता। यह लोकोक्ति भगवान पार्श्वनाथ के जीवन मे सत्य घटित हुई। उनके बड़े भाई ने अपराध किया, पाप किया, लोकविरूद्ध और लोकनिंद्य कार्य किया, इस पर भी भगवान ने विनम्रता रखी, उनको आदर दिया, फिर भी उस भाई ने वैर बाधे ही रखा–एक जन्म मे नहीं, नौ जन्मों तक। और वह वैर तभी शांत हुआ जब पार्श्वनाथ भव-परिभ्रमण से मुक्त हो गये।

यह सत्य है कि अग्नि कभी जल नहीं बन सकती और वह हिम को जला भी नहीं सकती।

ज्यो-ज्यो पार्श्वनाथ भगवान ने कमठ की वैराग्नि को शांत करने के लिए क्षमा विनम्रता शांति का सलिल छिटका, त्यो-त्यो कमठ की वैर-ज्वाला और भी बढती गई। बुझी नहीं।

ऐसा ही आग-पानी का खेल है–भगवान पार्श्वनाथ का जीवन। अपराधी को भी क्षमा करना, दुष्ट के साथ भी सज्जता शिष्टता का व्यवहार करना तथा शत्रु पर भी मित्र भाव रखना यह उनके जीवन्त आदर्श थे। उनके पिछले जन्मो की कहानियॉ इस वात की साक्षी है कि दुष्टात्मा कमठ 10 जन्मो तक उनको वराबर कष्ट देता रहा, प्राणांत करता रहा, पर उनकी महान आत्मा सदा ही उसे क्षमा करती रही, उसके भलाई की कामना करती

रही। वस्तुत: महान् चेतनाएं महनीय व्यक्तित्व से सम्पन्न होती है। उनकी जीवन-धाराएँ विलक्षण होती है। भगवान पार्श्वनाथ की साधना का प्रारंभकाल दश भव पूर्व बताया गया है–वह इस प्रकार है–

प्रथम भव–मरुभूति और कमठ का–

भरत क्षेत्र के पोतनपुर नगर मे महाराज अरविद प्रजावत्सल एव न्यायी था। अपराधी को क्षमा करना वे नहीं जानते थे, उसे अवश्य ही दड देते थे।

राजा का पुरोहित था–विश्वभूति। सदाचारी और धार्मिक उसके रोम-रोम मे धर्म बसा हुआ था। उसकी पत्नी अनुद्धरा भी धर्मपरायण थी।

राज पुरोहित विश्वभूति के दो पुत्र थे–बडा कमठ और छोटा मरुभूति। एक ही डाली पर उत्पन्न हुए शूल और फूल की भाति इन दोनो के स्वभाव मे आकाश पाताल का अन्तर था। कमठ पतनोन्मुखी था तो मरुभूति उन्नतिशील। मरुभूति स्वभाव से नम्र, सौम्य, मद कषायी, मिलनसार और व्यवहार कुशल था तो कमठ कषायो के आवेग मे हमेशा झूलता रहता था। वह कामी और परदारा लम्पट था, स्वभाव का कटु था।

स्वभाव की इस विभिन्नता से मरुभूति सबका प्रिय था और कमठ सबके ऑख की किरकिरी था। पुरोहित विश्वभूति ने दोनो पुत्रो का विवाह करके अपना दायित्व पूरा कर दिया। कमठ की पत्नी थी–वरुणा और मरुभूति की पत्नी का नाम वसुन्धरा था।

जीवन की साध्यवेला जानकर राजपुरोहित और उनकी पत्नी ने पुत्रों एवं बहुओ को अपना दायित्व सौपा और धर्म को समर्पित हो गए। संलेखना-संथारापूर्वक आयु पूर्ण करके स्वर्गवासी देव एव देवी बने।

मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा सुन्दर तो थी ही, साथ ही उसका चित्त चचल था। कमठ उसके रूप पर आसक्त तो था पर माता-पिता के समक्ष उसकी भावना पूर्ण नहीं हो पाई। माता-पिता की मृत्यु के बाद वह स्वच्छन्द हो गया और वसुन्धरा को अपनी तरफ आकर्षित कर उसके साथ दुराचार सेवन करने लगा। कामान्ध बने दोनो ने दुनिया की ओर से आखे मींच ली लेकिन दुनियां उनकी ओर से ऑखे कैसे मींच लेती। मरुभूति तो सरलात्मा था। साथ ही धार्मिक प्रवृत्तिवाला था। अपने भाई और अपनी पत्नी पर उसे पूर्ण विश्वास था। छिन्द्रान्वेषण की उसकी आदत ही नहीं थी।

रही। वस्तुत: महान् चेतनाएं महनीय व्यक्तित्व से सम्पन्न होती है। उनकी जीवन-धाराएँ विलक्षण होती है। भगवान पार्श्वनाथ की साधना का प्रारभकाल दश भव पूर्व बताया गया है—वह इस प्रकार है—

प्रथम भव—मरुभूति और कमठ का—

भरत क्षेत्र के पोतनपुर नगर मे महाराज अरविद प्रजावत्सल एव न्यायी था। अपराधी को क्षमा करना वे नहीं जानते थे, उसे अवश्य ही दड देते थे।

राजा का पुरोहित था—विश्वभूति। सदाचारी और धार्मिक उसके रोम-रोम मे धर्म बसा हुआ था। उसकी पत्नी अनुद्धरा भी धर्मपरायण थी।

राज पुरोहित विश्वभूति के दो पुत्र थे—बडा कमठ और छोटा मरुभूति। एक ही डाली पर उत्पन्न हुए शूल और फूल की भाति इन दोनो के स्वभाव मे आकाश पाताल का अन्तर था। कमठ पतनोन्मुखी था तो मरुभूति उन्नतिशील। मरुभूति स्वभाव से नम्र, सौम्य, मद कषायी, मिलनसार और व्यवहार कुशल था तो कमठ कषायो के आवेग मे हमेशा झूलता रहता था। वह कामी और परदारा लम्पट था, स्वभाव का कटु था।

स्वभाव की इस विभिन्नता से मरुभूति सवका प्रिय था और कमठ सबके ऑख की किरकिरी था। पुरोहित विश्वभूति ने दोनो पुत्रो का विवाह करके अपना दायित्व पूरा कर दिया। कमठ की पत्नी थी—वरुणा और मरुभूति की पत्नी का नाम वसुन्धरा था।

जीवन की सांध्यवेला जानकर राजपुरोहित और उनकी पत्नी ने पुत्रो एव बहुओ को अपना दायित्व सौपा और धर्म को समर्पित हो गए। संलेखना-संथारापूर्वक आयु पूर्ण करके स्वर्गवासी देव एव देवी बने।

मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा सुन्दर तो थी ही, साथ ही उसका चित्त चचल था। कमठ उसके रूप पर आसक्त तो था पर माता-पिता के समक्ष उसकी भावना पूर्ण नहीं हो पाई। माता-पिता की मृत्यु के बाद वह स्वच्छन्द हो गया और वसुन्धरा को अपनी तरफ आकर्षित कर उसके साथ दुराचार सेवन करने लगा। कामान्ध बने दोनो ने दुनिया की ओर से आखे मींच ली लेकिन दुनिया उनकी ओर से ऑखे कैसे मींच लेती। मरुभूति तो सरलात्मा था। साथ ही धार्मिक प्रवृत्तिवाला था। अपने भाई और अपनी पत्नी पर उसे पूर्ण विश्वास था। छिन्द्रान्वेषण की उसकी आदत ही नहीं थी।



पुरुषादानीय भगवान पार्श्वनाथ

भगवान पार्श्वनाथ का नाम क्षमा एवं करुणा के देवता के रूप मे सदा स्मरण किया जाता रहा हे।

साधारण मान्यता है कि क्रोध से क्रोध बढता है, वैर की परम्परा बढती है और क्षमा के अमृत से क्रोध और वैर शांत हो जाता है। किंतु ऐसा भी होता है कि एक व्यक्ति स्वयं ही अपराध करे, सज्जन को सताये और सज्जन क्षमा करे, फिर भी वह वैर बांधे रहे।

लोकोक्ति है कि–''भाई से बडा शत्रु नहीं होता। यह लोकोक्ति भगवान पार्श्वनाथ के जीवन में सत्य घटित हुई। उनके बड़े भाई ने अपराध किया, पाप किया, लोकविरूद्ध और लोकनिंद्य कार्य किया, इस पर भी भगवान ने विनम्रता रखी, उनको आदर दिया, फिर भी उस भाई ने वैर बांधे ही रखा–एक जन्म मे नहीं, नौ जन्मो तक। और वह वैर तभी शांत हुआ जब पार्श्वनाथ भव-परिभ्रमण से मुक्त हो गये।

यह सत्य है कि अग्नि कभी जल नहीं बन सकती और वह हिम को जला भी नहीं सकती।

ज्यो-ज्यो पार्श्वनाथ भगवान ने कमठ की वैराग्नि को शांत करने के लिए क्षमा विनम्रता शाति का सलिल छिटका, त्यों-त्यो कमठ की वेर-ज्वाला और भी बढती गई। बुझी नहीं।

ऐसा ही आग-पानी का खेल है–भगवान पार्श्वनाथ का जीवन। अपराधी को भी क्षमा करना, दुष्ट के साथ भी सज्जता शिष्टता का व्यवहार करना तथा शत्रु पर भी मित्र भाव रखना यह उनके जीवन्त आदर्श थे। उनके पिछले जन्मो की कहानियॉ इस बात की साक्षी है कि दुष्टात्मा कमठ 10 जन्मों तक उनको बराबर कष्ट देता रहा, प्राणांत करता रहा, पर उनकी महान आत्मा सदा ही उसे क्षमा करती रही, उसके भलाई की कामना करती

16

पुरुषादानीय भगवान पार्श्वनाथ

भगवान पार्श्वनाथ का नाम क्षमा एवं करुणा के देवता के रूप मे सदा स्मरण किया जाता रहा है।

साधारण मान्यता है कि क्रोध से क्रोध बढता है, वैर की परम्परा बढती है और क्षमा के अमृत से क्रोध और वैर शांत हो जाता है। किंतु ऐसा भी होता है कि एक व्यक्ति स्वयं ही अपराध करे, सज्जन को सताये और सज्जन क्षमा करे, फिर भी वह वैर बांधे रहे।

लोकोक्ति है कि–''भाई से बडा शत्रु नहीं होता। यह लोकोक्ति भगवान पार्श्वनाथ के जीवन में सत्य घटित हुई। उनके बडे भाई ने अपराध किया, पाप किया, लोकविरूद्ध और लोकनिंद्य कार्य किया, इस पर भी भगवान ने विनम्रता रखी, उनको आदर दिया, फिर भी उस भाई ने वैर बांधे ही रखा–एक जन्म मे नहीं, नौ जन्मो तक। और वह वैर तभी शात हुआ जब पार्श्वनाथ भव-परिभ्रमण से मुक्त हो गये।

यह सत्य है कि अग्नि कभी जल नहीं बन सकती और वह हिम को जला भी नहीं सकती।

ज्यो-ज्यो पार्श्वनाथ भगवान ने कमठ की वैराग्नि को शांत करने के लिए क्षमा विनम्रता शांति का सलिल छिटका, त्यो-त्यो कमठ की वैर-ज्वाला और भी बढती गई। बुझी नहीं।

ऐसा ही आग-पानी का खेल है–भगवान पार्श्वनाथ का जीवन। अपराधी को भी क्षमा करना, दुष्ट के साथ भी सज्जता शिष्टता का व्यवहार करना तथा शत्रु पर भी मित्र भाव रखना यह उनके जीवन्त आदर्श थे। उनके पिछले जन्मो की कहानियॉ इस वात की साक्षी है कि दुष्टात्मा कमठ 10 जन्मो तक उनको बराबर कष्ट देता रहा, प्राणांत करता रहा, पर उनकी महान आत्मा सदा ही उसे क्षमा करती रही, उसके भलाई की कामना करती

रही। वस्तुत: महान् चेतनाएं महनीय व्यक्तित्व से सम्पन्न होती है। उनकी जीवन-धाराएँ विलक्षण होती है। भगवान पार्श्वनाथ की साधना का प्रारंभकाल दश भव पूर्व बताया गया है--वह इस प्रकार है--

प्रथम भव--मरुभूति और कमठ का--

भरत क्षेत्र के पोतनपुर नगर मे महाराज अरविद प्रजावत्सल एव न्यायी था। अपराधी को क्षमा करना वे नहीं जानते थे, उसे अवश्य ही दड देते थे।

राजा का पुरोहित था--विश्वभूति। सदाचारी और धार्मिक उसके रोम-रोम मे धर्म बसा हुआ था। उसकी पत्नी अनुद्धरा भी धर्मपरायण थी।

राज पुरोहित विश्वभूति के दो पुत्र थे--बडा कमठ और छोटा मरुभूति। एक ही डाली पर उत्पन्न हुए शूल और फूल की भाति इन दोनो के स्वभाव मे आकाश पाताल का अन्तर था। कमठ पतनोन्मुखी था तो मरुभूति उन्नतिशील। मरुभूति स्वभाव से नम्र, सौम्य, मद कषायी, मिलनसार और व्यवहार कुशल था तो कमठ कषायो के आवेग मे हमेशा झूलता रहता था। वह कामी और परदारा लम्पट था, स्वभाव का कटु था।

स्वभाव की इस विभिन्नता से मरुभूति सबका प्रिय था और कमठ सबके ऑख की किरकिरी था। पुरोहित विश्वभूति ने दोनो पुत्रो का विवाह करके अपना दायित्व पूरा कर दिया। कमठ की पत्नी थी--वरुणा और मरुभूति की पत्नी का नाम वसुन्धरा था।

जीवन की सांध्यवेला जानकर राजपुरोहित और उनकी पत्नी ने पुत्रो एव बहुओं को अपना दायित्व सौपा और धर्म को समर्पित हो गए। संलेखना-सथारापूर्वक आयु पूर्ण करके स्वर्गवासी देव एव देवी बने।

मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा सुन्दर तो थी ही, साथ ही उसका चित्त चंचल था। कमठ उसके रूप पर आसक्त तो था पर माता-पिता के समक्ष उसकी भावना पूर्ण नहीं हो पाई। माता-पिता की मृत्यु के बाद वह स्वच्छन्द हो गया और वसुन्धरा को अपनी तरफ आकर्षित कर उसके साथ दुराचार सेवन करने लगा। कामान्ध बने दोनो ने दुनिया की ओर से आखे मींच ली लेकिन दुनियां उनकी ओर से ऑखे कैसे मींच लेती। मरुभूति तो सरलात्मा था। साथ ही धार्मिक प्रवृत्तिवाला था। अपने भाई और अपनी पत्नी पर उसे पूर्ण विश्वास था। छिन्द्रान्वेषण की उसकी आदत ही नहीं थी।

एक बार पोतनपुर मे हरिश्चन्द्राचार्य का शुभागमन हुआ। दोनो भाई ने देशना सुनी। मरुभूति ने तो उनके धर्मोपदेश को हृदयंगम कर लिया। किंतु कमठ फूटे घडे के समान रीता ही रहा, वह काम-क्रोध-विषय-विकार आदि दुष्प्रवृत्तियॉ को न छोड सका।

कमठ के अनुजवधू के साथ दुराचार सेवन से उसकी पत्नी वरुणा बहुत दु खी हुई। उसने पहले अपनी देवरानी को समझाया, पर जब उसने अपनी जेठानी की हितशिक्षा पर कान नहीं दिये तो अपने पति को समझाने की कोशिश की तो वह क्रोधावेश मे आकर बोला-''जो हो रहा है, चुपचाप देखती रहो। नहीं देखा जाता है तो कहीं चली जाओ। अगर अब इस बारे मे एक शब्द भी जबान से निकाला तो हड्डी-पसली तोड दूंगा।''

बेचारी अबला नारी पति के कोप से सहम गई। उस समय चुप हो गई, पर अपनी छाती पर मूंग दलते कैसे देख सकती थी ? उसकी सहन शक्ति की सीमा चुक गई। यद्यपि अपने देवर मरुभूति से इस बात का जिक्र करके वह दोनों भाइयों में फूट नहीं डलवाना चाहती थी, पर पति और देवरानी के स्वच्छन्दाचार से दुःखी होकर एक दिन अवसर पाकर उसने अपने देवर से कह ही दिया-''देवर जी ! कुछ घर के अन्दर की भी खबर है, क्या हो रहा है ?''

क्या हो रहा है, भाभी ? मरुभूति ने पूछा।

''तुम्हारी पत्नी वसुन्धरा और तुम्हारे बडे भैया के बीच मे गहरी छन रही है। दोनो कामान्ध बने हुए हैं।''वरुणा ने दु.खी स्वर मे कहा।

लेकिन मरुभूति को भाभी की बात पर विश्वास न हुआ, वह बोला-नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता है। मेरे बडे भाई तो देवता है और वसुन्धरा भी सति है। तुम्हें भ्रम हो गया होगा।

''तुम्हारे भैया कैसे देवता हैं और पत्नी कैसी सति है ? तुम चाहो तो स्वय देखलो। तुम्हे मालूम हो जायेगा कि मुझे भ्रम है या मेरा कथन अक्षरश सत्य है।'' वरुणा ने विश्वासपूर्वक कहा।

वरुणा के विश्वासपूर्ण कथन से मरुभूति का विश्वास भी हिल गया। वह सरल था, भोला नहीं। उसने मन ही मन अपनी ऑखों से सब कुछ प्रत्यक्ष देखने का निर्णय कर लिया।

दो चार दिन बाद मरुभूति अपने बडे भाई से कहता है–''भैया ! मुझे दूर गॉव मे एक विशेष काम से जाना है।''

''तो चले जाओ।'' इसमे मुझे क्या पूछना है ? हॉ, यह बताओ कि तुम्हे लौटने मे कितने दिन लगेगे ?'' कमठ ने आज्ञा देने के साथ पूछा।

''महिना भर तो लग ही जायेगा।'' मरुभूति ने बताया।

मरुभूति बडे भाई की आज्ञा लेकर नगर से दूर जगल मे चला गया। एक-दो दिन वन मे घूमा और एक जोगी का वेश बनाकर लौट आया। कमठ से उसने रहने के लिए स्थान मांगा। कमठ उसे पहचान नहीं पाया। उसने उसे अपने घर मे टिका लिया।

वसुन्धरा एव कमठ ने सोचा–मरुभूति बाहर गया हुआ है, तो वे दोनो खुलकर वासना का खेल खेलने लगे। योगी रूप मरुभूति ने सब कुछ अपनी ऑखो से देख लिया। अब अविश्वास को स्थान कहॉ ? बडे भाई और पत्नी के आचरण से उसे अत्यन्त दु.ख हुआ, वह पापाचार देख न सका, घर से चला गया।

कुछ दिन तक विक्षिप्त सा बना मरुभूति वन मे भटकता रहा। उसे गहरा आघात लगा था। पर कब तक भटकता वन मे, आखिर तो उसे अपने घर आना ही था। वह नगर मे लौट आया।

मरुभूति ने अनेक पहलुओ से विचार किया। उसने अन्त मे यही निर्णय किया कि अपराधी के पाप पर पर्दा डालने से पाप को बढावा मिलता है। मुझे यह पाप रोकना चाहिए। मै स्वयं तो बडे भाई को दड दे नहीं सकता। अत राजा के न्यायाधिकरण मे पुकार करनी चाहिए।

राजा अरविन्द के न्यायाधिकरण में मरुभूति ने सब कुछ स्पष्ट बता दिया। कमठ का अपराध मुँह से बोल रहा था। तुरन्त प्रमाणित हो गया। राजा ने उसे देश निकाले का दंड दिया।

राजा की आज्ञा से विवश होकर कमठ पोतनपुर से चला गया, पर वह क्रोध से बलबला उठा। मरूभूति को वह अपना सबसे बडा शत्रु मानने लगा, उसके प्रति वैर की गांठ बांध ली।

कुछ समय तक कमठ वन मे इधर-उधर भटकता रहा। लेकिन रसना लम्पट, विषय लोलुपी, भोगी-विलासी व्यक्ति वन मे अधिक समय

तक कैसे रह सकता ? वह किसी ऐसे अचूक उपाय की खोज मे था, जिससे निरापद रूप से वह अपनी इच्छाएँ पूरी कर सकें और समाज में उसकी पूजा-प्रतिष्ठा, आदर-सत्कार भी हो।

वन मे उसकी भेट शिव नामक तापस से हो गई। उसे अपनी आकांक्षा पूरी होने का मार्ग मिला। उसने तापस दीक्षा ले ली। कुछ तापस क्रियाएं सीखीं और पोतनपुर के बाह्य भाग मे अड्डा जमा दिया। वहॉ बैठकर पचाग्नि तप तपने लगा। एक छोटासा आश्रम भी बना लिया। कुछ ही दिनो में कमठ तापस का पोतनपुर मे खूब प्रचार हो गया। जन-जन की जिह्वा पर कमठ की तपस्या एवं चमत्कारों की चर्चा थी।

सरलात्मा मरुभूति के कानों तक भी ये बाते पहुँची तो उसने विचार किया—एक बार गलती करने के बाद मनुष्य, प्रायश्चित्त पश्चात्ताप और तपस्या द्वारा उस पाप को धो डालता है। मेरे भाई भी तापस हो गये है। उनका हृदय अब निष्पाप हो गया है। मुझे उनसे क्षमा मांगनी चाहिए।

मरुभूति कमठ तापस के पास गया। विनम्रतापूर्वक उसे प्रणाम किया और क्षमा मागने लगा। मरुभूति की ऑखें गीली हो गई। लेकिन उसे देखते ही कमठ का खून खौल उठा। उसने सोचा—यही दुष्ट मेरी इच्छाओ मे बाधक बना है। इसी ने मुझे देश निकाला दिलवाया है। आज ही इसे यमधाम पहुँचा दू। इससे पूरा-पूरा बदला ले लू।

कमठ क्रोधावेश मे आ गया। पास ही पडा एक भारी पत्थर उठाया और प्रणाम करते हुए, झुके हुए मरुभूति के सिर पर दे मारा।

पत्थर का लगना था कि मरुभूति का सिर फट गया, खून का फव्वारा छूट गया। असह्य वेदना हुई मरुभूति को। दर्द से छटपटाने लगा। यद्यपि मरुभूति ने समता रखने का पूरा-पूरा प्रयास किया, किंतु वेदना इतनी तीव्र थी कि परिणामो में शांति नहीं रख सका। वेदनाजन्य आर्त्तध्यान करते-करते ही प्राण निकले।

इस घटना से कमठ का वहॉ टिकना असंभव हो गया, उसे उसी समय पोतनपुर छोड़कर भागना पड़ा, चूंकि सदाचारी मरूभूति के प्रति लोगो की सद्भावना पहले से ही थी, किन्तु इस तरह की मृत्यु से उसके प्रति सहानुभूति और भी बढ गई।

कमठ की पत्नी वरूणा की अपने सदाचारी देवर के प्रति सहानुभूति तो थी ही, परन्तु अब उसकी सहानुभूति राग-भाव मे परिणत हो गई। वह अपने देवर के सद्गुणो के प्रति आकर्षित हो गई।

समय बीतता रहा। वरूणा ने भी अपना आयुष्य पूर्ण किया और कमठ ने भी।

दूसरा, तीसरा भव – मरूभूति के प्राण पीड़ा चिन्तवन आर्त्तध्यान मे निकले तो वह विध्याटवी मे यूथपति गजराज हुआ। वरूणा का मरूभूति के प्रति राग-भाव था, वह भी उसी गज-यूथ मे हथिनी बनी। पूर्वजन्म के रागांश के कारण यूथपति के प्रति उसका विशेष राग था और यूथपति गज का उसके प्रति।

कमठ कक्कुट जाति का सर्प बना। उसमे पूर्वजन्म के सस्कारो के प्रभाव से क्रोध और विष का आधिक्य था।

यूथपति गजराज की क्रिडाओ का प्रमुख स्थल निर्मल जल से भरे सरोवर का तटीय स्थान था, वहीं पर वह अपनी हथिनियो के साथ क्रीडा करता।

एक दिन जब वह अपने क्रीडा स्थान पर पहुचा तो देखा कि उसके क्रीडा स्थान पर बाधा खडी हो गई। जाने कहां से बहुत सारे मनुष्य, शकट, पशु आदि आ गये। सारा स्थान भर गया, अब हाथी कहॉ मौज मनावे।

'हुआ यह था कि सागरदत्त सार्थवाह ने निर्मल सरोवर देखकर उस स्थान पर अपने डेरे-तम्बू डाल दिये, शिविर लगा दिया था। यद्यपि यह शिविर सागरदत्त ने अपनी यात्रा-क्रम मे सहज रूप से लगाया था, लेकिन हाथी की आनदक्रीडा मे बाधा पड गई अत. यूथपति ने एक क्रोधभरी चिघाड मारी और दौड़ पडा सार्थवाह की ओर।

गजराज ने वहॉ प्रलय दृश्य उपस्थित कर दिया । सूड मे पकड़-पकड़कर शकट उछाल दिये, तम्बूओ की कीले उखाड दिये। पशु अपनी रस्सी तुडाकर इधर-उधर भाग गये, चारो तरफ अफरा-तफरी मच गई। सभी को अपने-अपने प्राणो की पड़ी थी। इसी बीच एकाएक विशिष्ट ज्ञानी और दृढ चारित्री मुनि जो एक सघन वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खडे थे, जिनके चेहरे पर अपूर्व शांति विराज रही थी। हाथी की दृष्टि जैसे ही उन मुनि की

अविचल शात देहयष्टि पर गिरी तो उसके मन मे कुतूहल हुआ, ये कौन है ? जो मेरी भयंकर चिघाडों से बिना डरे अविचल शांत खड़े है। हाथी ने गौर से देखा तो उसे लगा, ये मनुष्य तो कहीं देखा है, चेहरा भी जाना-पहिचाना है, पर कब और कहां देखा है, याद नहीं आता।

यूथपति इसी सोच मे डुबा हुआ था, तभी मुनि अरविंद का ध्यान पूरा हो गया, आंखे खोली तो सामने गजराज खड़ा था और चारो तरफ प्रलय का दृश्य उपस्थित था।

मुनिराज से क्या अगोचर था ? वे समझ गये कि यह करतूत इस गजराज की है। उनके ज्ञान में यह भी प्रत्यक्ष था कि यह गजेन्द्र मरुभूति का जीव है उन्होंने यूथपति को संबोध दिया–

गजराज ! मुझे क्या ? अपने आपको पहचानो। पूर्वभव में तुम मरुभूति थे। तुम्हारे बडे भाई कमठ ने तुम्हारे सिर पर पत्थर मार दिया था, जिससे तुम्हारा सिर फट गया था। उसी से तुम्हारी मृत्यु हुई है। उस मृत्यु के समय थोडी सी पीड़ा चिन्तन रूप आर्त्तध्यान के कारण तुम्हें तिर्यच गति मे आना पडा तो सोचो, इस भयकर हिंसा का तुम्हें कितना कटु परिणाम भोगना पडेगा ?

जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति हो जाने से हाथी के स्मृति पटल पर अपना पूर्वभव उभर आया। अपने अकृत्य पर उसे घोर पश्चाताप हुआ। आंखो से अश्रु प्रवाहित होने लगे। अहो, मै मनुष्य भव को हार गया। धन्य है ये मुनिश्वर ! पोतानपुर के अरविन्द नरेश।

जैन श्रमण दीक्षा अंगीकार कर कितने महान् एवं विशिष्ट ज्ञानी बन गये। वह मुनिराज को नमनकर उनके चरणों में बैठ गया।

मुनिराज उसकी मन.स्थिति को समझ गये। उन्होने उसे हिंसा न करने तथा श्रावक व्रतों का पालन करने की प्रेरणाा दी।

अब हाथी का जीवन बदल गया था। क्रूरता का स्थान समता ने ले लिया। हिंसा बिल्कुल नहीं करता, यहॉ तक कि सूखी पत्तियों से अपनी उदर-पूर्ति करता, कभी-कभी उपवास भी कर लेता।

इस प्रकार व्रताचरण एवं तपश्चरण से उसका तन-बल क्षीण हो गया। एक बार सरोवर मे पानी पीने आया तो देवयोग से उसका पैर कीचड़

मे फस गया। निकालने की जी-तोड कोशिश की। लेकिन हुआ उल्टा। ज्यो-ज्यो निकालने का प्रयास किया, त्यो-त्यो कीचड मे और गहरा धसता चला गया। उसने समझ लिया, अंतकाल निकट आ गया।

तभी सयोग ऐसा बना कि कमठ का जीव जो कुक्कुट नाग बना, वह उधर से निकला। उसने जो गजेन्द्र को देखा तो उसका पूर्व वैर जागृत हो गया। गजराज कीचड मे फसा था, ऐसा सुनहरी मौका वह कैसे निकल जाने देता। तुरन्त ही हाथी की पीठ पर चढ गया और अपने विषदत हाथी की पीठ पर गडा दिये और विष उगल दिया। विष-प्रवेश करते ही छटपटा उठा हाथी, पर क्या करता, विवश था, अपना बचाव भी नहीं कर सकता था। नाग बार-बार दश प्रहार कर रहा था, गज तडफ रहा था, अचानक ही हाथी को याद आया कि मैने पिछले मरूभूति के भव मे पीडा-चिन्तन के कारण पशुयोनी पाई है। तत्काल अपने परिणामो मे परिवर्तन किया। नवकार मत्र का स्मरण करता हुआ शांति धारण कर ली। इन्हीं शुभ परिणामो मे आयुष्य पूर्णकर वह सहस्त्रार स्वर्ग मे ऋद्धिशाली देव बना और हाथी की मृत्यु से खुश हुआ कुक्कुट नाग की मृत्यु भी तो एक दिन होनी ही थी, सो वह रोद्र परिणामो में मरकर पांचवी नरक में गया।

चौथा-पांचवा भव- सहस्त्रार स्वर्ग से आयुष्य पूर्णकर मरूभूति (गज) का जीव महाविदेह क्षेत्र के अधिपति विद्युत्गति नरेश की पटरानी कनकतिलकवती की कुक्षि से पुत्र रत्न के रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम किरण वेग रखा। किरण वेग दीर्घकाल तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् अपने पुत्र को राज्य सभला करके सुरगुरु मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की और उत्कृष्ट तप-संयम की आराधना से आकाशगामिनी आदि अनेक लब्धिया प्राप्त कर ली। एक बार मुनि किरणवेग आकाश-मार्ग से पुष्कर द्वीप मे पहुचे और कनकगिरी पर जाकर एक पर्वत शिला पर प्रतिमा योग धारण करके ध्यानस्थ हो गये।

कमठ का जीव भी 5वीं नरक से निकलकर उसी पर्वत की एक कन्दरा मे विषधर नाग हुआ। उसने जो मुनि श्री किरणवेग को देखा तो उसका पूर्व वैर जाग उठा। उसने मुनि श्री को काट लिया।

मुनि श्री के शरीर मे नाग का विष व्याप्त हो गया उन्हे भयंकर वेदना हुई, लेकिन वह वेदना शरीर तक ही रही, मुनि की आत्मा समता रस में

निमग्न रही। उन्होंने उत्तम क्षमा का पालन किया, आयुष्य पूर्ण करके मुनि किरणवेग अच्युत स्वर्ग मे 22 सागरोपम की स्थिति वाले देव बने।

कमठ के जीव वाले नाग की मृत्यु दावानल में झुलसकर हुई। रौद्र परिणामों के कारण वह छठी नरक मे उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी भी आयु 22 सागरोपम की ही थी।

छट्ठा–सातवाँ भव– 12वे देवलोक से अपना आयुष्य पूर्णकर मरूभूति का जीव अपर महाविदेह क्षेत्र में राजन् वज्रवीर्य के यहाँ वज्रनाभ पुत्ररत्न के रूप मे जन्म लेता है।

बहुत वर्ष तक राज्य सुख भोगकर अपने पुत्र चक्रायुध को राज्य सभलाकर क्षमेंकर तीर्थकर के पास दीक्षा ग्रहण की और उग्रतप से अनेक लब्धियां प्राप्तकर एकल विहारी भी बन गये।

एक बार आकाशमार्ग से सुकच्छ स्थान पर गये और वहां एक शिला पर ध्यानस्थ आत्मलीन हो गये।

कमठ का जीव छट्ठी नरक से निकल कर अनेक योनियो में भटका, फिर उसी वन मे कुरंग नामक भील बना। पशु पक्षियो का शिकार करना उसका जातिगत धन्धा था। धनुष बाण लेकर घूमा करता था।

घूमता-घूमता उसी ओर आया, जहाँ मुनि वज्रनाभ आत्म-साधना मे लीन थे। उन्हे देखते ही उसके क्रोध का पार नहीं रहा। प्रत्यक्ष कारण कोई भी न था क्रोध का, पर पूर्वभवों का वैर जो था। धनुष पर बाण चलाया और कान तक खींचकर छोड दिया, मुनि को लक्ष्य करके। तीर मुनि के मर्मस्थल पर लगा। तीर का फलक उनके तन मे काफी अन्दर तक घुस गया। तीव्र वेदना हुई पर मुनि के मुख पर पीडा की रेखा तक न आई। भील ने देखा–कोई प्रभाव नहीं, मुनि न चीखा, न चिल्लाया, उसका क्रोध ओर बढ गया। एक, दो, तीन....मुनि को लक्ष्य करके तीर छोडता गया और तब तक छोडता गया, जब तक उसका तरकश खाली न हो गया।

कुरंग भील का तरकश तो खाली हो गया पर समता वीर साधक मुनि वज्रनाभ अपने ध्यान में वज्र के समान स्थिर, अडोल अकंप रहे। भील के तीखे तीर भी उन्हे समता से नहीं डिगा सके। मुनि वज्रनाभ समभावों मे अपना आयुष्य पूर्ण करके नवें ग्रैवेयक में ललितांग देव बने।

और कुरंग अपने को महान् धनुर्धर मानकर अभिमान से फूल उठा, मुनि हिसा के महापाप से सातवीं नरक का आयुष्य बाधकर, मरकर सातवीं नरक मे उत्पन्न हुआ।

आठवां, नवां भव– मरुभूति का जीव ललितांग देव का आयुष्य पूर्णकर अपर विदेह क्षेत्र के पुराणपुर नगर के राजा कुलिशबाहु की महारानी सुदर्शना के गर्भ मे अवतरित हुआ। गर्भ मे अवतरति होते ही रानी सुदर्शना ने चक्रवर्ती की माता को दिखाई देने वाले 14 महास्वप्न देखे। गर्भकाल पूरा होने पर पुत्र का जन्म हुआ। नाम रखा गया–सुवर्णबाहु। जब सुवर्णबाहु योग्य हो गया तो पिता कुलिशबाहु के चक्रवर्ती नामकर्म का उदय होने से उसकी आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, तत्पश्चात् उसने षट्खण्ड पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्ती पद भोगा। एक बार पुराणपुर नगर मे तीर्थकर जगन्नाथ पधारे। चक्रवर्ती उनकी धर्मदेशना सुनने गये। समवशरण मे देवो को आते-जाते देखकर उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। विरक्त होकर, पुत्र को राज्य भार सभलाया और अपने उत्तराधिकारी पुत्र से आज्ञा लेकर स्वय ने जैनन्द्री दीक्षा ग्रहण करली।

मुनि सुवर्णबाहु ने दर्शन विशुद्धि आदि बीस बालो की आराधना की और तीर्थकर नाम गौत्र का उपार्जन किया।

एक बार विहार करते हुए मुनि सुवर्णबाहु क्षीर गिरी के पास क्षीर वर्णा भयकर अटवी मे आये और आतापना-योग लगाकर स्थित हो गये।

उधर से एक सिह निकला। वह मुनि की ओर दृष्टि जमाकर देखने लगा। उसकी ऑखे क्रोध से लाल होती चली गई। पूर्व वैर उद्बुद्ध हो गया। वह सिह कर्मठ का जीव था। सातवीं नरक से निकलकर वह उस अटवी मे सिंह बना था।

सिह एकाएक मुनि पर झपटा और अपने तीक्ष्ण नाखूनो से उनके शरीर को चीर-फाड डाला। मुनि समता योग मे लीन रहे। कालधर्म प्राप्त कर प्राणत देवलोक मे महाप्रभ नामक विमान मे महर्द्धिक देव बने।

सिह आयु पूर्णकर चौथी नरक मे गया। वहॉ से निकलकर तिर्यच बना। फिर अनेक भवो मे नाना प्रकार के दु:ख भोगता रहा। तत्पश्चात् वह किसी निर्धन ब्राह्मण के घर मे उत्पन्न हुआ। पैदा होते ही उसके माता-पिता

आदि पारिवारिकजनों का निधन हो गया। दया भावनावश लोगों ने इसका पालन-पोषण किया और "कमठ" नाम दिया। कमठ बडी कठिनाई से जीवन-निर्वाह कर पाता। खूब मेहनत करने पर भी भर पेट भोजन नहीं मिल पाता, जब उसने देखा कि तापस लोगों को लोग श्रद्धाभावना से षट्रस भोजन स्वयं उनके स्थान पर दे आते है। भोजन के लिए मनुहार करते है।

बस, वह तापस बन गया। पंचाग्नि तप तपने लगा।

दसवा भव—भगवान पार्श्वनाथ का जन्म— चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन विशाखा नक्षत्र मे सुवर्णबाहु का जीव प्राणत देवलोक से बीस सागरोपम की स्थिति भोगकर भारतवर्ष की प्रसिद्ध नगरी वाराणसी के महाराज अश्वसेन की महारानी वामा की कुक्षी मे मध्यरात्रि के समय गर्भ रूप से उत्पन्न हुए। महारानी वामा चौदह महास्वप्नों को मुख में प्रवेश करते हुए देखकर परम प्रसन्न हुई। और पुत्र रत्न की सुरक्षा के लिए गर्भ का सावधानीपूर्वक पालन करने लगी। विशाखा नक्षत्र से चन्द्र का योग होने पर आरोग्य युक्त माता ने सुखपूर्वक पुत्र रत्न को जन्म दिया। क्षण भर के लिए तीनो लोक में उद्योत एवं आनद छा गया।

पुत्र जन्म की खुशी में महाराज अश्वसेन ने दस दिनो का मंगल महोत्सव मनाया और बारहवे दिन नामकरण करने के लिए अपने सभी स्वजन एवं मित्र वर्ग को आमंत्रित कर बोले—बालक के गर्भस्थ रहते समय इसकी माता ने अधेरी रात मे भी पास (पार्श्व) मे चलते हुए सर्प को देखकर मुझे सूचित किया और अपनी प्राणहानि से मुझे बचाया, अतः इस बालक का नाम "पार्श्वनाथ" रखना चाहिये। इस निश्चय के अनुसार बालक का नाम पार्श्वनाथ रखा गया।

गर्भकाल से ही प्रभु मति श्रुति और अवधिज्ञान के धारक थे ही। बाल्यकाल पूर्णकर जब यौवन मे प्रवेश करने लगे तो आपकी तेजस्विता और अधिक चमकने लगी।

इधर वही कमठ का जीव कमठ तापस वाराणसी नगरी में आया। ढोग और पाखंड की पूजा तो होती ही है। पंचाग्नि तप तपते देखकर जनता उसके दर्शनो को उमड पडी। सेवक से सारी सूचना पाकर पार्श्वकुमार भी चल पडे। दर्शनार्थियो का मेला सा लगा हुआ था। चारो ओर अग्नि जल रही है, बीच में कमठ सूर्य के सामने मुंह किये बैठा है। अग्नि मंद न पड़े इसलिए

बीच-बीच मे बडे-बडे लक्कड उसमे झोकता जा रहा है और ऑखे मूदे मुँह ही मुँह मे मंत्र जाप किये जा रहा है। ज्योंहि राजकुमार पार्श्व को सन्मुख खड़े देखा, कमठ के मन ही मन जोश चढा, एक बडा लक्कड उठाया और अग्नि मे फैक दिया। उस की लपट लगते ही छटपटाने लगे। ज्योहि तीन ज्ञान के स्वामी राजकुमार पार्श्व ने अपने ज्ञान के उपयोग से उन नाग-नागिन को जलते देखा, देखते ही भीड को चीरकर आगे बढे और उस तपस्वी को ललकारा– ''ओ तपस्वी ! यह क्या कर रहे हो ? इन आग की लपटो मे पचेन्द्रिय प्राणियो का होम कर आत्म-कल्याण और साधना करना चाहते हो ? यह तो निरा अज्ञान है। दयाशून्य धर्म नहीं, कोरा पाखंड है।''

राजकुमार की फटकार सुनते ही कमठ की भृकुटिया तन गई। लाल-लाल अगार सी ऑखे कर वह बोला–राजकुमार ! तुम्हारा कथन असत्य है, तुम मेरी साधना को भंग करना चाहते हो।'' कमठ ने आक्रोश के साथ विवाद बढाना चाहा, पर राजकुमार पार्श्व ने सोचा–इस विवाद मे बिचारे नाग-नागिन जलकर भस्म हो जाएगे। बिना पुनः कुछ बोले तुरन्त उस जलती ज्वाला से उस लक्कड़ को बाहर निकाला और सावधानीपूर्वक उसे चीरा तो आग की तीव्र ज्वालाओ मे झुलसते हुए नाग और नागिन बाहर निकल आये, उनकी चमड़ी जल रही थी और अतिम श्वास ले रहे थे। कुमार ने उनको नवकार महामत्र सुनाया और सबोधित किया–नागराज ! मन को शांत रखो, नवकार मंत्र श्रवण करो, अवश्य तुम्हारी सद्गति होगी।''

महामहिम नवकार मत्र का प्रभाव सम्यक् श्रद्धा लाने के कारण वे नाग-नागिन अपना शरीर त्यागकर नागकुमार जाति के देवो के स्वामी धरणेन्द्र और पद्मावती के रूप मे देवगति को प्राप्त हुए।

इधर उस कमठ का चेहरा देखने लायक हो गया, एकदम फक्क सा रह गया। जो लोग उसकी भक्ति करने आये, वे सब उसकी निदा करने लगे, कहने लगे कि विवेकहीन कहीं का, धर्म के नाम पर निर्मम हिसा कर रहा है, दिल में दया का नाम मात्र भी नहीं है ? लोगो की निदा और अपमान से कमठ तिलमिला उठा। राजकुमार पार्श्व पर उसे बहुत क्रोध आया, पर क्या कर सकता था। कुमार ने कमठ को क्षमादान दिया और कहा–''जाओ, इस अज्ञान तप को छोडकर क्षमाधर्म का पालन करो। यह कहकर राजकुमार पार्श्व तो महलो मे लौट आये और वह कमठ अपमान एवं पराजय के विष

का घूंट पीकर वाराणसी छोडकर कहीं दूर जंगलो में चला गया। पर **''खिसयानी बिल्ली खम्भा नोचें''** के अनुसार अब वह ओर भी कठोर अज्ञान तप देह-दंड की साधना करने लगा। अंत मे रौद्र भावों के साथ मृत्यु को प्राप्त कर मेघमाली नामक (असुरकुमार) देवता बना। और जब पार्श्व प्रभु पौष वदि एकादशी को दीक्षित होकर साधना कर रहे थे, उसी साधनाकाल मे प्रभु एकदा एक नगर के पास तापसाश्रम मे पहुँचे और सायंकाल हो जाने के कारण वहीं एक वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग कर खडे थे। तब वही कमठ तापस जो मरकर मेघमाली देव बना था। अपने ज्ञान से प्रभु को उस जंगल मे ध्यानास्थ देखा तो पूर्व भव के वैर की स्मृति से वह वहाँ आया और बोला-अहा ! यह वही राजकुमार है, जिसने मेरी मिट्टी पलीत की थी। आज अपना पुराना बदला लेकर हिसाब चूकता कर लेता हूँ, इसे भी पता चलेगा कि ''मै किससे भिडा था ? बस क्रोध मे आग बबूला होकर मेघमाली देव टूट पड़ा प्रभु पार्श्व पर। सिह का रूप बनाकर भयंकर दहाडे मारने लगा तो कभी हाथी बनकर चिघाडने लगा और सूड मे प्रभु को पकडकर गेद की तरह आकाश मे उछालकर भूमि पर ला पटका। प्रभु पार्श्व पुन: खडे होकर ध्यान मे स्थिर हो गये। जहरीले बिच्छु का रूप बनाकर कई जगह डंक मारे, सर्प बनकर जगह-जगह काटा, तरह-तरह की यातनाए देता रहा, किंतु फिर भी प्रभु अपने ध्यान में अविचल स्थिर खडे रहे, उसी प्रकार शात और प्रसन्न मुद्रा में। प्रभु को शांत देख मेघमाली का क्रोध और अधिक भडक उठा। खिसिया कर प्रभु पर जलवृष्टि शुरू कर दी। भयंकर गर्जना और तेज हवाओ के साथ मूसलधार पानी बरसने लगा। क्षण भर में चारो ओर भयंकर प्रलयकाल सा मच गया। बडे-बडे वृक्ष, आश्रम, पशु-पक्षी पानी में डुब गये। पानी बढता-बढता भगवान के उदर तक आ गया और कुछ ही देर मे नासाग्र को छूने लगा। लेकिन प्रभु शांत प्रशांत ध्यान मुद्रा स्थिर थे। मेघमाली अट्टहास के साथ नाच रहा था-''बस आज अभी दुश्मन को जल-समाधि देकर इसका सफाया कर डालता हूँ।'' तभी नागकुमारो के इन्द्र धरणेन्द्र ने उपयोग लगाकर अपने परमोपकारी प्रभु का यह विकट उपसर्ग देखा।

देखते ही वह बहुत ही क्षुब्ध हुआ तथा पद्मावती वैरोट्या आदि देवियो के साथ शीघ्र गति से प्रभु की सेवा मे पहुँचा। प्रभु को नमस्कार करके

उनके चरणो के नीचे दीर्घकाल युक्त कमल की रचना की एव प्रभु के शरीर को सप्तफणो के छत्र से अच्छी तरह ढक दिया। भगवान् देवकृत उस कमलासन पर समाधिलीन राजहस की तरह शोभित हो रहे थे।

वीतराग भाव मे पहुंचे भगवान् पार्श्वनाथ कमठासुर की उपसर्ग लीला और धरणेन्द्र की भक्ति दोनो पर सम दृष्टि रहे। उनके हृदय मे न कमठ के प्रति द्वेष था, न धरणेन्द्र के प्रति अनुराग। लेकिन धरणेन्द्र को मेघमाली पर इतना रोष आया, वह गरजता हुआ बोला-दुष्ट ! तू यह क्या कर रहा है ? उपकार के बदले अपकार का पाठ तेने कहॉ पढा है ? जिन्होने तुम्हे अज्ञानगर्त से निकालकर सन्मार्ग का दर्शन कराया उनके प्रति कृतघ्न होकर उनको ही उपसर्ग पीडा से पीडित करने का प्रयास कर रहा है। तुम्हे नहीं मालूम कि ऐसी आत्मा की अवज्ञा पर्वत से अपने सिर को फोडने एवं पैर से अग्नि को दबाने के समान है, इनका तो कुछ नहीं बिगडेगा कितु तेरा सर्वनाश हो जायेगा। भगवान् तो दयालु है, पर मै इस तरह सहन नहीं करूगा।

धरणेन्द्र की गर्जना सुन मेघमाली भयभीत हो उठा प्रभु की अविचल शाति और धरणेन्द्र की भक्ति से प्रभावित हो उसने अपनी माया समेट ली। प्रभु के चरणो मे सविनय क्षमा मांगकर वह अपने स्थान को चला गया। धरणेन्द्र पद्मावती आदि भी भक्ति विभोर हो प्रभु पार्श्व की सेवा भक्ति कर पुन वहॉ से अपने स्थान पर चले गये।

उपसर्ग विजेता प्रभु पार्श्व अपनी अखंड साधना मे रत रहकर छद्मस्थावस्था की 83 रात्रियॉ पूर्ण होने के पश्चात् 84वे दिन वाराणसी के निकट आश्रमपद उद्यान मे धातकी वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े अष्टमतप के साथ सम्पूर्ण घनघाती कर्मो का क्षय करके केवलज्ञान केवलदर्शन की उपलब्धि प्राप्त की। जिस समय प्रभु को केवल्य-उपलब्धि हुई उस समय चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन विशाखा नक्षत्र मे चन्द्र का योग था।

केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त कर कुछ . 70 वर्ष तक भारत के विविध अचलो में धर्म की ज्योति जलाते हुए करोडो भव्यात्माओ को सत्य-तत्त्व का प्रतिबोध दिया। भगवान के सघ मे 8 गणधर, 1 हजार केवली, 750 मन पर्ययज्ञानी 1, 400 अवधिज्ञानी, 350 चौदह पूर्वधारी, 600 वादी, 1,64,000 श्रावक, 3,27,000 श्राविकाए हुई। भगवान के शासन मे 1000 साधु एव 2000 साध्वियो ने मोक्ष प्राप्त किया तथा करोड़ो नर,

नारियॉ सम्यग्दृष्टि बन प्रभु के भक्त बनें।

अपना आयुकाल निकट समझकर प्रभु सम्मेद शिखर पधारे और तेतीस साधुओ के साथ 1 मास का अनशन कर शुक्लध्यान के तृतीय और चतुर्थ चरण पर आरोहण किया। श्रावण शुक्ला अष्टमी को विशाखा नक्षत्र मे चन्द्र का योग होने पर प्रभु सिद्ध बुद्ध मुक्त परिनिर्वाण अवस्था को प्राप्त हुए।

प्रभु पार्श्वनाथ को पुरुषादानीय क्यो कहा ?

आगमों में अन्यान्य तीर्थकरों का 'अरहा' विशेषण से ही उल्लेख किया गया है। जैसे– 'मल्ली अरहा', 'उसभेणं अरहा', 'अरहा अरिष्टनेमि' इत्यादि। पर पार्श्वनाथ के नाम के साथ अंग-शास्त्रों में 'पुरिसादाणी' विशेषण दिया गया है। अत. इस विशेषण जोडने का कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए।

वह कारण यह हो सकता है कि निरयावलियॉ सूत्र के पुष्पिता नामक तृतीय वर्ग के प्रथम तथा द्वितीय अध्ययनो में क्रमश· ज्योतिषेन्दु चन्द्र और सूर्य का तथा तृतीय अध्ययन मे शुक्र महाग्रह का वर्णन है, ये तीनो प्रभु पार्श्वनाथ के शिष्य थे। चन्द्र और सूर्य क्रमश पूर्वभव मे अगति गाथापति और सुप्रतिष्ठ गाथापति थे। संसार से विरक्त हो भगवान पार्श्वनाथ के चरणो में दीक्षित हुए। उग्र तपस्याएं की, संयम के मूलगुणो का पूर्णरूपेण पालन किया, लेकिन संयम के उत्तरगुणो की विराधना की और अंत मे संयम मे अतिचारों की आलोचना किये बिना ही संलेखनापूर्वक काल कर ज्योतिष इन्द्र बने। तथा शुक्र महाग्रह पूर्वभव मे सोमिल नामक ब्राह्मण था, प्रभु पार्श्वनाथ से अपने अनेक प्रश्नों का सम्यक् समाधान पाकर परम संतुष्ट हुआ और श्रावक धर्म को अंगीकार किया। कालान्तर में असाधुदर्शन एवं मिथ्यात्व के उदय से तापस बनने की उत्कृष्ट भावना बनने से तापस बन गया। पुन: देव प्रतिबोध से श्रावक धर्म स्वीकार कर घोर तपश्चर्याओ के साथ श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर अंत में 15 दिन की संलेखना से आत्मा को भावित करता हुआ पूर्वकृत दुष्कृत की आलोचना किये बिना आयुष्य पूर्णकर वह शुक्र महाग्रह के रूप में देव हुआ। इसी प्रकार निरयावलिया सूत्र के तृतीय वर्ग के चतुर्थ अध्याय मे सौधर्मकल्प मे उत्पन्न ऋद्धिशालिनी बहु पुत्रिका देवी का वर्णन है। पूर्वभव में सुभद्रा नामक गाथा पत्नी थी। वन्ध्यत्व से अत्यन्त दु·खी और भगवान पार्श्वनाथ की शिष्या

आर्या सुव्रता साध्वी के प्रतिबोध से विरक्त हो प्रव्रजित हुई। प्रव्रज्या लेने के बाद बालक-बालिकाओ को देखकर मोहोदेय से उन्हे बड़े प्यार और दुलार के साथ खिलाने लगी और उनकी बाल क्रीडाओ को देखकर सततिलिप्सा को शांत करने का प्रयास करती।

आर्या सुव्रता ने यह सब देखकर उसके इस आचरण को साधुधर्म के विरूद्ध बताते हुए उसे ऐसा न करने का आदेश दिया पर सुभद्रा अपने उस असाधु आचरण से बाज न आई। सुव्रता द्वारा और अधिक कहे जाने पर सुभद्रा अलग उपाश्रय में अकेली यावत् स्वच्छन्दविहारिणी हो गई।

इस प्रकार शिथिलाचार पूर्वक श्रामण्यपर्याय का बहुत वर्षो तक पालन कर 15 दिन की संलेखना से बिना आलोचना किये ही आयुष्यपूर्ण कर सौधर्मकल्प में बहुपुत्रिका देवी के रूप मे उत्पन्न हुई।

निरयावलिया सूत्र के पुष्प चूलिका नामक चौथे वर्ग मे वर्णित श्री, ह्री धी, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, इलादेवी, सुरादेवी, रसदेवी और गधदेवी नाम की 10 तथा ज्ञाताधर्मकथा के दूसरे श्रुतस्कंध के 10 वर्गो मे 206 ये कुल मिलाकर 216 जराजीर्ण वृद्धकुमारियॉ भगवान् पार्श्वनाथ के उपदेशो से प्रभावित हो प्रवर्तिनी पुष्पचूला के पास दीक्षा ग्रहण कर अनेक प्रकार की तपस्याऍ की। पर शरीर बाकुशिका बन जाने के कारण संयम की विराधिकाऍ हुई। अपनी प्रवर्तिनी पुष्पचूला के समझाने पर भी वे नहीं मानी और स्वतत्र एकल विहारिणी हो गई। अंत समय मे संलेखना करके अपने शिथिलाचार की आलोचना किये बिना ही मरकर निरयावलिया मे वर्णित 10 जराजीर्ण वृद्धकुमारियॉ (जरा जीर्ण वद्धावस्था को प्राप्त अविवाहित कन्याऍ) सौधर्म कल्प मे ऋद्धिशाली देवियॉ हुई तथा ज्ञाता सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के 10 वर्गो में वर्णित 206 जरा जीर्ण वृद्धकुमारियो मे से–

प्रथम वर्ग मे वर्णित– चरमेन्द्र की 5 अग्रमहिषियॉ

दूसरे वर्ग में वर्णित– बलीन्द्र की 5 अग्रमहिषियॉ

तीसरे वर्ग मे वर्णित– नवनिकाय के नौ दक्षिणेन्द्रो मे से प्रत्येक की 6-6 अग्र महिषियों के हिसाब से कुल 54 अग्रमहिषियॉ।

चौथे वर्ग मे वर्णित– उत्तर के नवनिकायो के उत्तरेन्द्रो की 54 अग्रमहिषियॉ।

पॉचवे वर्ग मे वर्णित–व्यंतर के 32 दक्षिणेन्द्रो की 32 देवियॉ।

छठे वर्ग में वर्णित– व्यंतर के 32 उत्तरेन्द्रों की 32 देवियॉ।

सातवे वर्ग में वर्णित–चन्द्र की 4 अग्रमहिषियॉ।

आठवे वर्ग मे वर्णित–सूर्य की 4 अग्रमहिषियॉ।

नवे वर्ग मे वर्णित–शकेन्द्र की 8 अग्रमहिषियॉ।

दशवे वर्ग में वर्णित–ईशानेन्द्र की 8 अग्रमहिषियॉ हुई। ये कुल 220 देव एव देवियॉ महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त करेंगे। ऐसा प्रभु महावीर ने फरमाया है।

ये देव एवं देवियॉ जिन्होंने प्रभु पार्श्वनाथ की कृपा से महति देव-ऋद्धि प्राप्त की है। अत सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके द्वारा निश्चित रूप से जिनशासन की प्रभावना के अनेक कार्य संपन्न हुए होगे और उस कारण भारत का मानव समाज निश्चित रूप से भगवान पार्श्वनाथ का विशिष्ट उपासक बन गया होगा।

भगवान् पार्श्वनाथ के कृपा प्रसाद से तापस की धूनी में जलते हुए नाग-नागिन का जोडा धरणेन्द्र और पद्मावती बना और समय-समय पर इन्होने शासन की प्रभावना की है। इसका प्रमाण यह है कि धरणेन्द्र और पद्मावती के स्तोत्र आज भी प्रचलित है।

भद्रबाहु के समय में सघ को संकटकाल मे पार्श्वनाथ का स्तोत्र ही दिया गया था। सिद्धसेन जैसे पश्चाद्वर्ती आचार्यो ने भी पार्श्वनाथ की स्तुति से ही शासन की प्रभावना की।

जब ये पूर्वोक्त 220 देव-देवियॉ प्रभु महावीर के समोवशरण मे आकर अपनी वैक्रिय शक्ति से नाट्यकला का प्रदर्शन कर अपने-अपने स्थान पर लौट गये और गौतम स्वामी द्वारा इनके पूर्व एवं आगामी भव की पृच्छा का प्रभु ने समाधान कर यह जाहिर किया कि ये सभी भगवान् पार्श्वनाथ के अन्तेवासी शिष्य-शिष्याएँ थी। उनकी कृपा से इनको यह देव-ऋद्धि प्राप्त हुई है और ये एकाभवतारी बने है तो देवी-देवताओ की आश्चर्यजनक विपुल ऋद्धि और अत्यन्त अद्भुत शक्ति के प्रत्यक्षदर्शी विभिन्न नगरों के विशाल जनसमूहो मे निश्चित रूप से भगवान् पार्श्वनाथ के प्रति प्रगाढ भक्ति एव अगाध श्रद्धा का आर्विभाव होना सहज स्वाभाविक है।

इसके साथ ही अपने नीरस नारी जीवन से ऋणी हुई उन 216 वृद्धकुमारियो के समक्ष साधना का मार्ग प्रशस्त कर तत्कालीन मानव समाज

को सच्चे सुख की राह बताई एव उलझी हुई जटिल समस्याओ को सुलझाकर मानव समाज की अत्यधिक प्रीति प्राप्त की।

इसके अतिरिक्त भगवान पार्श्वनाथ के विशिष्ट प्रभाव एव उन्हे 'पुरुषादानीय'' कहने का एक कारण उनका प्रबल पुण्यातिशय एवं अधिष्ठाता देव-देवियो का सानिध्य भी हो सकता है।

भगवान् पार्श्वनाथ ने केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् अपने दीर्घ केवलिकाल में अनार्य देशों में परिभ्रमण कर अनार्यजनो को भी अधिकाधिक संख्या मे धर्मानुरागी बनाया हो तो यह भी उनकी लोकप्रियता का विशेष कारण हो सकता है।

पार्श्वप्रभु ने कुमारकाल मे प्रसेनजित की सहायता की और राजा यवन को अपने प्रभाव से झुकाया। सम्भव है कि यवनराज भी आगे चलकर भगवान् पार्श्वनाथ उपदेशो से अत्यधिक प्रभावित हुआ हो और उसके फलस्वरूप अनार्य कहे जाने वाले उस समय के लोग अधिकाधिक धर्म मार्ग पर आरूढ हुए हो और इस कारण भगवान पार्श्वनाथ आर्य और अनार्य जगत् मे अधिक आदरणीय और लोकप्रिय हो गये हो।

आज जैन साहित्य के अन्तर्गत स्तुति, स्तोत्र और मंत्रपदो से भी ज्ञात होता है कि वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थकरो मे से भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति के रूप में जितने मत्र या स्त्रोत उपलब्ध होते है, उतने अन्य के नहीं है।

भगवान् पार्श्वनाथ की भक्ति से ओत-प्रोत अनेक महात्माओ एवं विद्वानो द्वारा रचित प्रभु पार्श्वनाथ की महिमा से पूर्ण कई महाकाव्य, काव्य, चारित्र, अगणित स्तोत्र आदि देश के विभिन्न भागों मे प्रभु पार्श्व के प्राचीन भव्य कलाकृतियो के विशाल मन्दिरो का बाहुल्य, ये सब इस बात के पुष्ट प्रमाण है कि भगवान् पार्श्वनाथ के प्रति धर्मनिष्ठ मानव-समाज पीढियो से कृतज्ञ और श्रद्धावनत रहा है। प्रभु पार्श्वनाथ को ''चिन्तामणी'' विशेषण भी लगाया गया है, इसका कारण भी यही हो सकता कि प्रभु पार्श्व की स्तुति करने पर प्रसन्न हुए पूर्वोक्त देव-देवियाँ भक्तों की चिन्ता को दूर कर अरमानो को पूर्ण करने मे सहयोगी बनते होगे। ऐसे पुरुषादानीय प्रभु पार्श्वनाथ की जन्म-जयंति हमारे जीवन मे आत्म-जागृति का सचार करे एवं समता-भावो के साथ सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करने का पराक्रम प्रगट करें।

17

चिदानन्द खेले होरी

भारतीय जीवन एवं संस्कृति में पर्व और त्यौहारो का विशेष महत्व है। पर्व एवं त्यौहार जीवन की नीरसता और जडता को भंग कर उसमे सरसता और नवचेतना का संचार करते हैं। हमारे जो मुख्य त्यौहार है, वे ऋतु परिवर्तन अथवा प्रकृति परिवर्तन के सूचक हैं। बाह्य प्रकृति मे काल-प्रवाह के साथ जो परिवर्तन होता है, उससे हमारे जीवन के तौर-तरीके और क्रिया-कलाप प्रभावित होते है। इस दृष्टि से ये पर्व और त्यौहार अपने बहिर्मुखी व्यक्तित्व के साथ-साथ आन्तरिक व्यक्तित्व एवं गुणवत्ता लिये हुए है। दीपावली, रक्षाबंधन, दशहरा, मकर-संक्रान्ति, अक्षय-तृतीया, होली आदि लोक-पर्वो को इस दृष्टि से देखा-परखा जाना चाहिए।

जब सूर्य मकर-रेखा से कर्क-रेखा की ओर अभिमुख होता है, प्रकृति मे परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है। सर्दी समाप्त होती है और उसकी कूख से गर्मी पैदा होने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इस अवस्था को बसंत कहा जाता है। सर्दी और गर्मी के संधी-काल में होली-पर्व आता है। इस पर्व के इर्द-गिर्द प्रकृति के कण-कण में चेतना का स्फुरण होता है। प्राचीनता के प्रतीक पुराने पत्ते झड जाते हैं और उनका स्थान नये पत्ते ले लेते हैं। नवीनता का अभिग्रहण इसकी प्रमुख विशेषता है। नवीनता को ग्रहण करने के लिये विशेष प्रकार की मानसिकता और संकल्प शक्ति की आवश्यकता होती है। इस बल का संचय नवीन भावों और विचारो का वाहक बनता है। प्रकृति मे शरद-ऋतु एक प्रकार से शक्ति संचय की ऋतु है। शक्ति का संचय जब अपने में सीमित नहीं रहकर लोक कल्याण के लिये प्रवृत्त होता है, तब वह सब ओर चेतना, उमंग और प्रसन्नता का भाव अभिव्यक्त करता है। बसन्त-ऋतु के रूप में प्रकृति का पल्लवित, पुष्पित और फलित होना प्रकारान्तर से संचित शक्ति का लोक-कल्याण के लिए समर्पण और वितरण है।

''होली'' शब्द मे परिपक्वता और पूर्णता का भाव है। जो फसल पक गई है, पूर्ण हो गई है, उसके विवेकपूर्ण उपयोग का भाव-संदर्भ होली पर्व के साथ जुडा हुआ है। जन-श्रुति के रुप में होली-पर्व के साथ तीन कथाए या घटनाए भी जुड़ी हुई है।

एक कथा इस प्रकार है-कहा जाता है कि हिरण्य कश्यप एक क्रूर अत्याचारी राजा था। वह सात्विक-वृत्तियो का विरोधी था। वह अपने को सर्वस्व समझता था। उसमे दंभ और दर्प कूट-कूट कर भरा हुआ था। वह क्रूर दानवो की आराधना करता था और उसका पुत्र प्रह्लाद धार्मिक संस्कारो से सम्पन्न प्रभु-भक्त था। अरिहत देव का पुजारी था। हिरण्यकश्यप को यह असह्य था कि उसका पुत्र वंश-परम्परा के प्रतिकूल संस्कारो मे पले। उसने अपने पुत्र को प्रभु-भक्ति का परित्याग करने हेतु बहुत प्रलोभन दिये, पर वह किचित् मात्र भी विचलित नहीं हुआ तो पिता ने उसे तरह-तरह से यातनाए दी, परेशान किया, धमकिया दी। वह शात भाव से सब कुछ सहता रहा, लेकिन जिस कार्य को करने के लिए उसकी आत्मा ने साथ नहीं दिया, वह उस कार्य को करने के लिए तैयार नहीं हुआ। एक दिन उसके पिता ने सोचा कि-''यह बालक अभी से हमारी परम्परा का उल्लंघन कर रहा है, तो बडा होकर न जाने क्या करेगा ? अत इसे जिन्दा ही जला देना चाहिए।'' ऐसा सोचकर हिरण्यकश्यप ने अपनी बहिन होलिका को बुलाया। होलिका के पास एक चुनरी थी, जिसे ओढकर वह जलती हुई अग्नि मे भी प्रवेश करके ज्यो की त्यो बाहर निकल सकती थी। भाई ने होलिका को कहा कि-''तुम अपनी चुनरी ओढकर प्रह्लाद को गोद मे लेकर इस अग्नि कुंड मे बैठ जाओ। दोनो भाई-बहिन के क्रूर एव नृशंस कर्म से सारा वातावरण आतंकित था। पर आठ वर्षीय सुकुमार बालक प्रह्लाद सारी स्थिति को भांपकर भी उतना ही शांत एवं निर्भिक बना रहा। जब होलिका ने प्रह्लाद को गोद मे लेकर अग्नि मे प्रवेश किया तो इस दृश्य को देखने वाले सभी भयातुर एवं शोकाकुल हो गये। वह प्रभु भक्त प्रह्लाद उस समय भी पूर्ण निर्भयता के साथ प्रभु स्मरण मे लीन था। प्रभु की असीम कृपा हुई, आत्मा की अचिन्त्य शक्ति ने काम किया, होलिका की चुनरी उड़कर प्रह्लाद पर गिर पडी, होलिका अग्नि की प्रचंड ज्वाला में जलकर भस्म हो गई और प्रह्लाद बच गया। इस घटना की स्मृति को जीवित बनाए रखने हेतु आज भी होलिका का दहन जगह-जगह

पर किया जाता है। कथा में होलिका दंभ असत् और अन्याय की प्रतीक है और प्रह्लाद सत्य, न्याय और आह्लाद भाव का प्रतीक है तथा होलिका दहन असत् पर सत्य की विजय, अन्याय पर न्याय की विजय का प्रतीक है।

दूसरी कथा या घटना होली पर्व के सदर्भ को काम-विजय से जोडती है। कहा जाता है कि जब ताडकासुर के अन्याय और अत्याचारो से लोग संतप्त और पीडित हो उठे तो उस पर विजय-प्राप्ति के लिए शिव से उत्पन्न शक्ति का नेतृत्व आवश्यक था। इसके लिए कामदेव ने बसन्त से मिलकर तपस्यारत शिवजी को उत्प्रेरित किया। परिणामस्वरुप शिवजी ने अपने तीसरे नेत्र से काम का दहन कर शक्ति रूप मे कार्तिकेय की सृष्टि की। इस कथा का एक प्रतीकार्थ यह हो सकता है कि जब तक काम का दहन नहीं हो है, तब तक शक्ति आविर्भूत नहीं होती। शक्ति के इस आविर्भाव काम को निःशेष कर देती है, तब जो शक्ति आविर्भूत होती है, उसके आगे अन्याय और अत्याचार ठहर नहीं पाते।

ऊपरी तौर से भले ही होली पर्व आमोद-प्रमोद का पर्व है, पर जब भीतर में पैठते हैं तो ज्ञात होता है कि यह राग-रंग और आमोद-प्रमोद बाहरी धरातल पर न होकर आन्तरिक चेतना के विकास पर आधारित है और चेतना का यह विकास कामना को जय करने में है। कामना को जय करने का अर्थ है-उन सारे विकारो पर विजय प्राप्त करना, जो चेतना को कलुषित करते हैं, विकृत करते है। इस दृष्टि से होली का पर्व विकारों को नष्ट करने का पर्व है।

एक तीसरी कहानी है-पतन से उत्थान की प्रतीक। यत्र-तत्र-सर्वत्र उसी के रूप लावण्य, चातुर्य और सौन्दर्य की चर्चा थी, विनय, प्रेम और स्नेह की तो साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थी। परन्तु उसमें एक भयंकर दुर्गुण था-चारित्रहीनता का। रूप की ज्वाला में जलने वालों की कमी कभी भी नहीं रही है। उसके रूप ने अनेक व्यक्तियों के मन को आकर्षित कर रखा था। जन-जन के मन को मुग्ध करने वाली यह नारी ओर कोई नहीं, बसन्तपुर नगरी के देवश्रमण ब्राह्मण की धर्मपत्नी देवानंदा की कुक्षि से उत्पन्न 5 भाईयो की इकलौती बहिन होलिका थी। होलिका के इस निन्दनीय कृत्य से माता-पिता बड़े दुःखी थे। उन्होने इस समस्या के समाधान हेतु अतिशीघ्र ही मालवदेश उज्जैनी मे निवसित गोविन्द ब्राह्मण के साथ उसका विवाह कर दिया। अव

होलिका कुल-वधू थी, पर उसके आचरण मे कोई अतर नहीं आया। पति ने उसको समझाने का भरसक प्रयत्न किया, पर सब बेकार रहा। यह उसके स्वाभिमान एवं पौरुष पर करारी चोट थी। भला कौन मर्दाना अपना अपमान सहन करे, अत. क्रोधित होकर उस स्वाभिमानी पति गोविन्द ने अपनी पत्नी होलिका से हमेशा के लिए सबंध-विच्छेद कर उसे घर से निकाल दिया। पर उस चारित्रहीन नारी होलिका को कोई शर्म नहीं आई, वह हंसती-विहसती अपने पीहर पहुची। पिता देव श्रमण इज्जत वाले थे। ज्योहि पता चला कि यह ससुराल से हमेशा के लिए निकाल दी गई है तो क्रोधित होकर अपने पवित्र वश को कलकित करने वाली उस दुष्टा को इस लोकोक्ति के अनुसार कि ''सोने की छुरी पेट मे भौकने के लिए नहीं होती।'' घर से निकाल दिया। अनुसरण किया, साथ दिया। तब मोहान्ध बनी माता ने उसका साथ दिया। वह भी बेटी के साथ घर से निकल गई। उस प्रसग से कामीजनो का मन-मयूर नाच उठा। उसके रूप पर कामान्ध बने पतंगे की तरह अपने जीवन को होमने लगे और वह होलिका भी मतवाली बनी प्रेमियो की संख्या बढाने लगी। ''कामातुराणा न भयं न लज्जा।'' कामान्ध व्यक्तियो को न किसी का भय रहता है न लज्जा। वह निर्लज्ज बन नगर के बाहर छोटी-बड़ी दो कुटियां बनाकर मॉ-बेटी अलग-अलग रहने लगी। इत्र की खुशबू और प्याज की गध छिपाये नहीं छिपती। इसी प्रकार विकृत कार्य भी कभी गुप्त नहीं रहते है। धीरे-धीरे होलिका के पाप का घडा भर चुका था, अब फूटने का समय नजदीक आ गया। उसके कुकृत्यो की चर्चा पूरे नगर मे फैल गई। अन्तत नगर-रक्षक ने राजा जितशत्रु को निवेदन किया कि-''राजन् ! होलिका का प्रबन्ध कीजिए, हमने उसको सही मार्ग पर लाने के काफी प्रयत्न किये पर हम असफल रहे। '' अब आपके आदेश के इच्छुक है। सर्प और राजा का क्रोध जगत्प्रसिद्ध है। जब राजा को सारी जानकारी हुई तो क्रोधित होते हुए उन्होने आदेश दिया कि अविलम्ब दोनो झोपड़िया जला दी जाय। उस दुष्टा का पाई-पाई बदला चुकाने हेतु राजा का यह कठोर आदेश था। तत्क्षण उनके आदेश का पालन किया गया। कुटिया जला दी गई। अग्नि किसे सुरक्षित छोड़ती है, उसकी लपटे आसमान को छूने लगी। दोनो कुटियो में सोये हुए पांच सौ दो व्यक्तियो का भक्षण कर गई।

दुष्ट कर्म का फल परलोक मे ही नहीं प्रत्युत इसी लोक मे दु ख रूप

होता है। देखिये, होलिका के दुष्कृत्य का दु.खरूप फल उसे उसी भव मे मिल गया, पर अभी दु.ख का अंत कहॉ ? आर्त्तध्यान से मरने वाला दुर्गति का ही अधिकारी होता है। वे सब मरकर राक्षस जाति के वाणव्यंतर देव हो गये। वहॉ भी उन्हे अपने वैर का स्मरण हो आया। प्रतिशोध की भावना जाग उठी। वे राजा और प्रजा दोनो को परेशान करने लगे। राजा के दु.ख का पारावार नहीं रहा। मत्रवादी तंत्रवादी सभी के प्रयत्न निष्फल रहे। राक्षसो का हौसला प्रतिदिन बढता गया। उन्होंने कई मनुष्यों को मौत के घाट उतार दिया। जब आचार्य गुणसागरजी एवं उनके 500 शिष्यो को उसी वन में उन राक्षसों ने ध्यानारुढ देखा तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए, बल प्रयोग करने के लिए उत्सुक उन राक्षसो के पैर वहीं के वहीं धरती पर चिपक गये। उठाये गये शस्त्र हाथ मे ही रह गये। आज दिन तक कभी उनका वार खाली नहीं गया था। उन्हे बडा आश्चर्य हुआ। होलिका तो ठगी सी चित्रलिखित रह गई, उसे यह सब अपूर्व लगा। उसकी जिज्ञासा हुई और उसके तथा मुनियों के बीच इस प्रकार से वार्तालाप हुआ–

प्रश्न– ''आप कौन है ?''

उत्तर–''हम साधु है।''

प्रश्न– ''साधु किसे कहते हैं ?''

उत्तर–स्व-पर हित साधयते इति साधु·। जो अपना और दूसरो का हित साधते हैं, वे साधु है।

प्रश्न– ''आपका सिद्धान्त क्या है ?''

उत्तर– हमारा सिद्धान्त कर्मवाद में विश्वास रखता है।

प्रश्न– ''कर्मवाद का क्या अर्थ है ?''

उत्तर–सुख दु ख स्वकृत होता है। परकृत नहीं। यही कर्मवाद है।

प्रश्न– ''क्या दु:ख परोपार्जित नहीं होता है ?''

उत्तर–नहीं, कदापि नहीं।

प्रश्न– ''तो प्रत्यक्ष राजा और नगर रक्षकों ने मुझे दु.ख दिया, अग्नि में जला दिया। क्या यह दु.ख परकृत नहीं था ?''

उत्तर–नहीं, कभी नहीं। यह दु ख तो तुम्हारे द्वारा आचरित कृत्यों

ने ही उत्पन्न किया था।

भगवन् ! तो क्या ऐसी बात है ? फिर मै अपने कृत इन सारे दु खो से क्या मुक्त हो सकती हूँ ?

क्यो नहीं, अवश्य मुक्त हो सकती हो। पर एक शर्त है।''

''क्या शर्त है ?''

''तुम्हे इसका प्रायश्चित करना होगा ?''

''प्रायश्चित क्या होता है ?''

''बच्चे की तरह अपने पापकृत्यो को गुरु के समक्ष प्रगट करना तथा मन मे पश्चात्ताप की अनुभूति करना, उसकी आलोचना, निन्दा, गर्हा करना। मन मे यह अनुभव करना कि मैने गलत कार्य किये है।''

क्या ऐसा करने से पाप समाप्त हो सकता है ?

''अवश्य''। पश्चात्ताप की अग्नि मे सारे पाप भस्म हो जाते है।''

ऐसा ही हुआ, होलिका ने अपने सारे पाप बालिका की तरह निश्छल भाव से बिना किसी लुकाव-छिपाव किये गुरु, राजा एव नागरिक जनो के समक्ष प्रगट कर दिये।

इस सत्कार्य से होलिका के भीतर का मिथ्यात्व रूपी अंधकार दूर हुआ और समकित के महान् प्रकाश से उसकी अन्तरात्मा जगमगा उठी। उसने अपनी शुद्धि हेतु नागरिक जनो को आदेश दिया कि ''मेरी आत्मा की कालिमा को मुझे दूर करना है, अत आप एक कार्य करे कि हर वर्ष फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा के दिन दो छोटी-मोटी झोपड़िया बनाकर मुँह से मेरी निन्दा करते हुए झोपडिया जला देना और दूसरे दिन चैत्र वदि एकम को झोली भर-भर कर धूलि उड़ाना तथा नगर मे ढिढोरा पीटना कि ''जो कोई व्यक्ति होलिका की तरह अनार्य कृत्य करेगा, उसके सिर पर धूलि गिरेगी।'' पर निन्दा से कर्म बध और आत्म-निंदा से कर्म निर्जरा होती है। पर खेद है, इस बात को भूल-भूलैये में डालकर गुण छोड अवगुण ग्रहण करते हुए नागरिक जनो ने होलिका के आदेश का पूर्णतया पालन किया और आज तक कर रहे है। होलिका ने तो प्रायश्चित के माध्यम से अपने पापो की होली कर दी और भवस्थिति संक्षिप्त करदी पर दूसरो की बुराई और निन्दा करने वालों की क्या स्थिति होगी ? यह विचारणीय है। पतन से उत्थान की ओर,

अंधकार से प्रकाश की ओर कदम बढाने वाली होलिका की स्मृति में मनाये जाने वाला यह होली पर्व हमारे भी पापों का अवसान करने वाला बनें।

होली पर्व हमें यह संदेश दे रहा है कि जैसे फाल्गुनी पतझड के बाद धरा पर बसंत उतरता है वैसे ही साल भर के पारस्परिक व्यापार-व्यवहार से पीले पडे अवाछनीय निर्जीव पत्तों को उतार कर फैंक दो और नई उमंगें, नये उत्साह से जीवन-वृक्ष पर नई बहारें ले आओं। आलस्य-प्रमाद, अज्ञानवश आत्महित साधे बिना जीवन के जो अनमोल बसत बीत गए हैं, वे तो गए, निर्माण की स्वर्णिम घड़ियो की जो बरबादी हो ली, वह तो हो ही ली। अब सजग बन जाओ। जब जागे, तभी सवेरा।'' वर्तमान काल बड़ा कीमती है। जीवन का उत्तरार्ध हर दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान होता है। ध्यान रहे, यह शरीर जीर्णता की ओर कदम-दर-कदम बढ़ रहा है, एक दिन निष्क्रिय-निष्प्राण बनकर मिट्टी की परतो में समा ही जाने वाला है। आत्मा अजर-अमर-अविनाशी है, वह न मरता है, न जन्मता है, न शिशु, युवा, वृद्ध होता है। मरण-धर्मा शरीर है, आत्मा नहीं। आत्मा ही मेरा शाश्वत स्वरूप है। उसे उपलब्ध होने, निखारने, परम-पवित्र करने के लिए, मैंने क्या प्रयत्न किया ? सद्गुणों से सुवासित, संयम-सौहार्द्र-समरसता से भावित किया या नहीं ? अज्ञान, आकांक्षा, प्रमादवश जो गलतियां हो-ली, वे तो हो-ली, अब उन्हें परिमार्जित कर नई सृष्टि की अभिनव सर्जना करनी है, नए शुभ संस्कारों का मधुमास लाना है। करना है–समुज्ज्वल भविष्य का निर्माण। यदि यह सकल्प जागता है तो होली पर्व पावन प्रभात ला सकता है।

जैन-धर्म में होली-पर्व, चातुर्मासिक पर्व के रूप में मनाया जाता है। एक वर्ष में तीन चातुर्मासिक पर्व होते हैं–आषाढी पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा एवं फाल्गुनी पूर्णिमा। जैन साधक साधना के सोपानों पर चरण बढाकर पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की भांति अपनी साधना की समस्त कलाओं को विकसित करता हुआ सिद्धि की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहे, यही इन चातुर्मासिक-पर्वो का पावन-संदेश है।

होली-चातुर्मासिक पर्व पर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएँ यथाशक्य दया, सवर, उपवास, बेला, तेला, पौषध आदि तपश्चर्या पूर्वक प्रतिक्रमण प्रायश्चित द्वारा आत्मशोधन करते हुए आत्म-शुद्धि हेतु क्षमायाचना करते हैं। चूंकि होली पर्व हमें यही संदेश दे रहा है कि हो ली

अर्थात् जो भी जीवन में त्रुटि हो गई सो हो गई, हुई भूल की निदा गर्हा आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित एव क्षमायाचना करके आत्मा को शुद्ध बनालो और मोक्ष-मार्ग पर आगे से आगे बढते चलो।

लोकमान्यता अनुसार भी होली पर्व बुराइयो के विध्वस का पर्व है। होली जलाने के लिए लोग इधर-उधर पडा कूड़ा कचरा, झाड-झखाड इकट्ठा करते है। चारो तरफ पड़ी गन्दगी साफ करके एक जगह ढेर लगाकर जलाते है। ठीक वैसे ही जैन धर्म कहता है–भीतर मे रही हुई समस्त बुराइयो को ढूंढ-ढूंढकर दूर कर डालो और आत्मा को स्वच्छ, परम-पवित्र बनालो।

कृषि-प्रधान भारत देश में किसानो का महत्त्व सर्वोपरि है। होले (चने) आदि धान्यो की खेती पककर किसानो के घर आ जाती है, परिश्रम का सुपरिणाम किसानो को खुशियो से भर देता है। किसानो की खुशी का त्यौहार, सबकी खुशी का त्यौहार बन जाता है। किसान खुश है तो सभी खुश-सुखी रहते है। सारा ससार-चक्र सुचारू चलता है–खेती पर। बसंतागमन से न केवल शरीर मे नए रक्त का संचार होता है, अपितु सम्पूर्ण भूमडल मे नए जोश का सचार होने लगता है। मूलत समृद्धि और स्नेह-सिक्तता का यह त्यौहार, प्रेम-मैत्री के रग मे रग जाने का त्यौहार है। इस पर्व के साथ जो रग खेलने का संदर्भ जुडा है, वह वस्तुत हृदय की कोमल भावनाओ को व्यजित करने का सास्कृतिता के साथ-साथ आध्यात्मिकता का भी प्रतीक है। होली के दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व ही लोगो की टोलिया सड़को और गलियो मे फाग भरे रगो से झूमती हुई दिखाई देती है। आत्मीयजन मन की कडवाहट, तनावो एवं द्वेष-भावना को मिटाकर वर्ण, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि किसी का भी भेद-भाव नहीं रखते हुए एक-दूसरे के गुलाल लगाते है और हर्ष मनाते है। प्रकृति भी विविध रगो में खिलकर अपना स्नेह और उल्लास प्रकट करती है। होली के साथ जुड़े हुए इस व्यापक लोकधर्म के मर्म को नहीं समझने के कारण इसके साथ कुछ विसंगतियां और अशोभनीय कृत्य भी जुडते चले जा रहे है। जैसे गुलाल की जगह आजकल नालियो का गदा पानी, कीचड़ आदि भी उछाल कर आनंद लेते है तथा स्त्री-पुरुषो पर कोडे मार कर भद्दे गीत गाकर भी यह त्यौहार मनाया जाता है। यहीं नहीं वर्तमान मे इस पर्व पर विशेष रूप से नशीले, मादक द्रव्यो का शराब आदि का आसेवन, फिर शराब के नशे में तोड़-फोड़

आदि जो कार्य किये जाते है जो कलह और संघर्ष को जन्म देने वाले है। इसलिए महापुरुष फरमाते है यह प्रेम-मैत्री के रंग मे रंग जाने वाला त्यौहार रंग के बजाय, रक्त में रंगने के लिए, हल्के, हानिकारक, गंदे रंगो से रंगने, पर्यावरण-प्रदूषण बढाने, पानी का अपव्यय करने, लकडी आदि राष्ट्रीय सपत्ति का नुकसान करने का त्यौहार नहीं है। आज का विकृत रूप न केवल होली के रग को बदरंग करता है अपितु समय धन स्वास्थ्य, राष्ट्रीय-संपत्ति (वन-जल) की हानि व अनर्थ हिंसा के साथ जल को व्यर्थ ही में बहा देने का निमित्त बनता है।

भास्कर-सबरग 9 मार्च 2002 के अंक मे छपे डॉ आर वी. आचार्य के "**होली के रंग और स्वास्थ्य रक्षा**" शीर्षक लेख के अनुसार प्राचीन काल के लोग एक-दूसरे पर दूध, दही, गुलाब, केवडा प्रमुख सुगन्धित पुष्पों के जल एवं इत्र, पलाश के फूलों से उतारा गया रंग डालते थे और हल्दी व चन्दन का लेप लगाते थे। इसके तह मे वैज्ञानिक कारण थे। आयुर्वेद के अनुसार बसंत ऋतु में शरीर में वात-कफ दोष बढे रहते हैं। इस ऋतु मे हवा में शीतलता होने से शरीर में रूक्षता रहती है तथा सूर्य की रश्मियों मे प्रखरता से गर्मी का प्रारंभ हो जाता है, ऐसे मे उक्त द्रव्यो का सिंचन अथवा लेपन-शरीर मे कोमलता, स्निग्धता व शीतलता प्रदान करता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित विधि, समय परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो गई। आज होली खेलने मे कीचड, गोबर, कोलतार, पेट एवं सिन्थेटिक रंगों का प्रयोग किया जाता है, जो कुत्सित मनोवृत्ति का परिचायक और स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है।

सिंथेटिक रंगो का सर्वाधिक दुष्प्रभाव त्वचा पर होता है, इन रंगों द्वारा त्वचा पर जलन, खुजली, लालिमा, सूजन, रुखापन, फफोले पडना, त्वचा का फटना, बदरंग होना, एक्जिमा आदि लक्षण प्रकट होते हैं जो इन द्रव्यों से एलर्जी के कारण उत्पन्न होते हैं। कुछ खतरनाक रसायन, जो रंगों मे मिले रहते है, त्वचा द्वारा अवशोषित होकर अन्य रंगों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। इनके दुष्प्रभाव से सिर के बाल रूखे बेजान हो जाते है। बालो की जडों से अवशोषित होकर उन्हें स्थाई रूप से कमजोर कर देते हैं, जिससे असमय बालो का पकना, झडना, गंजापन आदि लक्षण मिलते हैं। छोटे बच्चों की त्वचा व अंग कोमल होते है, इन पर तुरन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

कानो मे रग चले जाने पर सुनने की क्षमता पर स्थाई रूप से हानि पहुचती है। ऑखो की ऊपरी परत बेहद मुलायम और संवेदनशील होती है, विभिन्न प्रकार के रंग तात्कालिक या स्थाई विकृत्ति पैदा करते है। इनमे मुख्यत· ऑखो मे सूजन, कार्निया पर घाव तथा दृष्टि मे धुधलापन या ग्लूकोमा की सभावना अधिक रहती है। फूगो मे रंग भरकर फैकने से कान, ऑख, नाक पर चोट आ सकती है। मुँह के द्वारा ये रग पेट मे पहुच कर छाले, अल्सर, गैस्ट्राइटिस आदि तकलीफें उत्पन्न करते है।

होली पर हुलियारो की टोलिया, गली-गली, घर-घर मे मस्ती बिखेरती, रग उड़ाती, चेहरो पर रग मलती हुई नजर आती है किन्तु ध्यान रहे कि उपरोक्त दुष्परिणामो के साथ मुख व शरीर पर लगा रग छुड़ाने के लिए, चमडी को इस तरह रगडा जाता है कि चमडी उधडने लगती है, रग छुड़ाने के चमड़ी पर जलन व दाग पड़ने की आम शिकायतो के साथ रग छुडाने मे करोडो लीटर पानी फालतू बहा दिया जाता है। सामान्यत नहाने मे एक दो बाल्टी पानी पर्याप्त होता है। वहीं होली का रग छुडाने मे दस-बीस बाल्टी पानी भी कम पड़ता है। भास्कर श्री गगानगर 24-25 मार्च 2002 मे छपे श्री भगवान उपाध्याय के आलेख के अनुसार-"अकेले भोपाल शहर मे होली के दिन लगभग 530 गेलन अतिरिक्त पानी की सप्लाई होती है। रग-पचमी के दिन भी यही स्थिति रहती है। यदि इन दो दिन के अतिरिक्त खर्च होने वाले पानी की बचत कर ली जाय तो इस पानी का उपयोग 50 लाख लोग कर सकते है।" यह तो एक शहर के जल के अपव्यय का हाल है, पूरे हिन्दुस्तान में गॉवो-नगरो का लेखा-जोखा किया जाय तो दंग रह जाना पडता है। जल-अपव्यय के साथ शरीर व कपडो के छूटे हुए रग के असर से नदी-नालो-नहरो, तालाबो का पानी रंगीन ही नहीं होता, प्रदूषित भी हो जाता है।

जल, वन की लकडिया व अन्य वस्तुओ के निरर्थक अपव्यय का हिसाब किया जाय तो दिल दहल उठता है। पुतला-दहन का क्या कोई अर्थ है ? बारुद से होने वाली जानमाल की हानि और फैलते प्रदूषण पर कभी सोचने का कष्ट किया जा रहा है क्या ? केवल लोक-प्रवाह मे बह जाना कोई समझदारी नहीं है। व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो जल जो जीवन है, उसका अपव्यय और फैलता-प्रदूषण

के पुत्र थे। पिता का नाम भी कितना सार्थक था जो प्रभु को संकेत कर रहा था कि तुम्हे इसी जन्म मे सारे कार्य सिद्ध करने हैं अथवा तुम इस जन्म मे ही सिद्ध अर्थ वाले होंगे। उनकी माता का नाम त्रिशला था। प्रभु महावीर की माता बनने का गौरव इस महान नारी को मिला था, जो गणतंत्र के प्रमुख वैशाली नरेश चेटक की बहन थी। प्रभु महावीर का जन्म जिस क्षत्रिय कुण्डग्राम मे हुआ था। वह ज्ञातवंशीय क्षत्रियो का प्रधान केन्द्र था। एक प्रकार से ज्ञातवशीय क्षत्रियो की छोटी-सी राजधानी थी और वह वैशाली का ही एक भाग था। जिसके लिए तथागत बुद्ध आख्यान करते थे कि ''स्वर्ग के देव-देवियो को देखना हो तो चले आओ, प्रभु महावीर की जन्म भूमि पर यानि वहॉ के नर-नारियो को देव तुल्य माना जाता था। प्रभु जब माता त्रिशला के गर्भ मे थे, तब से ही उनकी दिव्य प्रतिभा की झलक मिलती थी, माता त्रिशला का समय अक्सर ज्ञान-गोष्ठियों में व्यतीत होता था। भगवान् महावीर की जन्मधात्री माता त्रिशला से किसी ने निम्न प्रश्न पूछे, जिनके निम्न उत्तर देते हुए उन्होने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। उनसे पूछा गया-''सत् पुरुष कौन होता है ?''

''धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप चार पुरुषार्थो को जो सिद्ध करके निर्वाण पाये, वही सत् पुरुष है।''

और कायर कौन होता है ?

जो मनुष्य जन्म पाकर भी धर्म अर्थ काम, मोक्ष रुप पुरुषार्थो को सिद्ध न कर सके, निवार्ण प्राप्त न कर सके वह कायर पुरुष है।

अच्छा, विद्वान कौन होता है ?

विद्वान वह है, जो शास्त्रों को जानकर पाप मे रत नहीं होता, मोह मे नहीं फंसता। विषयों से पराजित नहीं होता है वही विद्वान है।

इस प्रकार महिलाओ में श्रेष्ठ विदेहदत्ता प्रियकारिणी त्रिशला माता की विद्वता इन्हीं उत्तरों से झलकती है। मां का पद सदैव महानता का द्योतक होता है। प्रभु महावीर मां के गर्भ में थे, तभी उन्होंने अवधिज्ञान से जाना कि जो माता वदनीय, पूज्यनीय है, उस नारी का उत्पीड़न हो रहा है, अर्द्धवस्त्री कर बाजारो के चौराहों पर बेचा जा रहा है, नारी उत्पीड़न का नहीं, पूजा का स्थान है। तो प्रभु ने एक प्रयोग किया, जिस प्रयोग में प्रभु ने स्वयं का

हिलना डुलना बंद कर दिया, इस विचार से कि ''मैं मा के उदर मे स्थित स्पंदन-कपन करता हू, इससे मेरी मा को कष्ट होता होगा।'' पर परिणाम उल्टा हुआ, चाहते थे माता को कष्टमुक्त करना, पर माता का कष्ट बढ गया। माता के मन मे आशका उत्पन्न हुई कि क्या गर्भ जीवित है या नहीं ? और यदि जीवित है तो हलन-चलन बद क्यो ? वह एकाएक व्यथित हो उठी। उसने महाराज सिद्धार्थ को इस वृत की सूचना दी, वे भी व्यथित हो उठे। जैसे-जैसे वृत फैलता गया, वैसे-वैसे व्यथा भी फैलती गई। पूरा राजपरिवार शोकमय हो गया। महावीर प्रभु ने बाहरी घटनाओ को अपने ज्ञान से देखा, वे आश्चर्य-चकित रह गये। उन्होने सोचा-कभी-कभी अच्छा करना भी बुरा हो जाता है। मैने माता के सुख के लिए हिलना-डुलना बद किया था, वह दु ख के लिए हो गया। स्वाभाविक को अस्वाभाविक प्रयत्न मान्य नहीं है। प्रभु महावीर ने पुन हलन-चलन प्रारम्भ कर दी। माता की आशंका दूर हो गई। वातावरण पुन हर्षमय बन गया। उस समय गर्भस्थ प्रभु ने चितन किया-''मेरे स्पन्दन बद कर देने से मा को इतना कष्ट हो सकता है तो यदि मै माता-पिता की विद्यमानता मे सयम पथ स्वीकार कर लूगा तो उन्हे कितना कष्ट होगा। अत मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि माता-पिता की विद्यमानता मे संयम पथ स्वीकार नहीं करूंगा।'' यह प्रसग स्पष्ट करता है कि प्रभु महावीर ने जन्म से पूर्व गर्भकाल मे ही अंहिसा/करूणा को आत्मसात कर लिया था। उसका साक्षी आचाराग सूत्र है, वहा उल्लेख आया है कि-''**जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं।**'' प्रभु ने सम्पूर्ण सृष्टि के दु ख को जाना और उन्हे साता पहुचे, ऐसा उपाय किया। उसकी शुरुआत की मातृ हृदय से, क्योकि मातृ हृदय करुणा-संवेदन का स्थान है। एक माता जन्म दाता होती है तो दूसरी जीवनदाता। जीवन दान मे छ काया के जीवो का असीम उपकार है। अत षट्काया के जीवो की रक्षा हेतु प्रभु ने अहिसा का सूत्र दिया। स्वय ने अष्ट प्रवचन माता का पालन कर साधक जीवन को अष्ट प्रवचन माता का आराधक बनाया।

महावीर ने जब जन्म लिया, तब माता-पिता ने सोचा-''बालक का नामकरण क्या किया जाय ? नाम यथार्थ होना चाहिए।'' उन्होंने निर्णय किया- इस बालक ने जब हमारे कुल मे प्रवेश किया है, तब से हम बढते रहे है, सब कुछ बढ़ता रहा है, मन की प्रसन्नता भी बढी है। इसलिए बालक का

नाम **वर्द्धमान** रख दिया। यह महावीर प्रभु का प्रथम जन्म नाम था।

प्रत्येक इंसान वर्द्धमान हो सकता है। वर्धमान होने के लिए दो बाते अपेक्षित है– पराक्रम और सन्मति। यदि पराक्रम नहीं होता तो कोई बढ नहीं सकता। यदि सन्मति नहीं होती तो कोई बढ नहीं सकता। वर्धमान महावीर बने, वे सन्मति बने। इसलिए सदा वर्धमान रहे। सन्मति और पराक्रम-ये दो तथ्य विकास के लिए आवश्यक है।

प्रभु का दूसरा नाम था **सन्मति**। यह नाम रखा था- संतों द्वारा। भगवान पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षित संजय और विजय इन दो संतों को तत्त्व विषयक शका थी, वे उसका समाधान नहीं पा रहे थे, न कोई ऐसा विद्वान उन्हें मिला जो उनकी शंका का समाधान कर सके। एक बार वे वैशाली होकर जा रहे थे। वहाॅ पर उन्हें राजकुमार वर्धमान से साक्षात्कार हुआ और वर्धमान से उन मुनियो की शंका को दूर कर दिया तब उन्होने वर्धमान का नाम ''सन्मति'' रखा।

तथा बाल्यावस्था के कतिपय वीरोचित अद्भुत कार्यो से प्रभावित होकर देवो ने गुणसम्पन्न तीसरा नाम ''महावीर'' रखा।

त्याग-तप की साधना मे विशिष्ट श्रम करने के कारण शास्त्रकारो ने आपको श्रमण भी कहा है । विशिष्ट ज्ञान संपन्न होने से ''भगवान'', ज्ञातकुल मे उत्पन्न होने से ''ज्ञातपुत्र'' आदि विविध नामों से भी आपका परिचय मिलता है।

जब प्रभु महावीर 28वां वर्ष पूर्ण कर रहे थे, तब उनके माता-पिता स्वर्गवासी हो गये। उन्होने श्रमण होने की भावना प्रकट की। उनके चाचा सुपार्श्व और बडे भाई नन्दीवर्धन ने कुछ वर्षो तक घर में रहने का अनुरोध किया। प्रभु महावीर की विनम्रता उसे अस्वीकार नहीं कर सकी और उनका सकल्प गृहवास को स्वीकार नहीं कर सका। इस अन्तर्द्वन्द्व ने एक नये मार्ग की खोज की। शायद यहीं पर उन्होने यह सूत्र निर्मित किया होगा-जिसकी वासना नहीं छुटी और श्रमण बन गया वह घर मे नहीं, पर घर से दूर भी नहीं है। वासनामुक्त होकर घर में रहते हुए भी घर से दूर रहा जा सकता है। वे दो वर्प घर मे रहते हुए घर से दूर रहे। इस अवधि मे उन्होने विदेह-साधना की। वे परिवार के बीच मे रहकर भी अकेले रहे। जिसकी शरीर मे आसक्ति नहीं है वह समुदाय में रहकर भी अकेला रह सकता है।

इन दो वर्षो की साधना से उनके श्रामण्य की पृष्ठभूमि और अधिक सुदृढ हो गयी। गुरुजनों के अनुरोध की अवधि पूर्ण हुई। उन्होने अनुभव किया-घर में रहकर घर से दूर रहना सम्भव हो सकता है। पर यह सामुदायिक मार्ग नहीं है। यह कुछ लोगो का मार्ग है। सामुदायिक मार्ग यह हो सकता है-बाह्य अभ्यन्तर सम्पूर्ण संयोगों से दूर रहने के लिए घर को भी छोड़ देना। सबके कल्याण की बात सोचने वाले प्रभु महावीर ने सामुदायिक मार्ग अपनाया और परिवार की अनुमति प्राप्त की। अभिनिष्क्रमण कर कुण्डग्राम के बाहर उद्यान मे गए । जनता के समक्ष उन्होने स्वय सिद्धो को नमस्कार कर दीक्षा अंगीकार की और आजीवन समता के पथ पर चल पड़े।

भगवान महावीर की साधना का पहला चरण इस संकल्प के साथ उठा-आज से मै विदेह रहूंगा, देह की सुरक्षा नहीं करुगा। सर्दी गर्मी के परिषहो को झेलूंगा। जो भी कष्ट आये उसे सहन करूगा। रोग की चिकित्सा नहीं कराऊगा। भूख और प्यास की बाधा से अभिभूत नहीं होऊगा। नींद पर विजय प्राप्त करूगा।

भगवान महावीर ने अनुभव किया कि अभय के सधे बिना समता नहीं सध सकती और विदेह के सधे बिना अभय नहीं सध सकता। मानवीय दुर्बलताओ का मूल स्रोत भय है। मानव की महान् शक्ति के विकास का मूल स्रोत अभय है। भय का आदि बिंदु है-देह की आसक्ति। देह की आसक्ति छोड़ना, विदेह होना ही अभय की सिद्धि है। भगवान महावीर जैसे विदेह की साधना मे आगे बढे वैसे वैसे उनकी अहिंसा, मैत्री और शाति की शिखा अधिक प्रज्वलित हो गई। हिंसा, वैर, अशान्ति ये सब देह मे होते है। विदेह मे नहीं होते।

भगवान की साधना का मूल-मंत्र था-समता। न राग, न द्वेष। चेतना की यह राग-द्वेष रहित अनुभवदशा ही समता हे। भगवान ने अनुभव किया कि दु:ख का मूल-बीज है- कर्म और कर्म का मूल-वीज हे-राग-द्वेष। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह ये राग-द्वेष के ही परिणाम है। राग-द्वेष के होने पर ये होते है। उनके न होने पर नहीं होते हे। भगवान् ने साढे बारह वर्ष के साधनाकाल मे केवल 350 दिन भोजन किया, शेष सारा समय अनशन तप मे बीता। उन्होने छ मास तक लगातार उपवास किये। भगवान ने समूचे साधना काल मे कुल मिलाकर अडतालीस मिनिट से

अधिक नींद नहीं ली। भगवान ने सर्दी गर्मी से बचने के लिए कभी वस्त्र भी नहीं ओढा। कष्ट आने पर किसी की शरण में नहीं गये। चींटियो ने सताया, जंगली मच्छरों ने काटा, अग्नि से पैर झुलस गये, चंडकोशिक ने डंक मारा पर भगवान् समभाव की मुद्रा में स्थित रहे। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान, जीवन-मरण के अनगिनत प्रसंगों और घटनाओ ने भगवान की समता की कसौटी की। हर कसौटी पर भगवान खरे उतरे, उनकी विदेह साधना सिद्ध हो गई। उनकी समता साधना सिद्ध हो गई। वे वीतराग की भूमिका पर पहुंच गये। केवली हो गये। परोक्ष ज्ञान का लोहावरण टुट गया। वैशाख शुक्ला 10 का केवल्य प्राप्ति का जैन इतिहास मे सदा के लिए अजर अमर रहेगा। उस शुभ दिन उनकी चेतना अनावृत हो गई। उन्हें ज्ञान के माध्यमो की अपेक्षा नहीं रही। इन्द्रिय मन और बुद्धि की उपयोगिता समाप्त हो गई। उनके लिए सब कुछ प्रत्यक्ष हो गया। साधना काल में प्रभु मौन रहे। अरिहंत बनने के बाद देशना मुखरित हुई जन-जीवन के मंगल कल्याण के लिये। प्रभु ने "**मित्ति मे सव्वभूएसु**" का सिद्धान्त दिया। प्रभु ने जातिवाद को नहीं कर्मवाद को प्रमुख माना। प्रभु ने कहा कि जाति से कोई ब्राह्मण वैश्य क्षत्रिय और शुद्र नहीं होता है। '**कम्मुणा बंभणो होइ**' कर्म से ही ब्राह्मण होता है। "**जाइ विसेस न कोई**" जाति से काई विशेष नहीं होता है। प्रभु ने अपने शासन में हरिकेशी गौतम, जम्बू एवं मेघ सभी को दीक्षा दी। आर्द्रकुमार जैसे आर्येतर जाति के युवको को भी अपने शासन में दीक्षा दी। नारी के उत्पीड़न को समझकर नारी जाति का सम्मान हेतु 13 अभिग्रह लेकर चदना को दीक्षा दी और शासन में साध्वी-संघ की प्रमुखा बनाई। (सुना जाता है कि चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सामूहिक एकता का परिचय देती है। यह कहाँ तक ठीक है यह मुझे पता नहीं पर कहना चाहूंगी कि एकता का रूप देखना है तो समाज को स्वस्थ करना होगा। आज समाज इतना विखंडित एवं रुग्ण बन चुका है। समाज की बात तो रही, परिवार मे भी मै-मै, तूं-तूं चलती है। इस रुग्णता को हटाने के लिए धार्मिक क्राति लागू करें, तभी व्यक्ति सुधर सकता है। व्यक्ति सुधरेगा तो परिवार सुधरेगा और परिवार सुधरेगा तो समाज सुधरेगा।)

हम भगवान महावीर के अनुयायी उनका जन्मदिन मनाते है, उनके प्रति अपनी प्रगाढ आस्था का अर्घ्य चढाते है, उनकी प्रशस्ति करते हैं और

गौरव का अनुभव करते है किंतु ऐसे कितने व्यक्ति है जो महावीर को वास्तविक अर्थो मे जीते है। आज हमे भगवान महावीर की जयकार की नहीं अपितु उनके उपदेशो को जीवन मे सत्कार देने की आवश्यकता है। सत्कार का मतलब आचरण, जीवन व्यवहार मे स्वीकार।

यह कटु सत्य है कि आज महावीर को हमने केवल अपनी प्रतिष्ठा का आधार बना लिया। हम जैन है हमने जैन कुल मे जन्म लिया है, इसीलिए हम महावीर से जुड़े विशेष प्रसंगो एव सभा समारोहो मे अपने आपको सम्मिलित कर लेते है।

कहने को हम महावीर के भक्त है, पर क्या कभी हम विचार भी करते है कि भक्त का रहन-सहन और जीवन कैसा होना चाहिए ? महावीर ने क्या कहा और हम क्या कर रहे है ? यदि गहराई से हमने इस संबध मे विचार किया तो हमे अपनी भूल का अहसास हुए बिना नहीं रहेगा।

हमे प्रभु महावीर के सिद्धान्तो को गहराई से समझने का प्रयास करना चाहिए। प्रभु महावीर की अंहिसा आज विश्व विश्रुत है। उन्होने जनता को अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया, परन्तु उसे पहले स्वय जीया। उनके जीवन का हर पड़ाव अहिंसा की प्रयोगस्थली रहा। गर्भ से लेकर निर्वाण के आखिरी क्षण तक उनके जीवन मे अहिसा की लौ अप्रकम्प जलती रही। प्रभु महावीर का सारा जीवन ही इसका साक्षात् निर्देशन है। माता-पिता के जीवन काल मे प्रव्रज्या ग्रहण न करने का सकल्प महावीर के चितन की व्यापकता को उजागृत करता है। उन्होने चाचा एव भाई के अनुग्रह को नहीं टालते हुए कुछ समय और घर मे रहना स्वीकार किया। गौशालक जैसे अविनित शिष्य को भी सहारा दिया। दासता की बेड़ियो मे जकड़ी एक अबला के हाथो से स्वय ने भिक्षा ग्रहण की। अर्जुन मालाकार रोहिणेय जमाली जैसे हिसक और मिथ्याभिनिवेश से ग्रस्त अनेक लोगो को सबोध दिया। ये सारे प्रसग महावीर प्रभु की कोमल मानसिकता के अद्‌भुत उदाहरण है। अहिसा का फलित है–हृदय की कोमलता। सहिष्णुता और समता का विकास अहिंसा की पृष्ठभूमि पर ही संभव है। यही वजह है कि प्रभु महावीर हर स्थिति मे समता व संतुलन की डोर से बंधे रहे। अहिसा हमे सिर्फ किसी की हिसा न करने की प्रेरणा ही नहीं देती है, अपितु अहिसा के पीछे निहित भावनाएं प्राणीमात्र के हित चिन्तन से जोड़ देती है। इसलिए

साधन एवं साध्य दोनों रूपों में अहिंसा का अपना वैशिष्ट्य है। इसलिए महावीर प्रभु ने अहिंसा को साधना का प्रथम सोपान एवं जीवन का चरम लक्ष्य माना है। व्यक्तित्व निर्माण के लिए जरूरी है-अहिंसात्मक चेतना का जागरण। स्वस्थ समाज-संरचना का आधार सूत्र है-अहिसा। अहिंसा वर्तमान का अनेक ज्वलंत समस्याओं का सटीक समाधान है। प्रभु महावीर ने कहा–हिंसा ग्रंथि है, निर्ग्रन्थता की महान साधना का नाम है-अहिसा। हिंसा मोह है, वीतरागता की महान साधना का नाम है-अहिंसा। हिंसा मृत्यु है, अमरत्व की दिशा मे प्रस्थान का नाम है, अहिंसा। अहिंसा का पाथेय हमें सदा पोषण देता रहे, अहिंसा हमारे आचरण में उतर जाये। अहिंसामूलक चिंतन हमारा केन्द्रीय लक्ष्य होना चाहिए। मानसिक चिंतन अहिंसा और हिसा दोनों का केन्द्र बिदु है। जैन कथा साहित्य में से एक ही उदाहरण द्वारा इस तथ्य को हम हृदयंगम कर सकते हैं। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि मन से ही नरक योग्य चिंतन की अंधेरी गुहा तक पहुँच गये थे और मन से ही चिंतन के द्वारा स्वर्ग तक की यात्रा भी उन्होंने संपन्न कर ली थी। यह सोच का तरीका है। इसीलिए प्रभु महावीर ने अनेकांत का अमृत प्रदान किया था।

उनका संदेश था कि हम सत्य को तब तक प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक अनेकान्त दृष्टि न हो। अन्य व्यक्ति जो एक विचार लेकर खड़ा है, वह तुम्हे मित्र तभी दिखलाई देगा, जब तुम उसे अनेकान्त की आंख से देखना प्रारम्भ करोगे। जब तक अनेकान्त तुम्हारे विचारो मे नहीं आयेगा, तब तक तुम्हे शत्रु ही शत्रु नजर आते रहेंगे। शत्रुओं से घिरा व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से भी पराजित होगा और लौकिक दृष्टि से भी। मित्रो के बीच खडा व्यक्ति अभय होता है। अभय वही होता है, जिसके सामने कोई शत्रु नहीं हो। शत्रु भी उसके मित्र हो सकते है, जो अेकान्त दृष्टि से अग-जग को देखता है। अनेकान्त की ऑख ही हमारा दिव्य चक्षु है यह ऑख हमारी कभी बंद नहीं होनी चाहिए।

इस प्रकार आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्त का समावेश ये दोनों बिदु जीवन की ऊँचाईयो को छूने की दृष्टि से हमें क्षितिज के उस पार तक ले जा सकते है, जहॉ आध्यात्मिक ऊँचाई का चरम छुआ जा सकता है।

भगवान महावीर के अपरिग्रह सिद्धान्त को भी भुलाया नहीं जा

सकता, क्योंकि हिंसा परिग्रह का ही परिणाम है। परिग्रह की वजह से ही हिसा होती है। हिसा कारण नहीं है, परिणाम है। हिसा का कारण परिग्रह है। जब कारण ही नहीं रहेगा तो हिसा ही नहीं होगी। परिग्रह अर्थात् मूर्च्छा, परिग्रह अर्थात् आसक्ति, परिग्रह अर्थात् प्रमाद अजागरुकता। परिग्रह केवल धन का नहीं होता है, परिग्रह ममत्व का, शरीर का, पदार्थ का, इच्छा का, अनेक प्रकार का परिग्रह हो सकता है। आज विश्व मे परिग्रह की समस्या है। जिसके पैरो मे सोने के कड़े है, उसके पैर काट लिए जाते है, जिसके कानो मे स्वर्ण के कुंडल है, उसके कान काट लिए जाते है। ऐसी घटनाएँ क्यो घटती है ? परिग्रह के कारण। परिग्रह मे आसक्त व्यक्ति निरपराध प्राणी की भी नृशंस हत्या कर डालता है। एक व्यक्ति धन आदि के प्रलोभन मे आकर किसी के कहने से किसी की हत्या कर डालता है। बड़ी-बड़ी डकैतियॉ और चोरियॉ होती है, इन सब अपराधो का प्रमुख कारण है- परिग्रह। इसीलिए प्रभु महावीर ने दुनियां को अपरिग्रह का सदेश दिया। संदेश देने पहले वे स्वयं अकिचन बने, उन्होने घर, परिवार, राज्य, वैभव सब कुछ छोड़ा।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिसा अनेकान्त और अपरिग्रह के सिद्धान्तो को आज जीवन व्यवहार मे स्थान दिया जाता है तो यह सुनिश्चित है कि सम्पूर्ण विश्व का कायाकल्प हो सकता है। उनके सिद्धान्त किसी वर्ग विशेष या काल विशेष मे आबद्ध नहीं है। उनके प्रतिपादित सिद्धान्तो की उपादेयता सार्वकालिक एव सार्वभौम है।

भगवान महावीर स्वामी की जन्म-जयंति के पावन प्रसंग पर उनके सिद्धान्तो को देखते हुए लगता है कि महावीर की आज भी प्रासगिकता है। उनका दर्शन दिन-प्रतिदिन महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। हम इस पावन प्रसग को एक दिवसीय आयोजन तक ही सीमित न रखे अपितु इस अवसर पर गहराई के साथ अपने आपका अवलोकन करे एव कुछ विशिष्टताओ से स्वय को समृद्ध बनाने का सत्सकल्प अपने भीतर मे संजोए।

यदि ऐसा कुछ कर पाये तो भगवान महावीर के इस जयन्ति आयोजन मे हमारा शरीक होना सार्थक हो सकता है, अन्यथा प्रतिवर्ष की भांति महावीर जयन्ति का एक दिन निश्चित है, वह आयेगा। समय सरकेगा और हम उन्नयन की दृष्टि से वहीं के वहीं खड़े दिखलाई देगे। महावीर प्रभु

के सिद्धान्तों में अद्‌भुत क्षमता है, यदि इनका उपयोग, प्रयोग किया जाए तो यह निश्चित है कि वैयक्तिक पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैकित एवं संसार की सभी समस्याओं का सुगमता से समाधान हो सकता है। महावीर बनने की दिशा में प्रस्थान ही महावीर जयन्ति की सार्थकता है।

***

19

अक्षय-तृतीया

भारतीय सस्कृति में पर्वो का महत्त्व है। पर्व चाहे लौकिक हो या लोकोत्तर, प्राय उनके पीछे उनका इतिहास अवश्य होता है। वैदिक संस्कृति मे दशहरा, दीपावली, मकर संक्रान्ति आदि मुख्य पर्व है। मुस्लिम लोग ईद को महत्त्व देते है, ईसाई समाज क्रिसमिस-डे को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। जैन-परम्परा मे पर्युषण, सवत्सरी, अक्षय तृतीया इत्यादि को महत्त्व दिया गया है। सभी पर्वो का अपना-अपना महत्त्व है। यह अक्षय तृतीया का पर्व प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला तीज को मनाया जाता है। इस वैशाख शुक्ला तीज को आखातीज अथवा अक्षय-तृतीया क्यो कहा गया है ? इसका सर्वप्रथम कारण तो यह है कि भारतीय ज्योतिष के हिसाब से तिथिया चन्द्रमा और नक्षत्रो की गति के अनुसार बनती है। इसलिए जैसे चन्द्रमा की कला घटती-बढती रहती है, वैसे तिथियॉ भी घटती बढती रहती है। सभी तिथियो में क्षय-वर्धन चलता रहता है कितु वैशाख शुक्ला तृतीया एक ऐसी तिथि है, जो कभी भी क्षय नहीं होती है। वर्ष चक्र मे यह एक ऐसा दिवस है कि जो अक्षय-दिवस है। इसलिए इस तिथि को अक्षयतिथि कहते हैं। फलत. इसका नामकरण हुआ अक्षय तृतीया।

गणित शास्त्री कहते है—गणित में 3 और 9 की सख्या ऐसी है, जो कभी घटती नहीं, कम नहीं होती। जैसे 9 का पहाडा जोड़िए, सदैव उसका योगफल 9 ही प्राप्त होगा। 9 एकम् नौ, 9 × 2=18 इनका योग भी हुआ 9। इसी प्रकार आप जोड़ते जाइये, नौ का अंक कभी क्षीण नहीं होगा। और तीन के अंक की तो इससे भी अधिक विशेषता है। तीन का पहाड़ा लिखकर देखिए। दो बार वह बढकर दुगुना, तीन गुना होता है और फिर अपने मूल रूप मे रहता है। फिर बढता है, दुगुना, तिगुना होता है और फिर मूल रूप मे आ जाता है। कितु घटना नहीं है। जैसे 3 × 2=6, 3 × 3=9, 3 ×

नहीं बोलने से शिष्यगण भूख प्यास से व्याकुल हो उठे। कच्छ महाकच्छ आदि शिष्यो ने मिलकर परस्पर विचार किया–अब हम क्या करें ? भगवान तो भूख-प्यास के विजेता हैं, महाबली है, परन्तु हम तो इतना दुष्कर तप नहीं कर सकते। भूखे-प्यासे कितने दिन रहेंगे ? यदि हम पुन. संसार में जाये और महाराज भरत का आश्रय लेवे तो हो सकता है, वे हमारी हीलना करे, हमें कायर कहे और घर जाये तो हमारे पुत्र आदि हमारा सन्मान न करें। इसलिए यही उचित है कि हम वन में रहकर कन्द-मूल-फल आदि खाये और झरनो का पानी पीयें।

कहते है कि–''जब वे श्रमण वृक्षों के फल तोडकर खाने लगे तब आकाशवाणी हुई कि ''श्रमण-वेष धारण कर वृक्षो से फल मत तोडो।'' तब उन्होने श्रमण वेष त्यागकर वल्कल, चीवर, पत्तो के वस्त्र धारण कर लिये और विभिन्न प्रकार के तापस बन गये। आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने त्रिषष्टि 1।2।123 पर लिखा है–वर्तमान अवसर्पिणी में जटाधारी, कन्द मूल खाने वाली तापस परम्परा का प्रारंभ इसी युग में हुआ।

भगवान ऋषभदेव विचरण करते हुए जब हस्तिनापुर पधारे, तब सयोग की बात भगवान् ऋषभदेव के प्रपौत्र, राजा सोमप्रभ का पुत्र युवराज श्रेयांस कुमार ने पिछले प्रहर में एक शुभ किन्तु विचित्र स्वप्न देखा कि– ''मैने श्यामल बने सुमेरु पर्वत को अमृत कलश से सींचा और पुन दीप्तिमान बना दिया।'' उसी रात्रि में नगर श्रेष्ठि सुबुद्धि ने भी उसी समय स्वप्न देखा कि–''सूर्य की सहस्र किरणें अपने स्थान से चलित हो रही हैं, श्रेयांस कुमार अपने पुरुषार्थ से उन किरणों को पुनः सूर्य मे स्थापित कर रहा है। तथा राजा सोमप्रभ भी उसी रात्रि का वही पिछला प्रहर, स्वप्न में देखते हैं कि–एक महापुरुष, शत्रुओ से झूंझ रहा है और श्रेयांस कुमार ने उनको सहयोग प्रदान किया जिससे शत्रुओ का बल नष्ट हो गया।

प्रात· होने पर राजा सोमप्रभ एवं नगर श्रेठी सुबुद्धि अपने स्वप्न फल पर विचार करते हैं कि आज राजकुमार श्रेयांस को कोई विशिष्ट लाभ प्राप्त होगा।

और इधर श्रेयांसकुमार भी इस विचित्र स्वप्न के अर्थ पर विचार करता हुआ अपने महल के गवाक्ष में बैठा है। उसी समय भगवान ऋषभदेव का हस्तिनापुर के राजमार्ग पर आगमन हुआ। हजारों लोग विविध प्रकार की

भेट सामग्री लेकर उनके दर्शन करने राजमार्ग पर आ गये। परन्तु प्रभु ने किसी की भेट स्वीकार नहीं की और धीर गंभीर गति से आगे से आगे बढते गये। हजारो लोगो की भीड़ प्रभु के पीछे-पीछे चल रही है। कोई भगवान की जय बोल रहे है तो कोई चर्चा कर रहे है कि अरे ! स्वामी तो कुछ बोलते नहीं, इनको क्या चाहिए ? कोई भेट भी स्वीकार नहीं करते–इस प्रकार चर्चाओ से कोलाहल जैसा शब्द हो रहा था। जनता का कोलाहल सुनकर श्रेयासकुमार ने राजमार्ग पर बढती भीड और उनके आगे पधारते हुए ऋषभप्रभु को देखा तो विचार मे पड गये कि ''ये महामानव कौन है ? इस प्रकार के तपस्वी साधक को तो मैने पहले कहीं देखा है, उनकी स्मृतियाँ अतीत मे उतरती गई, चिन्तन की एकाग्रता बढती गई और मति ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से उन्हे उसी समय जातिस्मरण ज्ञान हो गया, उससे वे अपने पूर्व भवो को देखने लगे, प्रभु ऋषभ के साथ भव-भवान्तर मे अपने स्नेह संबंधो का, संयमी जीवनयापन करने का, निर्दोष भिक्षाचर्या, आहार-पानी बहराने की विधि आदि सारी बाते उनके ज्ञान मे हस्तामलक की तरह स्पष्ट होने लगी, वे तुरन्त प्रभु ऋषभ के चरणो मे पहुँचे और अपने यहाँ भिक्षा ग्रहण करने का निवेदन किया, प्रभु ऋषभ श्रेयासकुमार के साथ उनके रसोड़े मे पधारे। श्रेयासकुमार ने असुझता आहार देखकर चहु और निगाहे दौड़ाई तो इक्षु रस को प्रासुक देखा और इक्षुरस से प्रभु को करपात्र में पारणा कराया, उसी समय आकाश मे देवों द्वारा पॉच दिव्य प्रकट हुए। देवो ने देव-दुदुभि बजाई। अहोदान ! अहोदान ! फिर हर्ष हर्ष कर हर्ष प्रकट किया, उस समय के दिव्य माहौल को लखकर कवि की कलम भी कहाँ रूक पाई। कवि के शब्दो मे स्वर लहरी परम्परा से आज भी गूंजारित होती है–**इक्षुरस का किया पारणा आखा–तीज महान, जय–जय आदिनाथ भगवान–भगवान ॥टेर॥** आज प्रभु का 13 महीना और 10 दिन की सुदीर्घ अवधि से पारणा हुआ, वैशाख शुक्ला तृतीय का दिवस था, श्रेयासकुमार ने उल्लास एवं हर्षित भावो के साथ त्रयशुद्धि के योगपूर्वक इक्षुरस की अखड धारा से प्रभु को पारणा कराया। इस अक्षय उल्लसित भावना एव अक्षयदान के कारण वैशाख शुक्ला तृतीया अक्षय-तृतीया के रूप मे प्रसिद्ध हुई अथवा प्रभु ने प्रथम पारणा मे जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हासिल की, वह एक अतिशय युक्त अभिवृद्धि थी। अत अखड तत्त्व ज्ञान, दर्शन, चारित्र

की अखंडता की अपेक्षा अक्षय तृतीया की तिथि यथार्थता को चरितार्थ होती है और भी चिन्तन करे तो ''दान शील तप और भावना'' ये जो मोक्ष प्राप्ति के चार मार्ग कहे गये है। उनमें प्रथम मार्ग दान और तृतीय मार्ग तप इन दोनों का अद्भुत अद्वितीय संबंध इस वैशाख शुक्ला तृतीया से जुडा हुआ होने के कारण भी यह ''तृतीया'' संसार में अक्षय, चिर-स्मरणीय बन गई।

सुदीर्घ तप का पारणा और शुद्ध सुपात्रदान। पारणे का संबंध एक ओर तप से जुडता है तो दूसरी ओर दान से। क्योकि तप होगा तभी पारणा होगा और कोई दाता मिलेगा, शुद्ध भिक्षा दान करेगा, तभी पारणा होगा। तो पारणे का सबंध तप से भी है और दान से भी। तप और दान की दिव्य महिमा से आज का दिन पावन हुआ इस कारण अक्षय पुण्य दिवस के रूप मे इस दिवस की महिमा गाई जाने लगी। तथा तप और दान की आराधना करने की प्रेरणा देने के कारण भी यह तृतीय अक्षय तृतीया बन गई। चूकि सम्यक् तप और सुपात्रदान अक्षय-पद प्राप्ति के हेतु है। दूसरी बात यह भी है कि श्रमणो को भिक्षा देने की विधि का प्रथम ज्ञान देने वाले एवं सुपात्रदान के प्रथम प्रवर्त्तक श्रेयास कुमार का उपकार भी चिर स्मरणीय होने से आज का दिवस ''अक्षय'' बन गया है।

प्रश्न : भगवान् ने चैत्र कृष्णा अष्टमी को चौविहार बेले से दीक्षा ग्रहण की और 1 संवत्सर तक भगवान् को निर्दोष भिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी, 1 संवत्सर बाद भिक्षा प्राप्त होने का उल्लेख समवयांग सूत्र मे आता है– **''संवच्छरेण भिक्खा लद्धा उसहेण लोग-नाहेण।''** अर्थात् लोकनाथ ऋषभदेव ने एक संवत्सर के पश्चात् भिक्षा प्राप्त की। अत: प्रश्न होता है कि– ''वैशाख शुक्ला तृतीया को पारणा हुआ, यह कैसे माना जाय?''

समाधान : प्रभु का पारणा वैशाख शुक्ला तृतीया को होने से 13 मास और 10 दिन का तप होता है, पर व्यवहार नय की दृष्टि से ऊपर के दिनो को गौण मानकर इसे वर्षीतप कहा गया है। जिस प्रकार पांच माह का चातुर्मास होने पर भी व्यवहार मे उसे चातुर्मास ही कहा जाता है, पंचमास नहीं। उसी प्रकार व्यवहार नय से प्रभु का पारणा भी एक सवत्सर से वैशाख शुक्ला तृतीया का होना आगम सम्मत है।

आगमों मे प्राय: संक्षेप शैली से वर्णन किया जाता है। किसी समय या काल आदि को बताने के लिए बडे रूप मे वर्ष, युग, पल्योपम आदि की

गिनती की जाती है, मास, पक्ष, दिन आदि को उसी मे समाविष्ट कर दिया जाता है। यह आगमो की वर्णन शैली है।

उदाहरणार्थ-स्थानांगसूत्र के नवम् स्थान मे उल्लेख है–

"उसंभेणं अरहया कोसिलिएणं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवमकोडाकोडीहि विइक्कंतेहिं तित्थं पवत्तिए।" अर्थात् कौशलिक अरिहंत ऋषभदेव ने अवसर्पिणी काल को नौ कोटाकोटा सागरोपम काल व्यतीत होने पर तीर्थ का प्रवर्तन किया।

कितु आगमो के विस्तृत वर्णन के अनुसार अवसर्पिणी काल के नो कोटाकोटी सागरोपम व्यतीत होने मे एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व 3 वर्ष 8½ मास का सुदीर्घ समय बाकी था, तब भगवान् ने धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया।

आचाराग सूत्र की संक्षेप शैली मे कहा गया है– **"बारस वासाइं वोसट्ठकाए"** अर्थात् 12 वर्ष तक भगवान् महावीर छद्मस्थ काल मे रहे।

जबकि स्थानागसूत्र स्थान 9 मे उल्लेख है कि–"भगवान् महावीर 12 वर्ष और 13 पक्ष तक छद्मस्थ रहे।" यह विस्तार शैली मे वर्णन है। इसी प्रकार भगवान् महावीर का तीर्थकरकाल 30 वर्ष बताया जाता है जबकि काल गणना करने पर 42 वर्ष के सयम जीवन मे से 12 वर्ष 13 पक्ष छद्मस्थ काल के निकालने पर तीर्थकर काल केवल 29 वर्ष 5 मास 15 दिन का ही होता है। तो इस प्रकार आगमो की प्रतिपादन शैली पर ध्यान देने से इस प्रश्न का समाधान मिलता है। आगमो मे सक्षेप मे वणर्न करने की शैली है। विस्तार से जहां वर्णन होता है, वहॉ छोटी-छोटी बातो का उल्लेख हो जाता है, कितु सक्षेप मे जहॉ वर्णन होता है, वहा मोटे रूप मे ही कथन किया जाता है।

प्रश्न वर्षीतप तो वर्ष भर करने से होता है, एकान्तर-तप करते हुए दो वर्ष बाद आने वाली वैशाख शुक्ला तृतीया को एकान्तर तप पूर्ण करने को वर्षी-तप कहा जा सकता है। जैसे अन्तगढ सूत्र मे तपस्या के रत्नावली कनकावली आदि सज्ञावाचक नाम आते हैं वेसे यह वर्षीतप भी सज्ञावाचक नाम है। यदि कहो कि–"ऐसे वर्षीतप का आगम मे कहीं उल्लेख नहीं है, अत जो तप आगम मे उल्लेखित है, उसे मान्य किया जा सकता है।" तो इसका समाधान है–ऐसे अनेक उदाहरण है, जिनका आगम मे कोई उल्लेख

नहीं है फिर भी परम्परा से स्वीकार्य है, जैसे–उदाहरणार्थ किसी श्रावक ने तेले से ऊपर अनशन तप किया हो ऐसा स्पष्ट आगम में उल्लेख नहीं है फिर भी तपस्या कर्म निर्जरा मे सबल साधन होने से श्रावक-वर्ग को दीर्घ तपस्या करने का उपदेश भी दिया जाता है एवं प्रत्याख्यान भी कराये जाते है। इसके अतिरिक्त श्रावक के सामायिक का काल 48 मिनिट आगम में कहीं नहीं मिलता है। द्वितीया, पचमी, एकादशी को महत्त्व देकर तपस्या कराने का विधान भी शास्त्रों मे दृष्टिगोचर नहीं होता है। प्रतिक्रमण में लोगस्स का ध्यान करना यह विधान नहीं है। फिर भी तद्विषयक परम्परा को मान्य किया जाता है। अत. आगम मे उल्लेख नहीं है, ऐसा तर्क देकर आत्मशुद्धि के लिए किसी भी निमित्त से की जाने वाली तपस्या का निषेध करना आत्म-शुद्धि में बाधक बनना है। तथा प्रकारान्तर से आगम सम्मत द्वादशविद्य तप का विरोध करना है। उक्त आगम सम्मत युक्तियों से एवं परम्परा के कथन से प्रभु ऋषभदेव के तप के निमित्त से एकान्तर रूप वर्षीतप करना आगम-सम्मत सिद्ध होता है।

वर्षीतप करने वालों को निम्न नियमो का पालन करना चाहिए -

''ऋषभदेवाय नम:'' की प्रतिदिन 1 माला, उभयकालिन प्रतिक्रमण, 12 लोगस्स का ध्यान, संस्तारक पर शयन, खाट पलंग का त्याग, सचित्त का त्याग, अचित्त की मर्यादा, ब्रह्मचर्य का पालन, संत-सती विराजते हो तो प्रतिदिन दर्शन एवं प्रवचन श्रवण। ज्ञान की पुनरावृत्ति, सुपात्रदान, अनुकम्पादान आदि शुभ अनुष्ठान। पारणे के दिन झूठा नहीं छोड़ना।

विधि : चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन बेले तप से प्रारभ करना, दूसरी अक्षय-तृतीया तक 760 दिन मे 360 दिन पारणा एवं 400 दिन तपस्या के, इस प्रकार वर्षीतप पूर्ण होता है। तीन चौमासी पक्खी, चवदस एवं पक्खी तथा बीच की अक्षयतृतीया को पारणा आने पर भी बेले तप का अनुष्ठान करना।

***